ISSN 0975-5217
अंक 12
वर्ष 2016

भैरवी

संगीत शोध पत्रिका

मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा
(बिहार)

भैरवी

(संगीत शोध-पत्रिका)

(वर्ष 2016 अंक 12)

मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004

भैरवी (संगीत शोध-पत्रिका)

वर्ष-2016, अंक : 12

प्रधान सम्पादक
डॉ. पुष्पम नारायण

प्रकाशक : मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004
मो. - 09430063265
ईमेल - npushpamji@gmail.com

ISSN 0975-5217

मूल्य
इस अंक का मूल्य : 200/- रुपये

व्यक्तियों के लिए :

वार्षिक : 400/- रुपये / त्रैवार्षिक 1200/- रुपये

पंचवार्षिक 2000/- रुपये / आजीवन : 10000/- रुपये

संस्थाओं के लिए :

वार्षिक : 450/- रुपये / त्रैवार्षिक 1400/- रुपये

पंचवार्षिक 2300/- रुपये / आजीवन : 12000/- रुपये

(केवल मनी आर्डर / चेक / बैंक ड्राफ्ट से)
(दरभंगा से बाहर के चेक में 40 रुपये अधिक जोड़ें)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद दरभंगा न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

मुद्रक
विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स
1/10753, गली नं. 3 सुभाष पार्क
नवीन शाहदरा, दिल्ली - 110032

प्रधान सम्पादक

डॉ. पुष्पम नारायण

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

सम्पादक मंडल

प्रो. चमनलाल वर्मा

अवकाश प्राप्त विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

प्रो. साहित्य कुमार नाहर

पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत एवं मंचकला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. रवि कुमार पंडोले

प्रवक्ता, संगीत विभाग, राजकीय एम.एल.बी.जी. पी.जी. कॉलेज, भोपाल

डॉ. रामशंकर

प्रवक्ता, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. संतोष दत्तात्रयराव परचुरे

प्रवक्ता, संगीत विभाग, एस.पी.एच. महिला महाविद्यालय, मालेगांव कैम्प, महाराष्ट्र

डॉ. अश्विनी कुमार सिंह

प्रवक्ता, संगीत एवं मंचकला विभाग, एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा, गुजरात

डॉ. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'

पूर्व विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

डॉ. वेद प्रकाश

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

शिवनारायण महतो

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

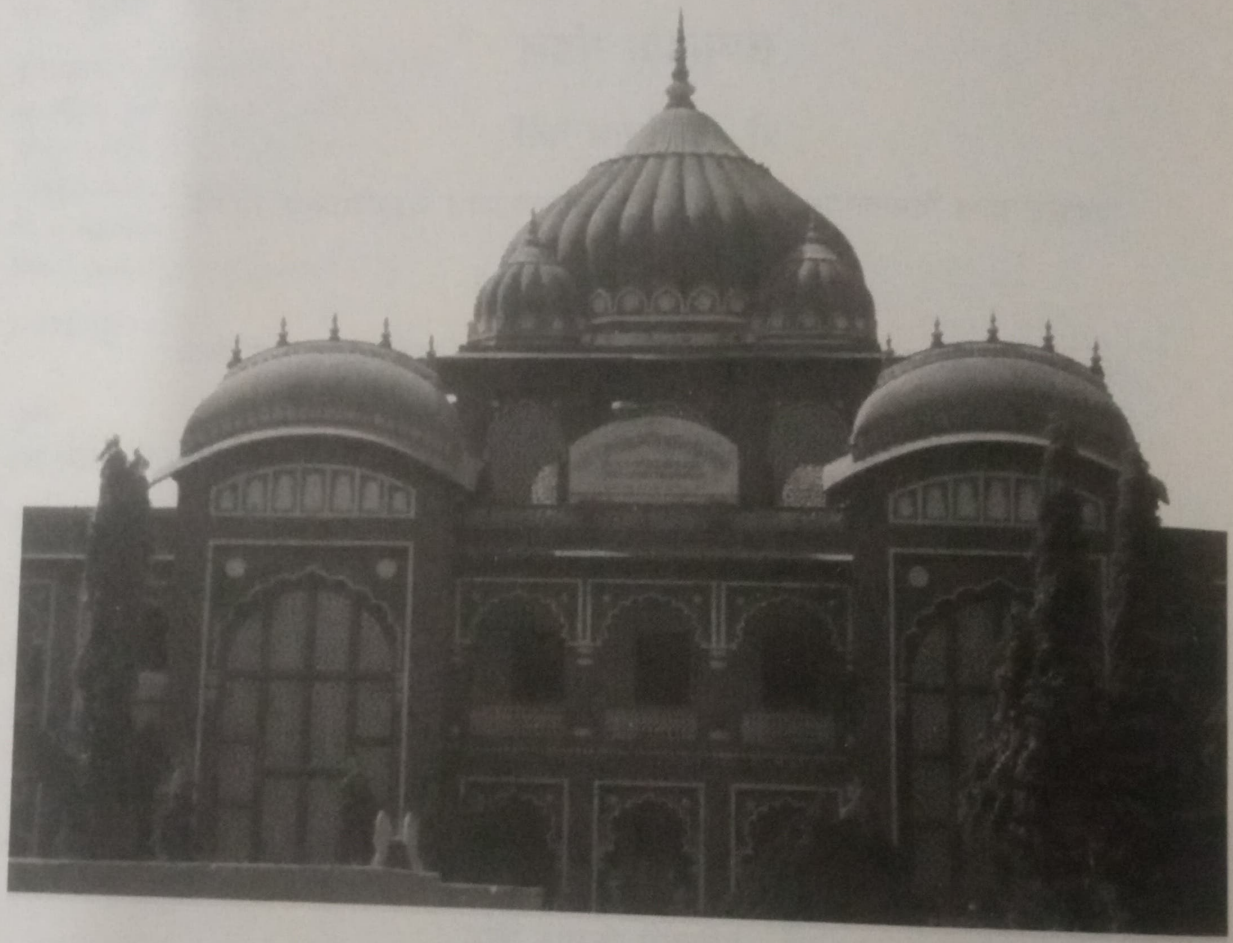

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

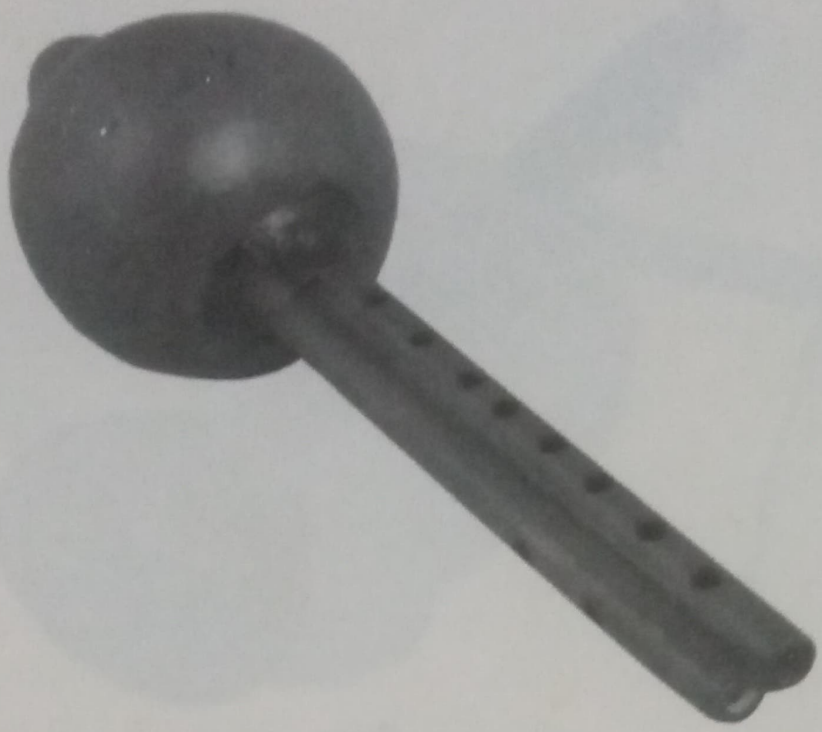

बीन

सारंगी

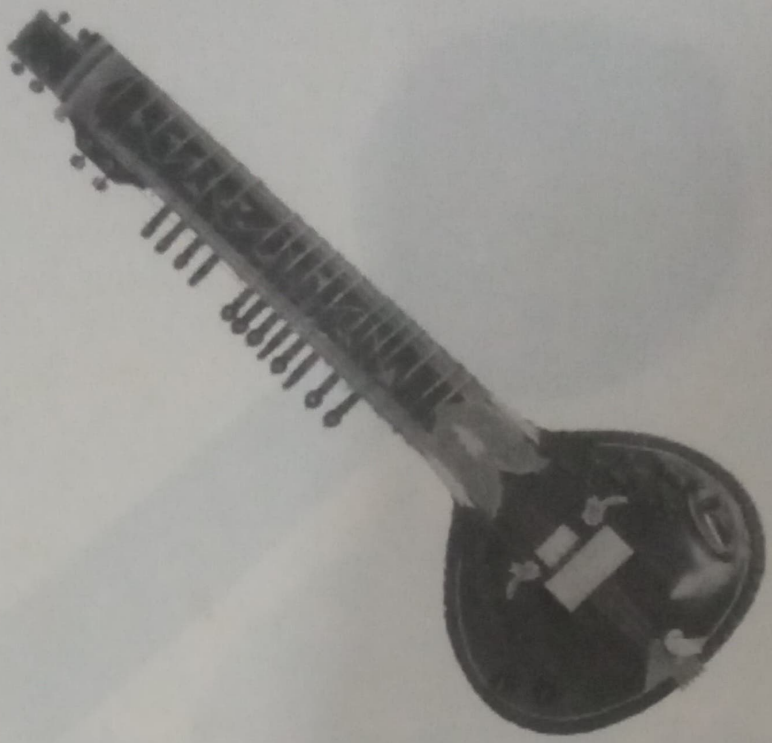

सितार

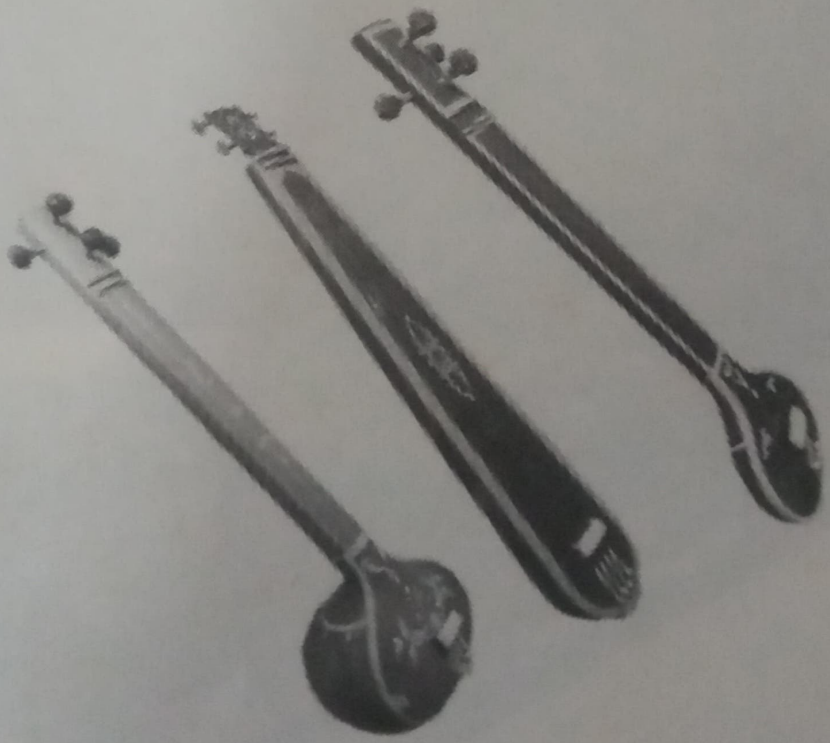

तानपुरा

हैंड ड्रम

बांसुरी

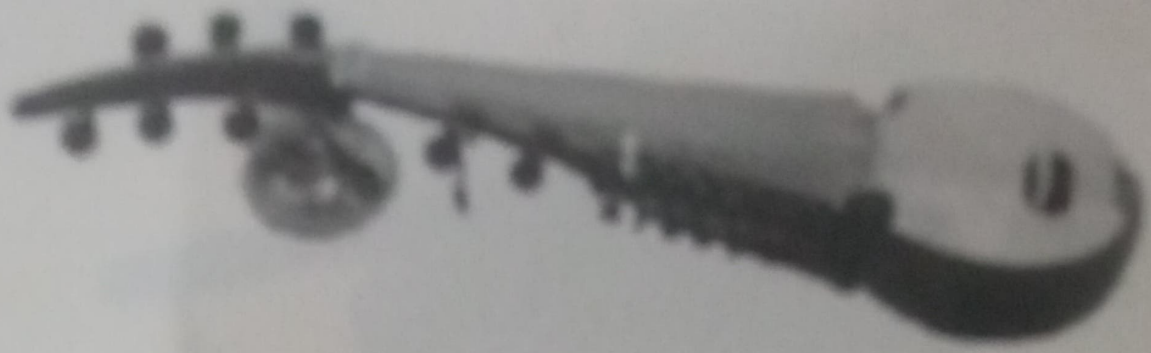

सरोद

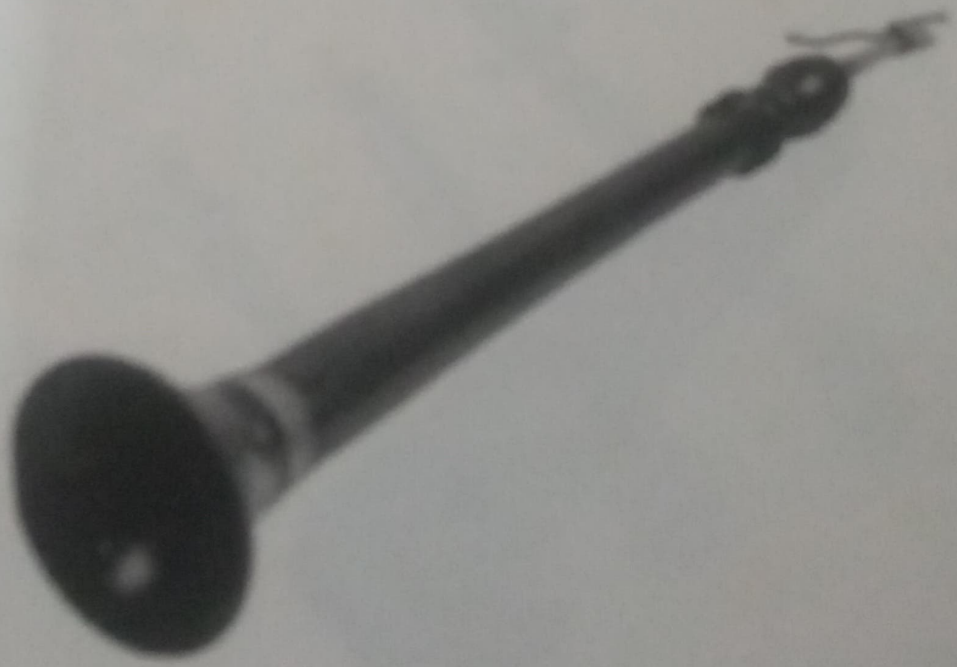

शहनाई

संपादक की कलम से ...

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद का मानना था कि "संगीत और अध्यात्म का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इतिहास से विरासत में हमें भारतीय संगीत जैसी अमूल्य निधि मिली है। अन्य देशों के संगीत की अपेक्षा इसमें जो विशिष्टता है वह मान्यताओं के कारण है, जो संगीत के सम्बन्ध में हमारे पूर्वजों की थी।" भारत में संगीत क्षणिक आमोद-प्रमोद व अतृप्त तृष्णा की वस्तु न होकर समस्त ब्रह्माण्ड अथवा व्यक्त जगत से ऐक्य का आभास है, चिरानन्द प्रदान करनेवाली आध्यात्मिक साधना है और सांसारिक दुःखों से मुक्ति प्रदान करने और ब्रह्म तक मानव को ले जाने का मार्ग है।

जन्म से लेकर मृत्यु तक यह संगीत हमारे साथ बना रहता है। जिस दिन बालक संसार में अपनी आँखे खोलता है उस दिन से ही संगीत से भी उसका परिचय हो जाता है। ऐसा कोई तीज-त्यौहार नहीं होता, ऐसा कोई पर्व और संस्कार नहीं होता, जिसमें संगीत न हो। हमारे यहाँ खेत में और चौपाल में चक्की चलाने और धान कुटने में संगीत चलता ही रहता है। हम कह सकते हैं कि हमारे जन-जीवन के उल्लास को प्रकट करने का तो यह प्रभावी साधन है ही, साथ ही यह उसको गतिमान बनाने का प्रबल अस्त्र भी है। संगीत उनको रचनात्मक कार्यों में अग्रसर होने की सामूहिक स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान करता है और उनको वह सामूहिक शक्ति देता है जो उन्हें उन कामों के करने योग्य बनाती है।

भारत में संगीत ने आध्यात्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में वह काम किया है जो सम्भवतः और कोई शक्ति शताब्दियों के परिश्रम के पश्चात भी नहीं कर पाती। अनपढ़ व्यक्ति भी यहाँ आध्यात्मिक ज्ञान से शून्य नहीं है। मेरी दृष्टि में वर्णमाला से अपरिचित होने पर भी साधारण जन इस प्रकार का ज्ञान रखता है। एक प्रमुख कारण है संगीतमय गाथाओं और कथाओं का प्रभाव, जो उनके हृदय में पनपता है। अतः भारत के सांस्कृतिक आध्यात्मिक विकास में संगीत का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

भारतीय संगीत कल्याण साधना का एक मार्ग है और सामूहिक शिक्षा का एक ढंग भी है। अतः आवश्यकता है कि पाश्चात्य विकृति को छोड़कर अपने संगीत को पुनः अनुप्राणित किया जाय। आज का भारतीय संगीत जन-जीवन की गंगा से बहुत दूर है। वह नगरों की सम्पत्ति बन गया है। मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं हूँ कि इस संगीत की अच्छाई-बुराई को नागर ही परख सकते हैं। यदि तुलसी और कबीर ने अपने संगीत से भारत के ग्राम्य जीवन को आध्यात्मिकता से प्लावित कर दिया और अनपढ़ों को पंडित बना दिया तो कोई तो कारण है कि आज का संगीतज्ञ ऐसा क्यों नहीं कर सकता। अब यह आवश्यक है कि हमारे संगीतज्ञ अपने समाज के लोगों से अपना सम्बन्ध पुनः वैसा ही स्थापित करें जैसा पहले होता था।

आवश्यकता है आज फिर से संगीतज्ञ मीरा और तुलसी की परम्परा को पुनर्जीवित करें। आज भी मीरा ओर तुलसी के पदों के लिए जनता के हृदय में आदर है। अतः मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि हमारे संगीत का जन-जीवन से सम्बन्ध हो जाय तो वह नव जीवन प्राप्त कर अपने को सार्थक और सफल बना लेगा।

आशा करती हूँ कि इस प्रश्न पर यदि संजीदगी से विचार किया जाय और संगीत को देश और जाति के लिए मानसिक और चारित्रिक उन्नति का साधन बनाया जाय तो समाज के उन्नयन के लिए संगीत सबसे कारगर औषधि होगी। संगीत का हमारे शिक्षा व्यवस्था से घनिष्ट सम्बन्ध कायम होना चाहिए। छात्रों की सामाजिक और सामूहिक चेतना के निर्माण में संगीत का भी अंश हो। किसी भी व्यक्ति की शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान से ही नहीं पूरी होती वरन् उसके लिए यह भी आवश्यक है कि उसकी मानसिक वृतियों का ऐसा परिमार्जन हो कि उसके हृदय तंत्री में सर्वदा राग के स्वर गूंजते रहे। आज की शिक्षा व्यवस्था ऐसी नहीं है। अतः प्लेटो के कथन "संगीत के बिना मानव की शिक्षा पूरी नही मानी जा सकती" को पुनः कायम करना होगा।

इसी आशा के साथ कि आप मेरी बातों से सहमत होंगे। संगीत शोध पत्रिका "भैरवी" का बारहवीं अंक थोड़े विलम्ब से आपतक पहुँच रहा है। क्षमाप्रार्थी हूँ। यथा सम्भव निर्दोष टंकण का प्रयास किया गया है तथापि सुधी पाठकगण इसे यांत्रिक भूल मानकर क्षमा करेंगे। आशा है यह अंक संगीत प्राध्यापकों, विद्यार्थियों एवं शोधकर्त्ताओं को लाभान्वित करेगी।

—डॉ. पुष्पम नारायण
प्रधान संपादक
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वर नगर, दरभंगा 846 004
मो. - 09430063265
ईमेल - npushpamji@gmail.com

अनुक्रम

	संपादक की कलम से ...		9
1.	सितार वादन के घराने एवं नियम	–डॉ. अनिता रानी	13
2.	मध्यप्रदेश की दरबारी परम्परा	–डॉ. निधि श्रीवास्तव	16
3.	भारतीय शास्त्रीय संगीत में स्वर लय ताल का महत्व	–डॉ. अश्विनी कुमार सिंह	18
4.	भक्ति गीतों की महिमा आज के परिप्रेक्ष्य में	–किरण अमर	22
5.	संगीत एवं धर्म का सम्बन्ध	–सुप्रिया सिंह	27
6.	'सौन्दर्यशास्त्र की अवधारणा'	–डॉ. रावेन्द्र कुमार साहू	29
7.	भारतीय संगीत में प्रशासनिक सेवाओं का योगदान	–डॉ. केदार मुकादम	34
8.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संगीत-शिक्षा का अभ्यासक्रम, शिक्षण-कार्य एवं मूल्यांकन के सन्दर्भ में विश्लेषण तथा प्रस्तुत विषय में उस्ताद मौला बख्स का योगदान	–विश्वास विजय कुमार संत	37
9.	नागार्जुन के काव्य में संगीत तत्त्व	–राजकुमार	40
10.	चिकित्सा में लोकनृत्य की भूमिका	–डॉ. विवेक वर्मा	43
11.	सूरदास का संगीत संसार	–डॉ. रामशंकर	47
12.	संत रविदास का सांगीतिक अवदान	–डॉ. संतोष दत्तात्रयराव परचुरे	49
13.	भारतीय संगीत-विद्यालयों में प्रवर्तमान अभ्यासक्रम एवं मूल्यांकन पद्धति में परिवर्तन की आवश्यकता	–डॉ. निर्झरी देसाई ठक्कर	54
14.	संगीत में शोध, आवश्यकता तथा महत्व	–सीमा चौधरी	56
15.	मानव शरीर एवं मस्तिष्क पर संगीत का प्रभाव	–अमरजीत कुमार	59
16.	गुरू-शिष्य परंपरा एवं संस्थागत संगीत शिक्षा	–श्रीनिवास सुधांशु	61
17.	आधुनिक युग में शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता	–नन्दकिशोर झा	67
18.	वैदिक साहित्य और संगीत	–नीलम कुमारी	70
19.	मिथिला का संगीत घराना	–डॉ. पुष्पम नारायण	72
20.	विविध भावों के कुशल गायक 'मुहम्मद रफी'	–नवीन कुमार राठौर	84

21. विश्वविख्यात बाँसुरी वादक पं. रोनू मजूमदार —डॉ. लीला मणी (दीपक) 87

22. संगीत और नारी : पर्याय एवं पूरक —डॉ. सीमा वर्मा 91

23. मानव जीवन पर संगीत चिकित्सा का प्रभाव —कुमारी प्रीति 94

24. कथक नृत्य में सौंदर्य तत्व —डॉ. जूली एच. आनादकत 99

25. संस्कृत नाटक एवं संगीत —डॉ. निधि शर्मा 101

26. गुरू गोविन्द सिंह रचित 'चण्डी दी वार' वीर रसी गाथा : गेय विधा की उत्तम संरचना —डॉ. सोनदीप मोंगा 107

27. तबला वादन में विभिन्न रचनाओं के गणितीय स्वरूप —डॉ. विवेक फड़नीस 110

28. भक्ति और संगीत —डॉ. रत्नाम्बरा शर्मा 114

29. अपने देश में पहचान तलाशती - संगीत चिकित्सा पद्धति —संजय कुमार 117

30. मीराबाई की भक्ति में नृत्य —डॉ. स्मृति वाघेला 120

31. मानव जीवन के विकास में संगीत का योगदान'' —डॉ. राजेश शर्मा 122

32. उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में फ्यूजन के प्रयोग : जाज के विशेष संदर्भ में —श्रीमती विजल पटेल 128

33. राजस्थानी लोकसंगीत रसात्मकता एवं लोक वाद्य —डॉ. सुरेन्द्र कुमार 133

34. पाठ्यक्रम संशोधन की परिकल्पना —डॉ. अंजू कुमारी 136

35. गुरू-शिष्य परम्परा से उन्मुख संस्थागत संगीत शिक्षा —श्रीमती अणिमा श्रीवास्तव 139

36. आधुनिक समय में गौड़ीया सम्प्रदाय के संकीर्तन का स्वरूप —राधा कमल 143

37. काशी के संगीत को वैश्विक स्तर पर लोकप्रिय बनाने में पं. रविशंकर का योगदान —ज्योति सिंह 147

38. ख्याल गायन की संगति में हारमोनियम का प्रयोग —श्यामा कुमार भारती 149

39. Sitarist Ustad Halim Jaffer Khan and his rare ramophone Records —Dr. Pankaj Lahora 151

40. The Power of Music : Its Impact on the Brain, Personality Development, Creativity and Also on Physical Body —Ms. Aarti Bhatt 154

41. Inter-relationship of Society and Music —Gaveesh 158

42. Existence of Inverse Raga Scales of Hindustani Systems of Indian Music —P.K.Mittal 162

सितार वादन के घराने एवं नियम

डॉ. अनिता रानी

विद्वतजनों ने घरानों की परस्पर भिन्नता को देखते हुए कुछ नियम बनाये जो घराना शब्द का निर्वाह करने के लिए आवश्यक माने गये।

- किसी घराने के लिए कम से कम तीन पीढ़ियों की आवश्यकता होती है। घराने के अन्तर्गत गुरू-शिष्य परम्परा के अनुसार किसी भी योग्य शिष्य को उसकी क्षमता के अनुसार अपने घराने में शामिल करना तथा अपने ही पुत्र-पौत्रादि कुटुम्बियों को पीढ़ी दर पीढ़ी शिक्षित करना और अपनी परम्परा के अनुसार उसे ढालना दोनों ही आते हैं।
- प्रत्येक घराने के शिष्य अपने गुरू की आवाज और गायन-शैली का अनुसरण करे, यह आवश्यक हैं।
- हर घराने के कुछ मुख्य राग होते हैं, और बंदिशें जिन्हें उस घराने का गायक प्रचलित करता है।
- घरानों की मौलिक गायिकी और उसकी गायिकी के मुख्य सिद्धान्तों का पालन होना आवश्यक है।

सितार के परम्परागत घरानों का विकास 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में ही प्रारम्भ हुआ था। उस समय तक वीणा तथा रबाब आदि के परम्परा युक्त घरानेदार वादकों के लिए सितार नया ही था।

भारत के आधुनिक वाद्यों में सर्वश्रेष्ठ वाद्य सितार की उत्पत्ति के विषय में कई मत प्रतिपादित हैं।

प्रथम मतानुसार सितार एक भारतीय वाद्य है। इसकी रचना प्राचीन समय में वीणा के आधार पर हुई। भारतीय मत के पुजारी इसी मत को प्रधानता प्रदान करते हैं।

द्वितीय मतानुसार, 14वीं शताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी के दरबारी अमीर खुसरों ने मध्यमादि वीणा के ऊपर तीन तार चढ़ाकर इसका आविष्कार किया और इसका नाम सहतार रखा। फारसी में सह का अर्थ होता है तीन अर्थात तीन तार वाला वाद्य। धीरे-धीरे इसमें सुधार होता गया और तीन तारों के स्थान पर सात तारों का प्रयोग होने लगा।

तृतीय मतानुसार, यह एक विदेशी वाद्य है तथा पर्शिया से यह भारत में आया। वहाँ अब भी एकतारा, दोतारा आदि वाद्य प्रचलित हैं। ग्रीक में भी इस प्रकार के वाद्य विद्यमान थे। इस तृतीय मत को प्रधानता प्रदान करने वालों में **प्रो. जी. एन. गोस्वामी** का नाम उल्लेखनीय है।

सितार की उत्पत्ति के विषय में मतभेद होते हुए भी हम अमीर खुसरों को इसके प्रचारक के रूप में प्राथमिकता प्रदान कर सकते हैं। अमीर खुसरों तथा तानसेन के घरानों में सितार बराबर बजता रहा।

तानसेन के वंशज अमृतसेन और **निहालसेन** ने सितार के विकास में पर्याप्त योगदान दिया। ये लोग जयपुर के थे। **जयपुर घराने में अमीर खाँ** का नाम भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंनें मसीतखानी गत से मध्यम लय की गत का निर्माण किया। परन्तु वह मसीतखानी गत की भाँति होने के कारण मसीतखानी लय में ही विलुप्त हो गयी। आगे चलकर

वरिष्ठ प्रवक्ता, संगीत विभाग, बी.डी. जैन गर्ल्स, पी.जी. कॉलेज, आगरा

सितार का यह बाज दिल्ली चला गया। सितार के घरानों में प्रायः दो घराने प्रमुख हैं:-

1. **सेनिया घराना**
2. इमदादखानी घराना

1. **सेनिया घरानाः-** सभी गायक या वादक कहीं न कहीं सेनिया घराने से सम्बंधित हैं। तथा कुछ **तानसेन की पुत्री वंश परम्परा** से जुड़े हुए थे तथा कुछ उनके पुत्र **विलासखॉ की वंश परम्परा** से जुड़े हुए थे तथा कुछ उनकी शिष्य परम्परा से संबंध रखते हैं।

उस्ताद मुश्ताक अली खान सेनिया शैली के एक निपुण वादक थे। इनके पिता ने **बरकतुल्ला खाँ** से शिक्षा प्राप्त की थी, जो **अमीर खॉ** के शिष्य थे। **अमीर खॉ अमृतसेन** के बहनोई थे और **अमृतसेन मसीतखॉ** के प्रपौत्र थे।

अमीर खुसरो के वंशज **फिरोज खाँ** ने सितार में एक बंदिश का आविष्कार किया जो फिरोजखानी गत के नाम से विख्यात हुई। आगे चलकर उनके पुत्र मसीत खाँ ने मसीतखानी गत रचना की, और उसके साथ तबले की संगत को प्राथमिकता दी। **उस्ताद मसीत खाँ** सेनिया घराने के प्रसिद्ध सितार वादकों में हैं। यदि हम यह कहें कि सितार में सेनिया घराने का अभ्युदय **मसीत खाँ** से है तो यह अनुचित नहीं होगा। इन्होंने कई बंदिशों की रचना की जो ध्रुपद अंग पर आधारित थी। इनकी गतों को मतीसखानी गत की कहा गया। मसीत खाँ ने मसीतखानी गत के बोल निश्चित किए, जैसेः- दिर, दा, दिर दा रा, दा दा रा तथा इस गत के आरम्भ करने का स्थान भी निश्चित किया। यह गत हमेशा 12 वीं मात्र से शुरू होती है। उस्ताद रजा खाँ ने रजाखानीगत की रचना की इनकी रचीं बंदिशों को रजाखानी बाज या लखनवी बाज कहा गया।

लखनवी बाज की अपनी कुछ विशेषतायें हैं जो निम्न हैं:-

1. विशुद्ध ध्रुपद शैली में आलाप तथा जोड़ का काम।
2. ठुमरी पर आधारित सुन्दर कलात्मक एवं भावपूर्ण गतें।
3. अतिद्रुत लय में झालें के साथ समापन।

उस्ताद **मसीतखॉ** के प्रपौत्र **रहीमसेन** ने भी सितार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। रहीमसेन ने सितार की शिक्षा दुल्हें खॉ से प्राप्त की। रहीमसेन सितार पर सिर्फ मसीतखानी बाज मध्यम लय में बजाते थे। इन्होंने अपने कठिन परिश्रम से सितार को वीणा के स्थान पर लाकर रख दिया। इनके सितार वादन में हमें ख्याल अंग, ध्रुपद व वीणा का समन्वय देखने को मिलता है। रहीमसेन ने अपने सितार वादन की तकनीकों को अपने पुत्र अमृतसेन को सिखा दिया तथा उन्हें स्पष्ट रूप से ये हिदायत दी कि जीवन भर अन्य किसी साज को हाथ न लगाना। अमृतसेन के दत्तक पुत्र निहालसेन भी सेनिया घराने के प्रमुख सितार वादकों में से हैं। सेनिया घराने से संबंधित कुछ मुख्य कलाकार निम्न हैं- **उस्ताद मुश्ताक अली खॉ, श्री देवव्रत चौधरी, उस्ताद अलाउद्दीन खॉ, अली अकबर खान, पं. रविशंकर, पं. निखिल बनर्जी, अलाउद्दीन खॉ की पुत्री अन्नपूर्णादेवी जो सुर बहार बजाने में** सिद्धहस्त थी।

सेनिया वादन शैली में वीणा के अनुकरण से ध्रुपद अंग से प्रभावित आलाप बजाया जाता था। सभी वादकों की वादन शैली में अलग-अलग विशेषतायें पायी जाती हैं।

पं. रवि शंकर जी के सितार वादन में सरोद वादन का स्वरूप झलकता है। सेनिया घराने के वादक मींड, गमक, कृन्तन इत्यादि का प्रयोग अधिक करते हैं।

2.इमदादखानी घरानाः- सितार के सेनिया घराने के बाद इमदादखानी घराना आता है। उस्ताद इमदाद खॉ के नाम से ही इस घराने का प्रचार हुआ। इमदाद खॉ ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता साहबदाद खॉ से प्राप्त की तथा उनकी मृत्यु के पश्चात इन्होंने उस्ताद रजतअलीखॉ से शिक्षा ग्रहण की। रजतअलीखॉ की मृत्यु के पश्चात इमदाद खॉ साहब बनारस चले गये। जहॉ इन्होंने सुरबहार व सितार की साधना की। इमदाद खॉ सुरबहार वादन के मिश्रण से नयी वादन शैली प्रतिपादित की जिसे इमदादखानी बाज के नाम से सारे भारतवर्ष में जाना जाता है। उस्ताद इमदाद खॉ के पुत्र इनायत

खाँ एक महान कलाकार थे तथा इनायत खाँ के बड़े भाई वहीद खाँ सुरबहार व सितार के प्रसिद्ध वादक थे तथा यह प्रायः रजाखानी गत ही बजाते थे। कलकत्ता में उस्ताद इनायत खाँ ने सितार वाद्य को इस प्रसिद्धि के शिखर पर ला खड़ा किया, कि वहाँ के प्रत्येक घर में सितार सुनायी देता था। उस्ताद इनायत खाँ अपने विषय के पूर्ण पंडित थे। ये कलात्मक सौन्दर्य के लिए रागों की परम्परागत शैली का परित्याग करने में नहीं हिचकते थे।

उस्ताद इनायत खाँ के पुत्र **उस्ताद विलायत** खाँ थे। **उस्ताद इमरत** खाँ अपने घराने की परम्पराओं को कायम रखें हैं। **उस्ताद विलायत खाँ** को सितार वादन की कला विरासत में मिली, तथा इन्होंने सितार पर ख्याल गायकी का प्रयोग आरम्भ किया। पंजाब अंग में ठुमरी शैली से संगीत को समृद्ध करने का प्रयत्न किया।

उस्ताद विलायत खाँ के विषयों में **इमरत खाँ, रईस खाँ, श्रीमती कल्याणी राय, सुजात खाँ** के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। **उस्ताद वहीद खाँ** के पौत्र **शाहिद परवेज** आज एक युवा कलाकार के रूप में हमारे समक्ष हैं। इन्होंने इमदादखानी घराने की शुद्धता को कायम रखा हुआ है। उस्ताद विलायत खाँ के भतीजे **निशात खाँ** ने भी अपने घराने की परम्परा को कायम रखने के लिए कठोर परिश्रम किया है।

इमदादखानी शैली में ख्याल गायकी के प्रादुर्भाव के कारण ख्याल अंग का आलाप बजाते हैं। तथा एक ही परदे पर सातों स्वरों की मींड तक का प्रयोग भी करते हैं। इमदादखानी शैली को मानने वाले कनिष्ठिका अँगुली से चिकारी बजाते हैं।

सितार घराने के इन दो प्रमुख मुख्य घरानों के अतिरिक्त **इंदौर घराना, विष्णुपुर घराना,ढाका घराना, वाराणसी घराना, राजकमल शिरोमणी घराना, आप्टे घराना** इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

संगीत में घराने का विशेष महत्व है, परन्तु आज के संदर्भ में घराने की उपयोगिता के प्रश्न महत्वपूर्ण हैं। आज परिस्थितियां बदली हुई हैं। शार्गिद और विभिन्न कलाकारों को सुनने और उनके गुणों को आत्मसात् करने की प्रचुर सुविधाएँ उपलब्ध हैं। अपनी रूचि, रूझान और सामर्थ्य के अनुसार अपनी गायन शैली का चयन वह कर सकता है।

संदर्भ सूची

1. हिन्दुस्तानी संगीत शास्त्र- शर्मा भगवतशरण
2. घराना अंक- गर्ग लक्ष्मी नारायण, संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस
3. निबन्ध संगीत- गर्ग लक्ष्मी नारायण, संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस
4. संगीत के घरानों की चर्चा- कुमार डॉ. सुशील
5. संगीत मासिक पत्रिका, गर्ग लक्ष्मी नारायण, संगीत कार्यालय, हाथरस
6. संगीत कला विहार, अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मंडल प्रकाशन, मिरज

मध्यप्रदेश की दरबारी परम्परा

डॉ. निधि श्रीवास्तव

तबले की विभिन्न परम्पराओं में मध्यप्रदेश की विविध दरबारी परम्परायें भी प्रसिद्ध हैं विभिन्न शहरों में दरबारी पंरम्पराओं का अपना अलग ही महत्व था। संपूर्ण संगीत जगत जिन पर गौरव कर सके ऐसे महान कलाकारों, विद्वान, संगीत प्रोत्साहक एवं गुणग्राही शासकों से मध्यप्रदेश की धरती समृद्ध है। यहाँ की रियासतें जैसे कि ग्वालियर, रीवा, रायगढ़, दतिया, इन्दौर, मैहर, उज्जैन, जावरा, रतलाम, देवास, धार, सागर, बुरहानपुर आदि संगीत के लिये सुप्रसिद्ध है। यहाँ के गुणग्राही शासकों ने संगत एवं संगीतकारों को सदा प्रोत्साहन एवं आश्रय दिया। ग्वालियर के राजा मानसिंह, मांडव की रूपमती बाजबहादुर तथा रायगढ़ के महाराज चक्रधरसिंह जैसे संगीतानुरागी, संगीतज्ञ राजाओं ने इस प्रदेश को गौरवान्वित किया है। संगीत जगत को इस प्रदेश ने ऐसे-ऐसे समर्थ कलारत्न भेंट किये हैं जो अपने क्षेत्र में अजर-अमर है। तानसेन को भला कौन भूल सकता है। तानसेन के उपरान्त पिछली दो तीन सदियों में वहाँ कुछ विशिष्ट प्रतिभाएँ इतनी समर्थ सिद्ध हुई हैं कि जिनके द्वारा नवीन परम्पराओं तथा घरानों का भी आविष्कार हुआ है। विश्वविख्यात बाबा अलाउद्दीन खाँ, उस्ताद अली अकबर, पं रविशंकर, पं. कुमार गंधर्व आदि कलारत्न मध्यप्रदेश की ही देने है।

ग्वालियर के राजा मानसिंह और संगीत सम्राट तानसेन तथा मांडव के राजा बाजबहादुर और रानी रूपमती से लेकर आधुनिक युग के सैकड़ों कलाकार जिनमें मैहर के उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, उस्ताद अली अकबर खाँ, पं. रविशंकर, श्रीमती अन्नापूर्णा देवी के उपरान्त इन्दौर के उस्ताद अमीर खाँ जावरा के उस्ताद अब्दुल, देवास के रजबअली तथा पं. कुमार गांधर्व, उस्ताद बन्दे अली खाँ बीनकार, उस्ताद आबीद हुसैन खाँ, उस्ताद हस्सू खाँ, उस्ताद हस्सू खाँ, उस्ताद बडे मोहम्मद खाँ, उस्ताद हाफिज अली, पं. नत्थन पीरबख्श खाँ, उस्ताद निसार हुसैन खाँ, उस्ताद अजमत खाँ, उस्ताद हाफिज अली, पं. एकनाथ, पं. शंकरराव, पं. कृष्णराव शंकर पंडित, पं. राजा भैया पूंछवाले, पं. बाबा साहेब पूंछवाले, रायगढ़ के महाराज चक्रधर सिंह, मृदंग सम्राट, कुदऊसिंह, महाराज मृदंगाचार्य नाना पानसे, ग्वालियर पं. जोरावर सिंह, पं. सुखदेव सिंह, पं पर्वतसिंह रायगढ के मृदंगवादक ठाकुर लक्ष्मणसिंह ठाकुर, जगदीश सिंह, दुर्गाप्रसाद कत्थक, पं.कार्तिकराम कथक तथा शास्त्रकार श्री शरदचन्द्र परांजपे एवं श्री प्यारेलाल श्रीमाल का समावेश भी इनमें हो जाता है।

ध्रुपद के डागुर घराने के प्रपितामह उस्ताद बहेराम खाँ डागुर इन्दौर के रहने वाले थे। अतः उस्ताद नासिरूद्दीन डागुर वर्षो पर्यन्त इन्दौर दरबार के मुलाजिम रहे। महाराजा तुकोजी राव के दरबारी कलाकारों में ध्रुपदिये नासिरूद्दीन डागुर, पखावजी पं. सखाराम पन्त अगले, उस्ताद बाबू खाँ बीनकार, उस्ताद आबीद हुसैन खाँ बीनवादक तथा ध्रुपदिये उस्ताद लतीफ खाँ बीनवादक, पं.केशव बुवा आप्टे (ध्रुपदिये) पं.माधवराव चौधुले हारमोनियम वादक, देवीदास (सूरदास), बुन्दु खाँ सारंगीवादक, इन्दौर की वजीर जान बाई, ग्वालियर की श्रीजान बाई श्रीमती ताराबाई शिरोडक, बनारस की केसर बाई, नर्तकी हरिद्वारी बाई तथा तबलानवाज उस्ताद मौला

सहायक प्रोफेसर, एस.एस. खन्ना महिला महाविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)

बख्श, उस्ताद रहेमान खाँ एवं उस्ताद जहाँगीर खाँ आदि उल्लेखनीय है।

नाना पानसे इन्दौर दरबार के अमूल्य कलारत्न थे। उन्होंने अपनी विद्वता एवं प्रतिभा से मृदंग की कला एवं साहित्य को इतना समृद्ध किया कि उनसे मृदंग का एक पृथक घराना ही प्रारंभ हो गया जो नाना पानसे घराने के नाम से सुप्रसिद्ध हुआ है। आज भारत में जो इने गिने मृदंगवादक उपस्थित हैं उनमें पानसे घराने के कलाकारों का योगदान अमूल्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- काशी की संगीत परम्परा - शर्मा श्री कामेश्वर नाथ
- भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण - शर्मा प्रो. स्वतंत्र
- भारतीय संगीत एक वैज्ञानिक विश्लेषण - शर्मा प्रो. स्वतंत्र
- तबले का उद्‌गम विकास और वादन शैलिया - शुक्ला डॉ. योगमाया

भारतीय शास्त्रीय संगीत में स्वर लय ताल का महत्व

डॉ. अश्विनी कुमार सिंह

ईश्वर तथा ईश्वर निर्मित सृष्टि का स्वरूप अत्यन्त सुंदर, मनोहर तथा विविधपूर्ण है संगीत के दो आधार स्तम्भ महत्वपूर्ण है पहला ''स्वर'' और दूसरा लय। इन्हीं दोनों के आधार पर कलाकार संगीत की सृष्टि करता है। स्वर का प्रयोग रागों में एवं लय का प्रयोग तालों में किया जाता है।

ताल शब्द की व्युत्पत्ति विभिन्न विद्वानों ने इस प्रकार की है :-

''ताल शब्दस्य निष्पत्ति प्रतिष्ठार्थेनाधतुना।
गीतं वाद्यं च नृत्यं च भाति ताले प्रतिष्ठिम्।।''

अर्थात् प्रतिष्ठावाचन धातु रूप 'तल' से ताल शब्द की निष्पत्ति हुई है। संगीत और लय का सम्बन्ध आदिकाल से चला आ रहा है। समस्त प्रकृति में समयक्रम की जो निश्चित गति अर्थात् 'लय' है, वही संगीत में 'ताल' बनकर उसे उपयोगी रसपूर्ण और स्थायी स्वरूप देते हैं।

"Tala gives to music a regular ordered feeting based
On an even flow, Tala is "Unity in diversity"

स्वर संगीत का आधार है, किन्तु जिस किसी राग का विस्तार किया जाता है, उस समय आलाप, तान बोलतान, सरगम आदि विभिन्न लयों में किये जाते हैं।

सर्वप्रथम अपना ध्यान ताल से संबंधित कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना आवश्यक है। प्राचीन संगीत ग्रंथ के लेखक आचार्य भरत मुनि ने संगीत में काल (समय) नापने के साधन को 'ताल' कहते हैं। जिस प्रकार भाषा में व्याकरण की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार संगीत में ताल की आवश्यकता होती है। संगीत की शोभा गायन, वादन एवं नृत्य इन तीनों के सम्मिलित क्रियाओं से होती है।

तालस्तल प्रतिष्ठायामिति धांयोधत्रि स्मृतः।
गीतं वाधं तथा नृतं यतस्ताते प्रतिष्ठिम्।।
संगीत रत्नाकर (तालाध्याय)

ताल शब्द की व्युत्पत्ति 'तल' धातु से हुई है प्राचीन संगीत विद्वान शारंगदेव ने अपने ग्रंथ संगीत रत्नाकर में गीत वाद्य और नृत्य प्रतिष्ठित होते हैं, वे 'ताल' के नाम से प्रतिष्ठित होते हैं। अर्थात् काल (समय) को व्यवस्थित करना आधार देना या स्थिरता प्रदान करना वास्तव में 'ताल' संगीत को सकारात्मक स्थिति बनाने में सर्वोपरि स्थान रखता है। ताल संगीत की जान है। 'ताल' पर ही संगीत कला की ईमारत खड़ी हुई है। ताल का ही दूसरा रूप लय है 'ताल' में एक क्रिया और दूसरी क्रिया के बीच विश्रांति का काल जो पहली क्रिया का विस्तार है 'लय' कहलाता है हमारे भारतीय संगीत में मुख्यतः तीन लय माने गये हैं- (1) विलंबित लय (2) मध्य लय (3) द्रुत लय। यदि इस बात पर तनिक सूक्ष्मता से चिन्तन किया जाय तो निष्कर्ष यह निकलता है कि ताल का निर्माण लय के रूप को आधार में रखकर ही किया गया है। यदि 'ताल' शब्द की उत्पत्ति तथा तात्पर्य के बारे में अध्ययन करें तो हम पाते हैं कि लय और ताल दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है। ताल के अर्थ के सम्बन्ध में कहा गया है कि -

''ताल स्तल प्रतिष्ठायामिति धांयोधत्रि स्मृतः।
गीतं वाद्यं तथा नृतं यतस्ताते प्रतिष्ठितम्।।''

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, प्रदर्शन कला संकाय, एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा (गुजरात)

सामान्य बोल चाल की भाषा में 'ताल' शब्द का अर्थ नीचे रहने वाले अथवा धारण करने वाला होता है। किसी वस्तु को हाथ पर रखने के लिए 'हस्तलय' (हथेली) शब्द का प्रयोग किया जाता है। "Rhythm maybe said to be the map or ground plane
upon which.A musical composition procedure."

भारतीय संगीत में चाहे वो लोक संगीत हो, या शास्त्रीय संगीत हो, या उपशास्त्रीय संगीत हो किन्तु रस-निष्पत्ति शब्द और ताल के बिना सम्भव नहीं है। पं. शारंगदेव ने अपने ग्रन्थ संगीत रत्नाकर में लय की परिभाषा इस प्रकार दी है -

विश्रान्तियुक्तयां काले क्रियया मानमिध्यते[3]।
क्रियानन्तर विश्रान्तिर्लयः स त्रिविधो मतः।।

अर्थात् विश्रान्तियुक्तं क्रिया के द्वारा काल का माप होता है, क्रिया के अनन्त होने वाली विश्रान्ति लय है और इसके तीन प्रकार है। एक क्रिया और दूसरी क्रिया के बीच का काल जो पहली क्रिया का विस्तार है वह लय है। लय के तीन प्रकार है जिन्हें आचार्य भरत ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में इस प्रकार बताया है -

'त्रयो लयाश्च विज्ञेया द्रुतमध्य विलम्बिता'[4]

दत्तिल के अनुसार "लय काल कलागतम्"[5] अर्थात् लय (समय माप) काल (मात्र) के अन्तर्गत होते हैं। बृहस्पतिजी के अनुसार "किसी भी ताल के विभिन्न भागों को पृथक-पृथक करने वाली क्रियाओं के माध्यम आने वाली विश्रान्ति काल 'लय' है [6]।

Laya is the pace of movement of the tala. It is the speed at which a tals is played.[7]

सांगीतिक दृष्टिकोण से गायन वादन और नृत्य की विभिन्न क्रियाओं की भांति निरंतर समान रूप से चलती रहती है, लय कहलाती है। बी.सी. देवी के शब्दों में "The flow of times has to be calibrated. This calibrated is called the Laya or Tempo. For, it the unit of calibration is small, we feel the passage of time as quick, this is drut if, the unit of calibration is large we feel passage of time in slow, this is vilambit. Thus, Laya is the process of calibration of time".-

"तलः कालस्ययन्मानं (मात्रं) हि क्रिया कृतम्"[9]

गान्धर्व के तीन मुख्य घटकों में से एक ताल शब्द के अन्तर्गत सः शब्द निःशब्द क्रियायें एवं लय का विस्तृत विचार किया गया है। भरत के अनुसार कला, पात और लय से युक्त जो काल का विभाग या परिणात्मक प्रमाण है, वह ताल कहलाता है।

"तालोधन इति प्रोक्तः कला पात लयन्वितः।
कलास्तस्य प्रमाणं वै विज्ञेयं तालयोक्तृभिः।।[10]

संगीत प्रयोग के अवसर पर जब ताल का व्यवहार होता है तब उसे समय का परिमापक काल कहा जाता है। अर्थात् संगीत में काल (समय) का भाग जो कला, पात और लय से युक्त है वह 'ताल' नाम से जाना जाता है। उसका कार्य है संगीत को मापना। आचार्य भरत ने कहीं भी लय और ताल को अलग-अलग समझाने की बात न करके ताल के ही अन्तर्गत लय को स्पष्ट किया है। उक्त श्लोक में आये काल, धन, कला, पात, लय ये सभी परिभाषिक शब्द है और ताल के प्राण है।।

ताल का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ।
तालस्तल प्रतिष्ठायामिति धतोर्धञि समृतः।
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्।।

काव्य और संगीत दोनों का स्वभाव भी लयगत होता है यदि संगीतबद्ध काव्य को छंदबद्ध कर दिया जाये तो जो काव्य, संगीत और छन्द दोनों में बद्ध हो तो वह स्वर एवं छन्द के नियन्त्रण से काव्य में गति सौंदर्य, भाव, रस आदि द्वारा सजीवता उत्पन्न कर देता है। वास्तव में संगीत का छन्द ताल है और यह केवल भारतीय संगीत ही नहीं बल्कि विश्व संगीत के क्रमिक एतिहासिक विकास में निहित है। श्री विलर्ड ने अपने ग्रंथ (Treatise of the Hindustani Music-) में लिखा है -

"Meter is allowed to have this effect in poetry and why not in music? It is very well known that a mere transposition of key without a change in time has very little power on the spirits of the hearer"

"Tartine supposes they could not have prolonged any note beyond the time allowed to a syllable, and from this course a find voice would be unable to display its powers by passing rapaidly from syllable to prevent the loss of time"[8]

शेक्सपियर साहित्यकार होते हुए भी ताल की महत्ता से सुपरिचित थे उन्होंने लिखा है कि - "Ha, Ha, keep time, how sour sweet music is then time is broke, and no proportion kept."

वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि समस्त ब्रह्माण्ड अपना कार्य करते हैं। समय अखंड है परन्तु उसकी उपयोगिता की वृद्धि के लिए उसे घंटो, प्रहरों, दिनों, महिनों एवं वर्षों में विभाजित किया गया है। वास्तव में संगीत का छन्द ताल है, और यह केवल भारतीय संगीत नहीं बल्कि विश्व संगीत के क्रमिक ऐतिहासिक विकास में ही निहित है। श्री विलर्ड (Willard) ने अपने ग्रन्थ "Treatise of the Hindu Music" में लिखा है -

"Meter isAllowed to have this effect in poetry any why not in Music ? It is very well known that a more transposition of key without change in time has very little power on the spirits of the Hearer".

संगीतार्णव में ताण्डव नृत्य के 'त' और लास्य नृत्य के 'ल' वर्णो के संयोग से ताल शब्द की उत्पत्ति दर्शायी गयी है। "संगीत दर्पण में 'ताकार' से शंकर या शिव और लकार से पार्वती या शक्ति दोनों का योग ताल कहा गया है "

श्री नरहरि चक्रवर्ती ने "भक्ति-रत्नाकर" में लिखा है कि "जिस प्रकार बिना पतवार के नाव होती है, वैसे ही ताल विहीन संगीत होता है।"

श्री प्रदीप सेन गुप्ता के अनुसार, "Tala is Technical word meaning a series of sound, which is produced on a percussion Instruments with the help of strikling by the palm."

संगीत के प्रवाह को बनाए रखने वाली इस लय को विचारको ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है -

शारंगदेव के अनुसार - "क्रियानन्तरविश्रन्तिर्लयः"

अर्थात् ताल क्रिया के बाद होने वाली विश्रान्ति लय है।

दत्तिल मुनि ने लय को "लयकालकलागतम" अर्थात् लय (समय-माप) काल (मात्रा) के अन्तर्गत होती है।

आचार्य बृहस्पति के शब्दो में - "किसी भी ताल के विभिन्न भागों को पृथक-पृथक करने वाली क्रियाओं के मध्य में आने वाला विश्रान्ति काल लय है।"

"Laya is the pace of movement of the tala. It is the speed at which a Tala is played."

लय का महत्व Rhythm may be said to be the map or ground plan upon which a musical composition proceeds. लय संगीत का आवश्यक एवं महत्वपूर्ण अंग है, लय के अभाव में संगीत की कल्पना ही नहीं की जा सकती जैसे शरीर के अंदर प्राण है तो उस शरीर का अस्तित्व है, और अगर शरीर हो और उसमें प्राण तत्व नहीं हो उस शरीर का कोई महत्व नहीं है। हमारी सारी सृष्टि लय पर ही आधारित है, जो संगीत का महत्वपूर्ण अंग है जिसके कारण संगीत की कल्पना करना संभव नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि संगीत के विद्वान मनुष्यों ने संगीत में लय एवं ताल की महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की है, इसलिए अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से ताल के अनेक अंगों एवं उपायों का विशद् विश्लेषण किया है। अतः कहा जा सकता है कि संगीत में जितना महत्वपूर्ण स्थान स्वर का है उतना ही महत्वपूर्ण स्थान लय एवं ताल अंग का है। इन दोनों के उचित सम्यक् रूप से मानव को सभ्य, सुसंस्कृत परिष्कृत एवं आध्यात्मोन्मुख बनाने में समर्थ होता है। गायन, वादन और नृत्य में न केवल इन तीनों का ही नहीं वरन् काव्य और साहित्य का

संवादोत्मकता में भी लय का समायोजन उन्हें अधिक प्रांजल एवं मधुर बना देता है।

इस प्रकार संगीत हो या काव्य नाद का सम्प्रेषन जब स्वर, लय, ताल की समन्विति पाता है तो संगीतात्मक भावाभिव्यक्ति पूर्णतः प्रभावी बनकर व्यक्तिगत रूप से अथवा सामूहिक रूप से पूर्णतः प्रखर हो उठती है।

सन्दर्भ सूची :

1) संगीत और संवाद- कुमार डॉ. अशोक, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ. 47,45
2) संगीत विशारद, वसंत- संगीत कालर्याल, हाथरस प्रकाशन, पृ. 325
3) संगीत रत्नाकर-पं. शारंगदेव, पाँचवी तालाध्याय, श्लोक, पृ.44
4) नाट्य शास्त्र-आचार्य भरत, अध्याय 31 श्लोक, पृ. 486, 488
5) संगीत रत्नाकर-शारंगदेव पंचमस्तालाध्याय, श्लोक -44, पृ. 24
6) दत्तिलम-दत्तिल, पृ.- 16
7) संगीत पत्रिका, जनवरी-फरवरी, 1965, पृ. 4 लय प्रयोग के कुछ रहस्य, आचार्य बृहस्पति।
8) निराला की संगीत साधना-डे.जी. वालिया, पृ. 84
9) संगीत चूड़ामणि, ताल प्रकरण, पृ. 44

भक्ति गीतों की महिमा आज के परिप्रेक्ष्य में

किरण अमर

भारत में ही नहीं वरन सारे विश्व में संगीत का आरम्भ धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति से हुआ विश्व की सभी प्राचीन संस्कृतियों में धर्म और संगीत का गहरा सम्बन्ध रहा है। सभी सभ्यताओं में संगीत का जन्म भक्ति भावना से हुआ है। हमारा देश इस सम्बन्ध में भाग्यशाली है। प्राचीन महर्षियों की अनन्य साधना के फलस्वरूप आज भक्ति संगीत ऋग्वेद के रूप में सुरक्षित है।

भक्ति पवित्र वन्दीय अलौकिक शक्ति में सम्पन्न होते हैं। भक्ति गीतों मे सत्यम शिवम सुन्दरम का समन्वय मिलता है। भक्ति गान से वृति जब ध्येयकार आराध्यक का रूप धारण करती है तो चित्त का आवरण रहता है। कलाकार को माधुर्य और सत्य का वैभव प्राप्त होता है। यही वह पुण्यभूमि है जहां समस्त पाप दग्ध हो जाते हैं।

भक्ति के स्फूर्ति उद्‌गारों के साथ वाद्य और नृत्य का जुट जाना स्वाभाविक है। गीत वाद्य व नृत्य तीनों भक्ति के उल्लास को अभिव्यक्त करने के प्रधान साधन हैं। आनन्द आ जाने से मुंह के उद्‌गारों का भाव आना हाथों से तालियां बजाना तथा समस्त अंगों से अभिनय करना स्वभाविक प्रकिया है। प्राचीन मानव के गीत वाद्य नृत्य मिल कर धार्मिक प्रसंग बन गए। आज भी आदिम जातियां, विभिन्न कबीलों के लोग धार्मिक पर्वों पर गीत गाने के साथ विभिन्न वाद्यों तथा नृत्यों का प्रयोग करती पाई जाती है। यह परम्परा नवीन नहीं, प्राचीन है और सहस्त्र शताब्दी से चली आ रही है।

संगीत के अंतर्गत स्वर लय तथा शब्द तीनों पर समान रूप से ध्यान देना -संगीत शास्त्र में अवधान कहलाता है। इन तीनों का समुचित संयम ही भाव संगीत या भक्ति संगीत को जन्म देता है। संगीत क्रिया का सर्वोच्च बिन्दु निर्विकल्प समाधि है जहां सीमित अहं जगदात्मा में विलीन हो जाता है। संगीत के अंतर्गत देश काल और जाति का बंधन नहीं है। यह तथ्य सर्वजन प्रसिद्ध है:-

'गुणा पूजा स्थान गुणिशु न च लिंग न च वय"

इसके अुनसार भक्ति संगीत में भक्ति का भाव देखा जाता है न कि उनकी जाति और आयु। सम्पूर्ण प्राणियों को विज्ञान प्रदान करने वाली यह भक्ति अनुपम है। भक्ति भगवान को अर्पित करने वाली एक भावना है।

भक्ति की कोई भी विधा हो। सगुण या निर्गुण भक्त ईश्वर की परमसत्ता का चिन्तन करता है। इसका माध्यम ऊं की ध्वनि है। ओम् का गायन ही गायक को तन्मयता प्रदान करता है। श्रोताओं की बिखरी हुई मनोवृत्तियों को गायक के स्वर में केन्द्रित कर देता है। इसी ओम को गायक आजकल आकार रूप में प्रारम्भ करता है।

काव्य और संगीत उन्नत कला के दो रूप हैं शब्द, अर्थ, ध्वनि और भाव की अवधारणा संगीत और काव्य में होती है। शब्द और अर्थ के द्वारा ध्वनि व भाव की सृष्टि होती है। जब धर्म को शब्द और अर्थ देते हैं तब वह काव्य होता है। जब उसको ध्वनि और भाव दिया जाता है। तब संगीत होता है। जब सात स्वर तीन स्वरों की प्रणवता प्राप्त कर लेते हैं। भक्ति भाव का प्रथम साक्षात्कार हमें मंत्र ऋचा

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, गुरूनानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर

स्तोत्र और प्रार्थनाओं के रूप में प्राप्त होता है। कालान्तर में यह पद भजन और कीर्तन के रूप में पल्लवित होते हैं। यदि मंत्र से उसकी ध्वनि ले ली जाए तो मंत्र की सम्पूर्ण संरचना असंगत हो जाएगी। मंत्र में ध्वनि का बहुत महत्व है। जो संगीत में होता है। मंत्रों में प्रयुक्त ध्वनि आत्मक गुण विश्व में कहीं नहीं मिलता। केवल भारत में ही मंत्रों की मंत्रात्मकता संभव हो सकी है। संगीत और काव्य जैसी सूक्ष्म कलाएं तो अनिवार्यतः धर्म की अभिव्यक्ति रही है।

मंत्र काव्य नहीं होता बल्कि काव्यात्मकता का कारण होता है। मंत्रों के सन्दर्भ में उनका अर्थ इतना महत्वपूर्ण नहीं हुआ करता जितना कि जाप। जाप के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व में अर्थ का विस्तार नहीं बल्कि ध्वनि का विस्तार होता है। ध्वनि की अनुभाषिक रमणीयता अर्थ ही नहीं भाषा से भी परे है। इसलिए काव्य से मंत्र की स्थिति संगीतात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ है।[2]

संयोग से दिव्य संगीत उद्भूत होता है विश्व को जब स्वर शब्दमय संगीत की संप्राप्ति होगी तभी ज्ञानी, अज्ञानी सभी परमानन्द को समाधि द्वारा प्राप्त कर सकेंगे।[3]

यों तो मनीषियों ने भक्ति के विभिन्न भेद दिए हैं।

(1) उपासना भक्ति-रामानन्द जी के प्रवर्तक थे।
(2) पुष्टिमार्ग भक्ति-प्रवाह पुष्टि भक्ति, मर्यादा पुष्टि भक्ति, पुष्टि पुष्टि भक्ति, शुद्ध पुष्टि -आचार्य वल्लभ
(3) श्री कृष्ण की भक्ति तीन प्रकार से मानी जाती है। साधन भक्ति, भाव भक्ति, प्रेमा भक्ति
(4) माधुर्य भक्ति -इस भक्ति से नवधा भक्ति का समागम होता है।
(5) परा भक्ति - यह माधुर्य उपासना; भक्ति का उच्चतम रूप है।

भगवदानन्द प्राप्ति का मार्ग यद्यपि विभिन्न सम्प्रदाय के पूज्य आचार्य वृन्द ने भक्ति के द्वारा ही दर्शाया है। परन्तु उन्होंने भक्ति गीतों का न्यूनाधिक रूप अवश्य स्वीकार किया है। भक्ति गीत साधन भी है साध्य भी। भक्ति गीतों के माध्यम से उस परम ब्रह्म की भक्ति करने का आदेश दिया गया है। जो मायापति है तथा सौंदर्य, आनन्द और प्रेम का आश्रय है।

जब जीव उस परमब्रह्म के अन्दर स्वरूप में अपने मन बुद्धि चित्त को लगाकर भक्ति गीतों का आलम्बन ले स्वंय का सीमित रूप भूल जाता है। तब उसे परमानन्द अनुभव होता है।

प्राचीन काल में वैदिक युग में जो संगीत यज्ञों में फैल चुका था वह व्यक्तिगत कारावास में बंद हो गया।

तैतिरीय उपनिषद, ऐतरेय उपनियद, शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रंथों में संगीत का यथेष्ट दिग्दर्शन है। इनके अतिरिक्त याज्ञवल्क्य रत्न प्रदीपिका, प्रतिभाष्य प्रदीप और नारदीय शिक्षा प्रभृति ग्रंथों में परिचय मिलता है।

हरिवंश पुराण में सात स्वरों, ग्राम, रागों , तीन स्थानों, मूर्च्छना, नृत्य नाट्य् वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है।

बौद्धकालीन संगीत में भगवान बुद्ध के सम्पूर्ण सिद्धांतों को लड़ियों में पिरो दिया गया था। उनका सुन्दर ढंग से गायन करके गांव गांव , नगर -नगर की सुप्त जनता को जागरण के पथ पर लाया गया। इस काल में वीणा पर ही गायन होता था। शास्त्रीय संगीत पूर्ण यौवन पर था।

कालिदास जी द्वारा संगीत और काव्य का प्रचार चारों और हो चुका था। उस समय कविता और संगीत के सम्मिश्रण से संगीत में नई चेतना जागृत करने का श्रेय महाकवि कालिदास जी को है।

रामायण में संगीत कला प्रचार में रही विद्धानों का कहना है कि इस काल में संगीतज्ञों की प्रतिष्ठा वैदिक काल की भांति ही थी। मंगल कार्यों पर, युद्ध में विजय प्राप्त करके आने पर दुंदुभि बजाकर स्वागत किया जाता था।

महाभारत काल में भगवान कृष्ण संगीत के मडान पंडित हो गए। इन्हीं दिनों रासलीला नृत्य का निर्माण हुआ था। महिलाएं पौराणिक काल से भी अधिक गाने बजाने नाचने की ओर तल्लीन हो गई थी। महाभारत काल में संगीत अपने उच्चतम शिखर

पर था। कृष्ण जी का वंशीवादन, वीर अर्जुन का वीणा वादन में उस समय कोई प्रतिद्वंदी नहीं था। इस काल का संगीत आदर्श संगीत बन गया।

Religious life - The early arryan worshipped the different forces of nature such as wind , water, rain thunder and fire. Inder the God of rain was the most important God . He was the destroyer of enemies. Other Gods were surya, the sun God varun. The God of the sky and agni, the God of fire.

People prayed for food, health and prosperity . They recited hymns and prayers in praise different God. On important occasion , people performed yagnas and made offerings of Gods.

In Course of time, rituals became so important that every important event was preceded by an elaborate ritual.

संगीत और भक्ति की तारतम्यता है। संगीत सृष्टि में मुनष्य की उत्पति से पूर्व ही था जिसे गुरूओं, पीरों पैगम्बरों, ऋषियों व भक्तजनों ने अवतरित हो पूरा कर संगीत के माध्यम से अपने प्रभु के मिलन की पिपासा को शांत किया। प्रभु भक्तों में बाबा फरीद, बाबा बुल्लेशाह, गुरू नानक देव जी, सूरदास मीराबाई के नाम उल्लेखनीय हैं।

सूरदास जी ने सूर सारावली में श्याम श्यामा की रासक्रीड़ा का वर्णन करते हुए प्रायः सभी प्रचलित राग रागनियों का उल्लेख किया है।

उदाहरणतया :-ललिता ललित बजाय रिझावत, मधुर बीनकर लीने

नाम प्रभात राग पंचम पट, मालकौश रस भीने
सोरठ गौर मल्हार सोहावन, भैरव ललित बजाये
मधुर विभास सुनत बेलावल, सतति अति सुख पायै
-सूरदास

रास शब्द का मूल रस है। रस स्वयं भगवान कृष्ण ही है। 'रसो वै स' इस समूह के रूप में प्रकट होकर स्वयं की आस्वद्य-आस्वादक, लीला धाम और विभिन्न आलम्बन और उद्दीपन के रूप में क्रीड़ा करें, उसका नाम रास है। मीराबाई जी का जोगन के रूप में इकतारा लेकर कृष्ण जी की विरह स्मृति में गायन भक्ति स्वरूप अर्थात परिधान, संगीत अर्थात इकतारा और कृष्ण जी की स्मृति में जो मुख मंडल का ब्यौरा करते हुए जो विरह गान किया है। वह भक्ति और संगीत व श्रृंगार का सचित्र, सजग, सजीव उदाहरण है।

मीराबाई के काव्य में कण कण में संगीत की छठा बिखरी हुई है प्रेमोन्मादिनी मीरा द्वारा रचित एक-एक पद में प्रेम की अविरल धारा बहती है। मीरा के प्रत्येक गीत में, प्रत्येक पद में राग है अनुराग है। संगीत की मधुर लय पर मीरा के गीत अदभुत अनुभव के साथ बजते हैं और श्रोतागण को भाव विभोर कर देते है। संगीत के समुद्र में डूबा श्रोता भक्ति रस में मग्न हो कृष्णमय हो जाता है।

'बसो मोरे नैनन में नंद लाल
मोहिनी मूरत, सांवरि सूरति
नैना बने रसाल'

मीराबाई जी के पद शास्त्रीय संगीत की राग रागणियों से निबद्ध है। मीरा ने राग तिलंग, ललित, हमीर, कान्हड़ा, त्रिवेणी, गुजरी, नीलाम्बरी, कामोद, मुल्तानी, मालकौंस, झिंझोटी, दरबारी, श्याम कल्याण, सोरठ, जोगिया, होली, पीलू इत्यादि कई रागों का प्रयोग किया है।

कृष्ण जी की वंदना करते हुए मीरा कृष्णमय हो जाती है। मीरा को स्वप्न में भी प्रभु के दर्शन होते हैं। ऐसे अमूल्य क्षणों को भुलाना संभव नहीं है। कृष्ण भक्तिधारा में तो अधिकतर साहित्य गीतों में ही लिखा गया है। मीरा को यह विद्या विरासत में मिली है। उनके पदों में गीतात्मकता का चरम उत्कर्ष देखने को मिलता है। उनमें गीति काव्य के सारे गुण विद्यमान हैं।

आली रे म्हारै नैना बाण पड़ी
चित्त चढ़ीम्हारै माधुरी मूरति,
हिवड़ा आण गड़ी।

संगीतात्मकता मीरा के पदों की सर्वोपरि विशेषता है। भक्ति गीत हृदय का भाव है। इसके लिए भावनामय पवित्र हृदय चाहिए। भगवत नाम का जाप करने से मन के सभी कष्ट दूर जाते हैं। भक्ति

गीतों की साधना आनन्ददायक है। इसमें मन और शरीर को कष्ट नहीं देना पड़ता। सच तो यह है कि इन्द्रिय और मन का सच्चा आनन्द भक्ति गीतों द्वारा प्राप्त होता है।

भक्ति का स्वरूप कोई भी हो परन्तु शास्त्रकारों ने भक्ति की दो अवस्थाओं को ही मान्यता दी है। (1) गोणी भक्ति (2) परा भक्ति।

इन दोनों अवस्थाओं में संगीत का मुख्य प्रयोजन भक्त में भक्ति रस का संचरण करना होता है। भक्ति रस द्वारा नीरसता समाप्त हो जाती है।

भगवान की महिमा और दया वत्सलता के स्मरण से साधक के हृदय में भक्ति की जो प्रथम अवस्था उदित होती है। उसे गोणी भक्ति कहते हैं। उपासना, योग आदि से गोणी भक्ति का विकास होता है। संकीर्तन सामूहिक भजन से मन की प्रवृत्तियां पवित्र होने लगती हैं और साधक एकान्त में रहने लगता है। उस दशा में उसके अंतःकरण की रजोगुण तथा तमोगुण आदि कुवृतियां दब जाती हैं और सत्वगुण का विकास होता है जिसमें गंभीरता और मौन मितभाषण आदि अन्तर्मुखी प्रवृतियों का आरम्भ हो जाता है। एकान्त में उसमें स्वतःसविकार समाधि का अनुभव होने लगता है।

भक्ति गीतों की साधना से अंतःकरण परम गुणवान और नाम जप के प्रभाव से शुद्ध हो जाता है। चित्त की चंचलता नष्ट हो जाती है। जब अनुराग का आरम्भ होता है तो परा भक्ति का संचरण शुरू हो जाता है। प्रभु के साथ साधक का सम्बन्ध हो जाता है। गंगा युमना की तरह भक्त और भक्त वत्सल का संयोग हो जाता है। सर्प संगीत का बड़ा प्रेमी होता है। संगीत से वो विवश हो जाता है। इसी प्रकार मन को भी मधुर राग द्वारा वश में कर सकते है। बाह्य वृत्तियों को रोककर हृदय से आने वाली अनाहत ध्वनि को सुनिए। इस श्रवण विधि को 'योग' कहते है। विदेशों में संगीत द्वारा अनेक रोगों के उपचार किए जाते हैं। नवधा भक्ति में कीर्तन का मुख्य स्थान है।[10]

ईश्वर की उपासना से जीवात्मा परमसत्ता की निकटता अनुभव करती है। जीवन के प्रत्येक पड़ाव में वन्दना शील रहना चाहिए। परमात्मा के चरणों में लीन रहने पर मनुष्य का मन अहंकारी नहीं रहता। अहं भावना ही मनुष्य और परमात्मा के बीच दीवार है। प्रत्येक क्षण प्रार्थना रत रहना चाहिए। वेद इसी भाव को पुकार कर कहता है-हे प्रभु हम इस वाणी; गीताद्ध से आनन्द का सदैव विस्तार करते रहे।[11]

भक्ति संगीत संत कवियों के हृदय की पुकार है ईश्वर के साथ मिलन का आनन्द, विरहव्यथा, वेदना आदि शब्द चित्र ही भक्ति संगीत है। इस तरह तन्मयता, विरह शोक आदि राग भैरवी में ही व्यक्त किए जा सकते हैं। उदाहरणार्थः-

'भज मन, राम चरण सुखदाई'
निरबल के बलराम हमारे
झीनी झीनी बीनी चदरिया
सुमिर सुमिर नित राम नाम को,
आदि तथा' भजले भज ले, भज प्यारे
तू मन', आज राधा ब्रिज में चली'

दृढ़ भक्ति पूर्व जन्म के संस्कार पर भी निर्भर है। परमेश्वर के चरणों में अटूट प्रेमी उसी की कृपा पर ही है। वे लोग धन्य हैं जिन्हें अपने अराध्य के चरणों में अविचल भक्ति प्राप्त होती है। हृदय पल्लवित हो उठा है केवल अपनी इच्छा से कोई भावुक प्रेमी या भक्त नहीं बन सकता।[13]

भक्ति गीतों की परम्परा समाज में प्रचलित है व्यक्गित रूप में भी भक्तिगीत गाए जाते हैं और सामूहिक रूप में भी। व्यक्तिगत भक्ति गीतों में व्यक्ति के सांसारिक विषाद और संताप की छाया प्रमुख रहती है। व्यक्ति अपनी सांसारिक पराजय को भगवान के समक्ष रख कर अपना मन हल्का करता है और परमात्मा से इस संसार से छुटकारा पाने की कामना करता है।

सर्व धर्मों में भक्ति संगीत निरन्तर चलायमान है। कितना भी व्यथित हृदय हो, एक बार भक्ति भाव रस परिपूर्ण प्रार्थना व भजन उसके लिए शक्ति का केन्द्र है जिससे निकलने वाला आत्म शांति का सौम्य प्रकाश रोग ग्रस्त मन में व शोक सन्तप्त मन में अपूर्ण शांति व शीतलता का संचार करते है। भक्ति संगीत ईश्वर की जन-साधारण को विशिष्ट देन है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. 'संगीत' 1970 'भक्ति संगीत अंक' सम्पादकीय पृष्ठ, संगीत कार्यालय, हाथरस
2. काव्य का वैष्णव - मेहता नरेश पृष्ठ -7
3. 'सूर संगीत' हाथरस भाग-1 भूमिका पृष्ठ -5, संगीत कार्यालय, हाथरस
4. हरिभक्ति रसामृतसिंधु लोक 2 का पूर्व भाग
5. संगीत विशारद् - वसंत, संगीत कार्यालय हाथरस पृष्ठ -16
6. Post and Present History- Ratna Sagar P-56
7. सूर सारावली - सूरदास P.17
8. नृत्य भारती, सुधाकर प्रकाशन - संगीत कार्यालय -हाथरस संस्करण तीसरा - 1985
9. भक्ति काव्य पहचान और परख, प्रो. हरिमोहन अमर प्रकाशन-मथुरा
10. संगीत - 1965 सितम्बर-स्वामी शिवानन्द सरस्वती
11. वैदिक वन्दना गीत - सम्यकाम विद्यालंकार, आदि कथन-4 यह उक्ति बहुत सारगर्भित है।
12. पाश्चात्य संगीत और रविन्द्र ठाकुर - संगीत मई 1971, कलायन
13. 'संगीत अर्चना'-भट्ट विशम्भर नाथ

संगीत एवं धर्म का सम्बन्ध

सुप्रिया सिंह

भारतीय विचारधारा में धर्म का स्थान सबसे ऊपर रखा गया है। धर्म का लक्ष्य मनुष्य को सत्य मार्ग दिखाकर उसकी सांसारिक एवं आध्यात्मिक उन्नति करना है। हमारे जीवन का प्रत्येक पहलू धर्म से सम्बन्धित है और संगीत भी इससे अछूता नहीं है। संगीत का उद्भव भले ही मानव की सहज भावना एवं अदम्य प्रेरणाओं के अभ्यन्तर से हुआ हो, लेकिन उसका लालन-पालन एवं विकास धर्म के आंगन में ही हुआ है।

जैसा सर्वविदित है कि संगीत की उत्पत्ति ब्रह्मा जी के द्वारा हुई। ब्रह्मा जी ने यह कला शिवजी को दी और शिवजी के द्वारा देवी सरस्वती को प्राप्त हुई। सरस्वती जी से संगीत कला का ज्ञान नारद जी को प्राप्त हुआ तथा नारद जी ने यह शिक्षा स्वर्ग के गन्धर्व, किन्नर तथा अप्सराओं को दी और फिर वहाँ से ही भरत, नारद और हनुमान आदि ऋषि संगीत कला में पारंगत होकर भूलोक (पृथ्वी) पर उसके प्रचारार्थ हेतु अवतरित हुए। वास्तव में अगर देखा जाये तो संगीत का स्वरूप हमारे महर्षियों, योगियों के सतत चिन्तन, मनन व साधना से ही स्थिर हुआ है जिसके द्वारा ये अपने ईष्टदेव की आराधना करते थे। संगीत का आधार, नाद है। नाद को ब्रह्म माना गया है तथा सारा जगत नादमय है।

विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ संगीत की तीनो विधाओं का संबंध देवी, देवताओं से माना जाता है। अर्थात् जहाँ परमपिता परमेश्वर भगवान शिव के डमरू की ध्वनि व ताण्डव नृत्य, माता पार्वती का लास्य नृत्य, गणों के देवता श्री गणेश का मृदंग, मुरली मनोहर श्रीकृष्ण की वंशी की मधुर तान और वीणा-पाणि माँ सरस्वती की वीणा झंकार, समस्त सृष्टि में व्याप्त हो, वहाँ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संगीत में धर्म और धर्म में ही संगीत अन्तर्निहित है।

संगीत का सम्बन्ध वेदों से मान्य है, और वेद का बीज मंत्र है ओम, जो कि तीन शक्तियों का द्योतक है -

अ - ब्रह्मा की शक्ति का द्योतक

उ - विष्णु की शक्ति का द्योतक

म - महेश की शक्ति का द्योतक

इस प्रकार संगीत और धर्म में अटूट संबंध है तथा यह संबंध वैदिक युग से ही देखने को मिलता है। वैदिक युग में चार वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद का प्रमुख स्थान था। इन चारों वेदों की उत्पत्ति ब्रह्मा जी के चार मुख से मानी जाती है, जिसमें सामवेद पूर्णतया संगीतमय था। सामवेद को ईश्वर का अंश माना गया है। श्रीमद्भागवत् गीता में अर्जुन को अपना स्वरूप समझाते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं -

"वेदानां सामवेदोऽस्मि।।"

अर्थात् वेदों में 'मैं' ही सामवेद हूँ। इसी प्रकार भगवतपुराण में नारद से प्रभु श्रीकृष्ण कहते है-

"नाहं वसामि बैकुण्ठे, योगिना हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारदः।।"

शोध छात्रा, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

अर्थात् हे नारद मैं न तो बैकुण्ठ में रहता हूँ और न तो योगियों के हृदय में, बल्कि मेरे भक्त गण जहाँ गायन करते हैं, वहाँ मैं विद्यमान रहता हूँ। इस प्रकार भक्ति संगीत का प्रवाह आरम्भ से ही रहा है और यही कारण है कि कालान्तर में विकसित होने वाले धर्म भी उससे अछूते नहीं रहे हैं।

संगीत को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरूषार्थों का साधन बताया गया है। श्रुति ने कहा है कि-देवताओं के स्वामी विष्णु साम-गान द्वारा जितना जल्दी प्रसन्न होते हैं, वैसे यज्ञ-दान आदि द्वारा भी नहीं होते। पूजा से करोड़ गुना श्रेष्ठ-स्तोत्र होता है, स्तोत्र से करोड़ गुना श्रेष्ठ-जप तथा जप से करोड़ गुना श्रेष्ठ होता है-गान और गान से परे कुछ नही।

इसके अतिरिक्त हमारे यहाँ राग-रागिनियों का संबंध भी देवी-देवताओं से माना जाता है और प्रत्येक का काव्यमय भाषा में ध्यान और भावनात्मक चित्र भी चित्रित किया गया है। जिस प्रकार उपासना में मंत्र द्वारा देवताओं का आवाहन करते हैं, उसी प्रकार राग में देवी-देवताओं का आवाहन ध्यान द्वारा किया जाता है। यथा राग बागेश्वरी का ध्यान पथ-"अथ बागेश्री वीणा निनादी सुन्दर गौर गात्र कमल नयनी, कल्पतरू मूलेस्थिता नितम्ब विम्बौष्ठ भूषण रत्न विचित्रे बागेश्वरी द्वितीय प्रहरार्द्ध समय कौशिकि रागिणीये।।"

इसी प्रकार अनेक तालें देवी-देवताओं के नाम से है जैसे-गणेशताल, ब्रह्मताल, लक्ष्मीताल, विष्णुताल आदि तथा साथ ही विभिन्न गायन शैलियों जैसे-ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी, भजन-कीर्तन आदि सभी में कहीं न कहीं धार्मिक प्रवृत्ति परिलक्षित है।

इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते है कि "संगीत की सत्ता से पृथक ईश्वर की सत्ता नहीं है।" यदि हम ईश्वर तक पहुँचना चाहते हैं तो संगीत उसका सशक्त माध्यम है। प्रार्थना, स्तुति, आराधना आदि संगीत के ही रूप हैं, इसलिए संगीत को ईश्वर प्राप्ति एवं मोक्ष का भी प्रमुख साधन माना गया है। अर्थात् अगर यह कहा जाये कि संगीत और धर्म एक सिक्के के दो पहलू है, तो अतिशयोक्ति न होगी।

सन्दर्भ - सूची

1. धार्मिक परम्परायें एवं हिन्दुस्तानी संगीत - सचदेव रेनू, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली - प्रथम संस्करण, 1999
2. संगीत कला विहार पत्रिका - अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मंडल प्रकाशन, मिरज - अक्टूबर, 2003
3. संगीत कला विहार पत्रिका - अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मंडल प्रकाशन, मिरज - फरवरी, 2012
4. सौन्दर्य, रस एवं संगीत - शर्मा प्रो. स्वतंत्र प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली

'सौन्दर्यशास्त्र की अवधारणा'

डॉ. रावेन्द्र कुमार साहू

मनुष्य एक चेतनशील प्राणी है, उसके जीवन का उद्देश्य केवल समय व्यतीत करना नहीं है बल्कि जीवन को सत्यम, शिवम्, सुन्दरम से ओतप्रोत बनाना है। जीवन वह है जो दूसरों के काम आये, दूसरों के लिए प्रेरणा स्त्रोत हो, वह सुरूचि पूर्ण हो, सौन्दर्यमय हो, इसके लिए आवश्यक है कि हम सौन्दर्य के महत्व को जानें, समझें, आत्मसात करें, तभी जीवन की पूर्णता होगी। अपने लिए ही नहीं दूसरों के लिए भी। प्रस्तुत शोध-पत्र में सौन्दर्यशास्त्र के उपादानों को उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में ही जानने-समझने का प्रयत्न किया गया है।

विचार बिन्दु

सौन्दर्यशास्त्र की अवधारणा, अर्थ, परिभाषा, भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों के मत, सौन्दर्यशास्त्र के तत्व एवं निष्कर्ष।

सौन्दर्य रस का वस्तुगत पक्ष है। यही आनन्द तत्व कवियों का आराध्य एवं उपास्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी की दृष्टि में सौन्दर्य और मंगल पर्यायवाची है।"[1] कला पक्ष देखने में जो सौन्दर्य है। वही धर्म पक्ष देखने में मंगल, सौन्दर्य के बिना कवि कल्पना मूल्य विहीन होती है। सौन्दर्य के कारक ही काम सृजन की प्रेरणा में संलग्न करता है। यह सौन्दर्य बाहर की वस्तु नहीं है। वह मन के भीतर की वस्तु है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह नित नूतन अच्छा बोलने, सुनने और अच्छा देखने का सतत् प्रयत्न करता है। इस प्रकृति में सृष्टिकर्ता ने असीम सौन्दर्य बिखेरा है। मनुष्य उसे बटोरने का प्रयास करता रहता है। उसे जो अच्छा लगता है। उसके लिए लालायित भाव से प्राप्त करने की कोशिश करता है। साहित्य में आनंद अनुभूति को रस कहा गया है। और 'रसो व सः के अनुसार परमात्मा भी प्रतीत होने लगती है। तो उसे परमानन्द कहते है। यह आनन्द जिसे प्राप्त होता है। उसे सहृदय कहते हैं। ' उज्ज्वल चेतना के वरदान को सौन्दर्य विशेष कहते है। साहित्य और कला 'सत्यम शिवम् सुन्दरम् की भावना से भरा होता है। इनका मूल उद्देश्य स्त्रोता एवं पाठक को रस प्रदान करना होता है। यह रस आनंद या सौन्दर्य के नाम से जाना जाता है। इस सौन्दर्य अस्वादन के लिए 'पतंगा' दीपक की लौ में आत्मउत्सर्ग कर देता है। वीणा स्वर को सुनते हुए मृग बधिक के नुकीले तीरों की परवाह नहीं करता।

"पल-पल जो नूतन लगे वह अनुपम श्रृंगार।"[2]

जो वस्तु हमें बार-बार आकर्षित करती है। स्मरण में निरंतर बनी रहती है। उसकी कल्पना ही सौन्दर्य है। विद्यापति कहते हैं कि -

"जनम् अवधि हम रूप निहारलि।
कहूँ न निरपति भेल।।"

इसी तरह सूरदास कहते हैं -

'अँखियाँ हरि दर्शन की प्यासी।'

श्यामसुन्दरदास और बाबू गुलाबराय के अनुसार सौन्दर्य रस का वस्तुगत पक्ष है। सौन्दर्य की भाववादी व्याख्या में काम अथवा इच्छाओं ही सौन्दर्य का प्राण तत्व माना गया है। तुलसीदास ने कहा है -

---

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय सतना (मध्य प्रदेश)

"जाकि रही भावना जैसी
प्रभु देखी मूरत तिह तैसी।"

सौन्दर्य शब्द अपने पारिभाषिक अर्थ में अंग्रेजी शब्द 'ब्यूटी' का पर्याय है, ब्यूटी की एक व्युत्पत्ति इस प्रकार है - बोटी। बो का अर्थ है प्रिय अथवा रसिक या श्रृंगारी पुरूष और 'टी' भाववाचक प्रत्यय है। इस प्रकार ब्यूटी का शब्दार्थ हुआ। रसिक का भाव या रसिकता अथवा श्रृंगारी पुरूष का गुल।

सौन्दर्यशास्त्र हिन्दी में एस्थेटिक्स का पर्याय बनकर प्रचलित हुआ है। कुछ लोग इसे नन्दनशास्त्र भी कहते हैं। किन्तु सौन्दर्य के सच्चे स्वरूप और उपदेश को अच्छी तरह समझने के लिए 'एस्थेटिक्स' शब्द पर ही विचार करना आवश्यक है। कहा जाता है, कि 'एस्थेटिक्स' शब्द पर ही विचार करना आवश्यक है। कहा जाता है, कि 'एस्थेटिक्स' शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है। जिसका अर्थ होता है-ऐन्द्रिय सुख की चेतना।

हिन्दी साहित्य के कुछ रीतिकालीन कवियों की यह धारणा रही है कि 'सुन्दर' की रमणीयता न वर्तमान निकटता से घटती है। और निरन्तर भोग से दी जाती है। बल्कि सुन्दर वस्तु अपने अघट सौन्दर्य के कारण सौन्दर्य द्रष्टा के लिए हर क्षण नवीन होती जाती है। मुसकान की मिठाई खाने वाले 'मतिराम' ने एक आंकी अदा के साथ इस तथ्य को व्यक्त किया है।

"कुंदन को रंग फीको लगै,
झलकै अति अंगन चारू गोराई।
आँखिन में अरसानि चितौन में
मंजु बिलासनि की सरसाई।।
को बिनु मोल-बिकात नहीं,
मतिराम लहै मुसकान मिठाई।।
यों-ज्यों निहारिए नेरे हवै नैंननि,
त्यों-त्यों खरी-निकरै सी निकाई।।

मतिराम ही नहीं, विसासी सुजान से छले गये 'घनानन्द' के भी यही उक्ति है -

"रावरे रूप की रीति अनूप नयो-नयो लागत ज्यों-ज्यों हिरिये।
त्यों इन आँखिनि बान अनोखी, अघानि नहिं कछु आन निहारिये।।

महाकवि बिहारी ने भी सौन्दर्य के संबंध में अपनी अभिव्यक्ति को मुखरित किया है -

"समै-समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोय।
जाकी रूचि जेति जितै, तित तेतो सुन्दर होय।।"

सौन्दर्य के अर्थ में कला के पीछे जो मूल प्रेरणा काम करती है। वह है, सत्य और शिव की प्रेरणा जीवन का पुनः अनुकरण कला की सामान्य विशिष्टता है और इसी में उसकी चरितार्थता निहित है। कला-कृतियाँ बहुधा एक अन्य उद्देश्य का भी साधन करती है। वह यह कि जीवन की व्याख्या करने और जीवन के घटता प्रवाह पर अपना अभिमत प्रकट करने का सौन्दर्य क्या है? इस प्रकार विचार से स्पष्ट होता है कि वह वस्तु के भीतर और बाहर दोनों है। इसके साथ ही यह प्रश्न स्वाभाविक तौर से संबंद्ध है, कि सौन्दर्य कहाँ है, दर्शक श्रोता पाइक के मन में इस प्रश्न का समाधान करने की कोशिश पाश्चात्य विद्वान 'इ.एफ.कैरिट' कहते हैं। वे अपनी पुस्तक 'एन इन्ट्रोडक्शन टू एस्थेटिक्स' में लिखते हैं - "मनुष्य उस वस्तु को सुन्दर कहता है।"

सौन्दर्यशास्त्र को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है, यथा **प्लॉटिनस के अनुसार** - "जो हमारे अनुराग का विषय है। अतः वही सुन्दर है, मानव आत्मा अपने मूल उद्गम उस परम तत्व में मिलने के लिए व्यग्र रहती है। जो शिव और सुन्दर का आधार श्रोत है।।"[3]

रस्किन लिखते है - "सौन्दर्य ईश्वर की विभूति है। 'रस्किन ने मनुष्य में दो वृत्तियाँ मानी है, सहज वृत्ति और काल्पनिक वृत्ति। सहज वृत्ति के अंतर्गत ही सौन्दर्य बोध आता है। इन्होंने फिर "बायटल ब्यूटी' के भी दो भेद माने हैं - रिलेटिव और जेनेरिक।।"[4]

प्लेटो के अनुसार - "सुन्दर, शिव और सत्य एक है। सुन्दर 'परम' है, और पूर्ण है तथा सुन्दर के लिए नैतिक होना आवश्यक है।"[5]

सुकरात की मान्यता है - "सुन्दर और शिव एक है, अतः सुन्दर जीवन-सापेक्ष है।"[6]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ऐसे ही सौन्दर्यवादी दार्शनिकों को लक्ष्य करके लिखा है - "सौन्दर्य बाहर की वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है। यूरोपीय

कला समीक्षक की यह बड़ी ऊँची है, उड़ाने या बड़ी दूर की कौड़ी समझी गई है। पर वास्तव में यह भाषा के गड़गड़ झाले के सिवाय और कुछ नहीं है। जैसे वीर कर्म से पृथक वीरत्व कोई पदार्थ नहीं, वैसे ही सुन्दर वस्तु से पृथक सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं।''

पाश्चात्य विचारकों और भारतीय रस सिद्धान्तों के आचार्यो ने कला और कलाओं में निहित सौन्दर्य पर अपने-अपने तरह से चिन्तन किया है। संक्षेप में उन दोनों मतों का निरूपण उल्लेख मात्र के रूप में बतलाया जा सकता है। क्योंकि पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास भी कुछ मिलाकर लगभग ढाई हजार वर्षों का है। और भारतीय कला चिन्तन भी इससे क्रम पुरातन है।

''भारतीय वांगमय में सौन्दर्य शब्द का प्रयोग अधिक प्राचीन नहीं है। वेदों में और मूल उपनिषदों में यह शब्द उपलब्ध नहीं होता है। सौन्दर्य की अवधारणा उसके वाचक व्यंजक शब्दों तथा उक्तियों का अभाव नहीं है।''[7]

'रामायण' में सुन्दर शब्द सामान्य रूप से प्रयुक्त हुआ है- उसके एक भाग का नाम ही 'सुन्दर काण्ड' है। भारतीय वांग्मय में सौन्दर्य शब्द वेद उपनिषद् में आये, सीधे-सीधे से प्रयुक्त नहीं है। इसके व्यंजित शब्दों और उक्तियों में इसका प्रयोग आवश्यक है। 'रामचरितमानस' में से सौन्दर्य या सुन्दर शुभ मिलता है। सौन्दर्य एक अगोचर तत्व है। सुन्दर में सुदर्शन या नयनाभिराम सन्निहित है।

सौन्दर्य के मूल में प्रेम की भावना प्रत्यक्ष है। सौन्दर्य श्रृंगार से निकटता रखता है। 'वेद को उक्त सूत्र में प्रकृति के गोचर सौन्दर्य का उल्लास दिखलाई देता है। सौन्दर्य की मूल अवधारणा ऐन्द्रिक मानी गयी। रीतिकालीन कवियों के श्रृंगार में और भक्ति कालीन कवियों के काम में रूप और प्रीतिलीला में भी सौन्दर्य का विशिष्ट आकलन दिखलाई देता है।

आचार्य वामन के अनुसार -''सौन्दर्यम् अलंकारः।''

कुतंक की मान्यता है -''सुन्दरता का अर्थ है, रंजक होने के कारण रमणीय्।।''

आनन्दवर्धन लिखते हैं -''सौन्दर्य प्रातीयमान है। इस तरह यहाँ अलंकार ही सौन्दर्य है और अलंकार सौन्दर्य का पर्याय है।''

आचार्य वामन ने काव्य में अलंकार तत्व को माना है, और उसका अर्थ सौन्दर्य लिखा है। आचार्य उद्भट् ने मनोहारिता को सौन्दर्य माना है। इसी तरह भोजराज ने लावण्य को सौन्दर्य का प्रतिनिधि कहा है। इसी तरह सौन्दर्य और रस में अभेद माना है। आचार्य विश्वनाथ ने चाहुय को सौन्दर्य माना है। पण्डित राज जगन्नाथ तथा अभिनव गुप्त ने आनंद को सौन्दर्य माना है। इसी तरह डॉ. रामबिलास शर्मा प्रकृति, मानव जीवन और लालित्य कलाओं में आनंद को सौन्दर्य कहते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं -

''हमारी अन्तः सत्ता की तदाकार परिणति ही सौन्दर्य है।''

पाश्चात्य साहित्य में सौन्दर्य यूनानी भाषा के एस्थेटिक्स के पर्याय के रूप में जाना जाता है। जो ऐन्द्रिय बोध से सम्प्रत्य है। हीगेल ने एस्थेटिक्स को कला दर्शन से जोड़ा जिसका भावार्थ सौन्दर्य है। उन्होंने सौन्दर्यशास्त्र को 'वट वृक्ष' माना है। तथा इस तरह कला और प्रकृति में व्याप्त सुन्दर और उदात्त से है।

बाउम गार्तेन कहते है, - ''प्रकृति सौन्दर्य का चरम प्रतिमान है।''[8]

बेन के अनुसार - ''हमारे संवेग जो जीवन के प्रयोजनों से परे होते हैं। वहीं सौन्दर्य कई विचारक तो जीवन को ही सौन्दर्य मानते हैं।''[9]

प्लेटो की मान्यता है - ''सुन्दर शिव और सत्य एक है। सुन्दर परम और पूर्ण है। जिसके लिए नैतिकता आवश्यक है।''[10] इसी तरह अरस्तू के लिए सौन्दर्य शिव है, जो आनंद प्रदान करता है। सौन्दर्य रंगों और आकारों का वह संलिष्ट रूप है, जिससे देखकर सुखानुभूति होती है।''

सौन्दर्य व्यक्ति और स्थान के अनुसार बदल जाता है। जिसमें अनंत अभिलाषाओं के सपने जगते रहते हैं। उसे सौन्दर्य कहते हैं। सुन्दरस भाव सौन्दर्य अर्थात सुन्दर पदार्थों में रहने वाला धर्म विशेष इस सौन्दर्य के पर्यायओं में रमणीयता, सुचिता, लावण्य चारूता, शोभा, कांति, सौकुमारी, मनोहारिता आदि-आदि है। सुन्दर वस्तु के सृजन अथवा अस्वादन के समय कलाकार और रसिक की आत्मा जिस विशेष अवस्था को प्राप्त कर लेती है। उसी का नाम

सौन्दर्य है। सौन्दर्य का तप हृदय से अंकुरित होता है। और मानसिक शक्तियों के आधार पर सेविध और प्रस्फुटित होता है सौन्दर्य चेतना, शैशव अवस्था में पवित्र, युवा अवस्था में वासनात्मक तथा प्रौढ़ काल में स्वपनिल हो जाता है।

साहित्य में सौन्दर्यशास्त्र के तत्व को मुख्यतः चार भागों में बांटा गया है -

1. भाव 2. कल्पना 3. बिम्ब 4. प्रतीक

1. भाव - साहित्य का सर्व प्रमुख तत्व भाव ही है, वही उसकी आत्मा है। साहित्य का सर्व प्रमुख लक्षण प्रज्ञात्मकता है। जिसके लिए भावों का चित्रण अपेक्षित है। दूसरे साहित्य का लय की ज्ञान वृद्धि करना नहीं अपितु उसके हृदय को भावनाओं से अन्य इस लक्ष्य को पूर्ति भावों के चित्रण के द्वारा सम्पन्न होती है।

2. कल्पना - ललित कला के प्रमुख तत्वों में रचना की दृष्टि से कल्पना का सर्वोपरि स्थान है। कल्पना ही तत्व है। जिसके कलाकार को नूतन सृजन और अभिनय रूप व्यापार विधान की शक्ति प्राप्त होती है।

3. बिम्ब - ललित कला के प्रमुख तत्वों में बिम्ब भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसकी अनिवार्यता इसी से प्रकट है कि कला सृजन के क्षणों में कलाकार की सहजानुभूति की अभिव्यक्ति, बिम्बों के द्वारा ही आकार अथवा विधान मिल जाता है। अतः बिम्ब विधान भी बहुत अंशों में कलाकार की सहजानुभूति की अभिव्यक्ति की सफलता को प्रमाणित करता है।

उदाहरण - मैथिलीशरण गुप्त की 'मातृभूमि' शीर्षक कविता की निम्नांकित पंक्तियों में -

"नीलाम्बर परिधान हरित-पट पर सुन्दर है।
सूर्य-चन्द्र युग-मुकुट मेखला रत्नाकर है।।
नदियाँ प्रेम- प्रवाह, फूल तारे मण्डल है।
वन्दीजन खग-वृन्द, शेष-फन सिहांसन है।।
करते अभिषेक पयोद है, बलिहारी इस वेश की।
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेष की।।

4. प्रतीक - प्रतीक का दार्शनिक विचार करने वालों में लैंगर का महत्वपूर्ण स्थान है। लैंगर ने प्रतीक सृष्टि में चार पक्षों को अनिवार्य माना है। आश्रम, आलम्बन, वस्तु और धारणा। वस्तु और धारणा प्रतीक के तात्विक उत्पादन है। तथा आश्रय और आलम्बन प्रतीक के भाव पक्ष से संबंधित है।

दार्शनिक तर्क पद्धति से सौन्दर्यभूति का अर्थ होता है - पदार्थगत सौन्दर्य की अनुभूति। तुल्य भारतीय दर्शन में प्रायः प्रिय अथवा प्रीतिकार का ही पर्याय है। और प्रीतिकार वह है। जिसकी "सत्य आत्मनः का माय" होती है। अर्थात जो आत्मा का परितोष करता है। इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति एक प्रकार की आनंदमयी होती है। और आत्म परामर्श रूप अखण्ड चिन्मय आदि होती है।

उदाहरण के लिए - श्री हरिवंश सिंह शास्त्री ने शंकर के अद्वैत सिद्धान्त के आधार पर सौन्दर्य की परिभाषा प्रस्तुत की है - " स्थूल या सूक्ष्य जगत में आत्मा की अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है।"[11] इस प्रसंग में इन्होंने हीगल के शिष्य बियर को अपना आदर्श माना है। इन्होंने अपने दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि " जब कभी हमरी बुद्धि निष्काम होगी, तभी हमें सौन्दर्य बोध होगा, क्योंकि हमारी दृष्टि वस्तुओं के नाम पर पड़ती है, जिसमें ये सब नाम-रूप कल्पित हैं। एवं जो हमारा अपना स्वरूप है।" इतना ही नहीं सौन्दर्य के 'अंत-रंग' गुण को प्रधानता देने के कारण इन्होंने सौन्दर्यानुभूति और सौन्दर्याभिव्यक्ति का संबंध सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था से जोड़ा है। "इनके अनुसार सम्प्रज्ञात समाधि के अंतर्गत सवितर्क योग, सविचार योग और आनन्द योग की अवस्था में सौन्दर्यानुभव होता है। तथा सम्प्रज्ञात समाधि की अंतिम अवस्था-अस्मिता योग में सौन्दर्याभिव्यक्ति होती है। इस तरह शास्त्री जी ने सौन्दर्य आनंद को निष्काम आनन्द सिद्ध करते हुए सौन्दर्य बोध को ऋतम्भरा प्रज्ञा से संबंधित माना है।

निष्कर्ष यह है कि मानव क्या, मानवेतर प्राणियों पर भी सौन्दर्यनुभूति की बात चरितार्थ होती है। उदाहरण के लिए क्यों कुछ जीवधारियों के प्रकाश सुन्दर लगता है। और कुछ जीवधारियों को अंधकार। क्यों पागल पतंगा दीपक की लौ के सौन्दर्य में आकृष्ट होकर उस पर मर मिटता है। क्यों स्नेही चातक चाँदी की किरण मंजूषा चन्द्र की ओर सदा उन्मुख रहता है। क्यों "अगर प्रेसर" से झुकने

वाली सूर्यमुखी दिनकर का आलोक वरण कर उसके पीछे फिदा रहती है। संध्या के आते ही उसके विरह में नवग्रीव हो जाती है। ठीक इसके विपरीत क्यों उलूक को प्रकाश का सौन्दर्य आकृष्ट नहीं करता आशय स्पष्ट है कि सौन्दर्यानुभूति के लिए अपनी हृदयानुभूति आवश्यक है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. सौन्दर्यशास्त्र के तत्व- विमल डॉ. कुमार, संस्करण प्रथम 1967 प्रकाशकः राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ- 15
2. सौन्दर्यशास्त्र के तत्व- विमल डॉ. कुमार, संस्करण प्रथम 1967 प्रकाशकः राजकमल प्रकाशल प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ- 17
3. सौन्दर्यशास्त्र के तत्व- विमल डॉ. कुमार, संस्करण प्रथम 1967 प्रकाशकः राजकमल प्रकाशक प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ- 113
4. सौन्दर्यशास्त्र के तत्व- विमल डॉ. कुमार, संस्करण प्रथम 1967 प्रकाशकः राजकमल प्रकाशक प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ- 91
5. सौन्दर्यशास्त्र के तत्व- विमल डॉ. कुमार, संस्करण प्रथम 1967 प्रकाशकः राजकमल प्रकाशक प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ- 91
6. सौन्दर्यशास्त्र के तत्व- विमल डॉ. कुमार, संस्करण प्रथम 1967 प्रकाशकः राजकमल प्रकाशक प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ- 91
7. यू.जी.सी. नेट- प्रतियोगिता साहित्य सीरीज-तिवारी अशोक, प्रकाशकः साहित्य भवन सी 17, साईट सी, सिकन्दरा औद्योगिक क्षेत्र, आगरा-282007 (उ.प्र.) पृष्ठ- 266
8. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका-डॉ. नागेन्द्र, संस्करण प्रथम 2005, प्रकाशक : प्रकाशन नेशनल पेपर बैक्स 2/35 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली,पृष्ठ- 35
9. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका-डॉ. नागेन्द्र, संस्करण प्रथम 2005, प्रकाशक : प्रकाशन नेशनल पेपर बैक्स 2/35 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली,पृष्ठ- 35
10. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका-डॉ. नागेन्द्र, संस्करण प्रथम 2005, प्रकाशक : प्रकाशन नेशनल पेपर बैक्स 2/35 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ- 35
11. सौन्दर्यशास्त्र के तत्व- विमल डॉ. कुमार, संस्करण प्रथम 1967 प्रकाशकः राजकमल प्रकाशल प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पृ. 115

भारतीय संगीत में प्रशासनिक सेवाओं का योगदान

डॉ. केदार मुकादम

संगीत शिक्षा के क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। आधुनिक काल में संगीत शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार चरमोत्कर्ष पर पहुँच रहा है। देशी संगीत के अन्तर्गत शास्त्रीय संगीत एवं भाव संगीत का प्रचलन है। संगीत शिक्षा का अब तक जो विकास हुआ है उसका मुख्य कारण आधुनिक सभ्यता का विकास है। बड़े-बड़े विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों एवं शिक्षा संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में संगीत वैकप्लिक विषय के रूप में रखा गया है। आज के समय में शास्त्रीय संगीत शिक्षा पूर्व समय से ही महत्त्वपूर्ण है इस कारण संगीत साधकों में अध्ययन, अध्यापन और संगीत साधना करने की जागरूकता बढ़ती है।

वर्त्तमान समय के अत्यन्त व्यवस्ता एवं भागदौड़ी वाले सामाजिक वातावरण में प्रत्येक व्यक्ति अनेक प्रकार के संघर्षों तथा जीवन की जटिल समस्याओं से जूझ रहा है इस परिस्थिति में समाज का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग विद्यार्थी छात्र-छात्राएँ चाहे वे किसी भी स्तर के हो उन्हें भी उन समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिसमें उलझे रहने के कारण वे व्याकुल और चिन्तित हो जाते हैं। इस व्याकुलता मानसिक तनाव तथा चिन्ता को दूर करने के लिए संगीत शिक्षा अत्यनत सहायक सिद्ध होती है।

कालान्तर में गुरूकुल व्यवस्था से निकलकर संगीत संगीत शिक्षित घराने के रूप में विकसित हुई यद्यपि आरम्भ में संगीत का घरानों के रूप में विकसित होना संगीत की विशेषताओं को सुरक्षित रखने के कारण ही था, परन्तु घरानों के संकुचित मनोवृत्ति के फलस्वरूप संगीत शिक्षा का विषय कुछ व्यक्ति विशेष के लिए ही रह गया तथा जनसाधारण आम लोग के लिए ये विषय दुर्लभ हो गया था। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक आते-आते संगीत क्षेत्र में नवचेतना की लहर जागृत हुई। संगीत के पुनर्उद्धारक, पुनरूत्थान और सुधार के भावना के लिए पं. विष्णुनारायण मातखण्डे और पं. विष्णु दिगम्बर पलुष्कर के साधन प्रयासों से आज संगीत अपने चरमोत्कर्ष एवं आम जनता अधिकांश स्कूल एवं कॉलेजों के विषय के रूप में अध्ययन एवं अध्यापन कराया जा रहा है।

इन महान संगीत के पुनर्उद्धारक एवं संगीत को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने वाले दोनों महापुरूषों के अतिरिक्त स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने भी संगीत के विकास को उच्च स्थान देने के लिए अत्यनत महत्वपूर्ण कार्य किये। जैसे- रेडियो, संगीत सम्मेलनों परीक्षाओं के लिए संगीत संस्थाओं की स्थापना और विकास के लिए अनुदान की व्यवस्था की गई। संगीत को बढाने के लिए हर राज्यों में संगीत नाटक अकादमियों, सांस्कृतिक केन्द्रों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों के फलस्वरूप आज संगीत की झंकार प्रायः प्रत्येक घर में गूंज रही है।

प्रशासन मानव शक्ति युक्त होता है। प्राचीन समय से राजाओं, सम्राटों, सामंतों आदि के रूप में प्रशासन इन शक्तियों के उपयोग के रूप में सांस्कृतिक परम्पराओं के संरक्षण, पोषण एवं विकास के लिए कार्य करता आया है। वर्तमान समय में भी प्रशासन सांस्कृतिक केन्द्रों के माध्यम से इस कार्य को सम्पन्न कर रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में संगीत का प्रचार-प्रसार अत्यन्त तीव्रता से होने प्रारम्भ हुआ। इस कला की उन्नति के लिए प्रचर-प्रसा

प्राध्यापक तबला विभाग, फेकल्टी ऑफ परफोर्मिंग आर्ट्स, एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा

के लिए भी भारत सरकार की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। वर्तमान काल में मानव संसांधन विकास मंत्रालय के संस्कृति विभाग द्वारा विभिन्न योजनाओं पर कार्य हो रहा है जो निम्नलिखित है -

- स्वयंसेवी सांस्कृतिक संगठनों को भवन एवं उपकरण उपलब्ध कराने के लिए अनुदान सम्बन्धित योजना।
- हिमालय की सांस्कृतिक विरासत के परीक्षण और विकास हेतु वित्तीय सहायता योजना।
- अति प्रतिष्ठित कलाकारों को अवकाश प्राप्त करने के बाद फैलोशीप की योजना तथा प्रदर्शन, साहित्य और रूपंकर कलाओं के क्षेत्र में उत्कृष्ट कलाकारों कनिष्ठ फैलोशिप प्रदान करने सम्बन्धी योजना।
- सेमिनारों, शोध परियोजनाओं आदि के आयोजन तथा सांस्कृति संगठनों के विकास हेतु वित्तीय सहायता येाजना।
- महत्वपूर्ण व्यक्तियों को शताब्दी मनाने के लिए स्वयंसेवी संगठनों को आर्थिक सहायता प्रदान करने सम्बन्धी योजना।।1

सम्पूर्ण भारत को सात क्षेत्रों में विभक्त करके इन सांस्कृतिक केन्द्रों की सथापना की गई है। अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अन्तर्गत स्व-प्रतिभा-प्रदर्शन हेतु विभिन्न राज्यों, देशों में भोजन सुनिश्चित करता है जिससे एक राष्ट्र विशेष की कला एंव सांसकृतिक परम्पराओं से दूसरे राष्ट्र न केवल अवगत होता है बल्कि पारस्परिक प्रेम एवं सौंदर्य भाव को भी प्रोत्साहन प्रापत होता है। इसके अनेक विभाग है जिससे संगीत कला, ललित कला, स्थापत्य कला, नाट्यकला इत्यादि अनेक योजनाएँ भारत सरकार के द्वारा कलाकारों को प्रोत्साहन हेतु सम्मिलित किया गया है। थोड़े-थोड़े इन सभी योजनाओं को प्रकाशित करना चाहूँगा।

- राष्ट्रीय सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम : राष्ट्रीय सांस्कृतिक संवाद कार्यक्रम के अन्तर्गत ये केन्द्र अन्तरक्षेत्रीय सहयोग पर कार्य करते हैं।
- संगीत एवं नाटक कार्यशालाएँ एवं कार्यक्रम : विभिन्न राज्यों के वैविध्य को एक सूत्र में पिरोने हेतु युवा छात्र वर्ग का समाश्रय लेकर विभिन्न कार्यक्रम एवं कार्यशालाओं का समय-समय पर आयोजन का भार ये केन्द्र ग्रहण करते हैं।
- संगीत नाटक अकादमी : कला का ज्ञानात्मक पक्ष की परिपक्वता, परम्पराओं के निर्वाह के रूप में सांस्कृतिक सदृढता एवं उसका बहुउद्देशीय प्रयोग, कला की संवादात्मकता एवं अभिव्यक्ति की प्रगाढ़ता पर निर्भर करता है जिनके अभाव में किसी भी कला के प्रचार- प्रसार के लिए किये गए प्रयत्न खोखले एवं उद्देश्यहीन रह जाते हैं। इसलिए संगीत कला के सम्यक् विकास पर परीक्षण, संवादात्मक प्रयोजनीयता, प्रचार-प्रसार तथा संगीत कला सहित नृत्य एवं नाट्य कलाओं से सम्बन्धित कलाकारों की प्रतिभा को प्रकाशित करने एवं उन्हें प्रोत्साहित करने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने जनवरी सन् 1953 में संगीत नाटक अकादमी की स्थापना की।
- अकादमी पुरस्कार एवं रत्नसदस्यता सम्मान : कला संरक्षण का दायित्व प्रशासन पर आने के परिणामस्वरूप कला के विकास एवं कलाकारों को प्रोत्साहित करते हुए उनकी कलात्मक प्रतिभा को देश की धरोहर के रूप में निखारने एवं सँवारने के उद्देश्य को लेकर यह अकादमी अस्तित्व में आई। यह सम्मान किसी भी जीवित कलाकार के लिए उसके जीवन-स्वप्न की परम्परा 1951 से चली आ रही है, तब यह सम्मान राष्ट्रपति पुरस्कार के नाम से जाना जाता था और भी बहुत सारी संस्थायें हैं जो वर्तमान समय में संगीत को प्रोत्साहित करता आ रहा है।

उदाहरण स्वरूप :

- अन्तर-राजीय सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम
- राष्ट्रस्तरीय संगीतोत्सव एवं नृत्य समारोह
- भारतीय अन्तर्राष्ट्रीय संगीत समारोह
- दुर्लभ कला-विधाओं का परीक्षण
- गीत एवं नाटक विभाग
- भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिक्षण
- नेशनल सेन्टर फोर दी परफोर्मिंग आर्ट्स, मुम्बई

- संगीत शोध संस्थान, कोलकाता आईटीसी 1978 में स्थापना हुई थी।
- संचार माध्यम
- आकाशवाणी
- दूरदर्शन
- स्वैच्छिक संगठन : "Society for Promotion of Indian Classical Music and CultureAmongst Youth" है।
- स्वर साधना समिति
- इण्डियन म्यूजिक काँग्रेस
- संगीत लोक
- स्वर मंजरी
- आराधना
- सुर संगम
- संगीत कला मंच जालन्धर
- नाद मण्डल
- व्यावसायिक संगठन (विज्ञापन कम्पनियाँ)

सन्दर्भ सूची :-

1. मानव संसाधन विकास मंत्रालय के "संस्कृति विभाग" की विवरण पुस्तिका सं।
2. संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली से मिली जानकारी के आधार पर।
3. श्री एन. नवचन्द्रा सिंह - पूर्व उपनिदेशक गीत एवं नाटक विभाग, इम्फाल तत्पश्चात् दिल्ली में उपनिदेशक के तौर पर कार्यरत 27.05.1998 को डॉ. अमर चन्द्र जग्गा द्वारा लिए गए साक्षात्कार से उद्धत।
4. To propagate the government idias, various development issues relating to nation, song and Drama, Division using classical semi-classical music and song to make them popular from class to masses, even to our grassroot level through social and interpersonal communication Shri P.K. Nandy Joint Director & D.D., New Delhi and interview on 27.05.98 by Dr. A.C. Jagga
5. सक्सेना डॉ. प्रो. मधुबाला भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उनका वर्तमान स्तर।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संगीत-शिक्षा का अभ्यासक्रम, शिक्षण-कार्य एवं मूल्यांकन के सन्दर्भ में विश्लेषण तथा प्रस्तुत विषय में उस्ताद मौला बख्स का योगदान

विश्वास विजय कुमार संत

वर्तमान समाज में औपचारिक शिक्षण की व्यापकता अत्याधिक बढ़ती जा रही है। अनेकविध विषयों में अनेकों अभ्यासक्रम विकसित किये गए हैं। अत्यन्त बड़े पैमाने पर विद्यार्थी उनके अंतर्गत विद्या-प्राप्ति हेतु आते हैं, जिनके लिए अनेक शिक्षक भी नियुक्त है। इस प्रकार हमारे मानव-संसाधन का बहुत बड़ा हिस्सा शिक्षण से जुड़ा हुआ है, ऐसा कहना अनुचित नहीं है। मानव-संसाधन शिक्षण में संलग्न है, जो हमने पूरक या सहायक के रूप में उपयोग में लिए हैं। अतः हम अपनी काफी समय-शक्ति-सम्पत्ति शिक्षण-तंत्र में जुटाए हुए हैं।

शिक्षण का हेतु मानव का सर्वांगीण विकास उसकी परिष्कृति है, उसमें संदेह नहीं है। इतने बड़े पैमाने पर जो तंत्र चल रहा हो, उसे सुव्यवस्थित बनाए रखने के लिए भी जागरूकता आवश्यक हे। हमारे शिक्षण-विदों द्वारा शिक्षण को लेकर विचार -विमर्श, विश्लेषण होता रहता है, जो सराहनीय है। शिक्षण-जगत की वर्तमान परिस्थिति को ध्यान में लें, तो यह अनिवार्य आवश्यकता है।

हमारे शिक्षण-जगत में अनेकों विषय समाविष्ट है। सभी के अपने-अपने प्रश्न भी है। वर्तमान समय में ललितकलाएँ भी औपचारिक शिक्षण में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी है। उनमें से संगीत से संलग्न होने के नाते, मेरे द्वारा यहाँ संगीत-शिक्षण सम्बन्धित पहलूओं पर कुछ अवलोकनात्मक विश्लेषण एवं विचार-विमर्श प्रस्तुत है। शिक्षण-क्षेत्र में वह कुछ उपयोगी हो, वही प्रयास है।

संगीत अति प्राचीन कला है। सभी कलाओं की तरह संगीत भी प्रान्त एंव समय के मुताबिक नाविन्य ग्रहण करता है, वैविध्यसभर और परिवर्तनशील है। अतः अन्य प्रदेशों की भांति भारत में भी संगीत की प्राचीन काल से चली आई एक परम्परा है, एक निजी ढंग है।

हमारे संगीत में मुख्य दो धाराएँ हैं - लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत।

लोक संगीत अन्य लोककलाओं की तरह आम लोगों द्वारा बना संगीत प्रकार है, जिसका विधिवत शिक्षण नहीं होता। शास्त्रीय संगीत का निश्चित शास्त्र है। वह नियमों में सुव्यवस्थित की गई विधा है। भारत में शास्त्रीय संगीत साधना का मार्ग रहा है और तालीम का क्षेत्र भी।

प्राचीनकाल में संगीत शिक्षा का जो स्वरूप था, उससे आधुनिक काल का काफी भिन्न है। प्राचीन काल में संगीत विद्वान संगीतज्ञों द्वारा गुरू-शिष्य परम्परा से सिखाया जाता था। उस समय संगीत-शिक्षण विश्वविद्यालयों में नहीं होता था। वर्तमान समय में परिस्थिति में परिवर्तन आया है। विश्वविद्यालयों में संगीत को भी एक विषय की तरह सिखाया जाता है। शिक्षा के इन दोनों प्रकारों में काफी तफावत है।

असिस्टेंट प्रोफेसर (सितार) डि. ऑफ इंस्ट्रूमेंटल म्यूजिक, फैकल्टी ऑफ परमोर्मिंग आर्टस, एम.एस. वि.वि. , बड़ोदरा

यह सत्य है कि औपचारिक शिक्षा के अपने निजी नियम-नीति रीति हैं, फिर भी एक प्राचीन कला होने के नाते भारतीय संगीत की शिक्षा में कुछ जगह प्राचीन शिक्षा परम्परा को भी स्थान दिया जाये, तो संगीत शिक्षण बेहतर हो पाएगा।

विश्वविद्यालय में हरेक विषय का निश्चित अभ्यासक्रम होता है, संगीत भी उनमें समाविष्ट है। गुरू-शिष्य परम्परा में कोई निश्चित अभ्यासक्रम नहीं होता था। शिष्य की क्षमता एवं प्रगति को ध्यान में रखते हुए गुरू उसे विद्यादान किया करते थे। तब कुछ 'पूर्ण कर देने' की जल्दी नहीं हुआ करती थी, अतः शिक्षा अत्यंत ठोस, गहरी हो पाती थी। वर्तमान विद्यालय शिक्षण में अभ्यासक्रम काफी विस्तृत होते हैं। उन्हें पूर्ण करने की जल्दबाजी में प्रत्येक राग को जो वक्त मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाता। तालीम जितनी विस्तृत होनी चाहिए वह नहीं हो पाती। परिणाम स्वरूप विद्यार्थी का स्तर अत्यंत निम्न रह जाता है, जो आनेवाले कल के शिक्षक हैं। जब शिक्षण-कार्य उनके हाथ में जाता है, तब ये गहरी, विस्तृत शिक्षा देने के लिए सक्षम ही नहीं होते और अगली पीढ़ी और भी कच्ची शिक्षा प्राप्त कर पाती है।

अभ्यासक्रम में यदि कुछ राग-संख्या कम की जाए, तो तालीम का स्तर ऊँचा आ सकता है। संगीत वैसे भी एक कला है, जो मन-स्थिति से, मानसिक शांति स्वस्थता से जुड़ा हुआ है। अभ्यासक्रम पूर्ण करने की जल्दबाजी में कला कतई नहीं टिक पाती। रागों की संख्या कम करने से यदि संगीत-शिक्षा का स्तर उपर आ सकता है, तो ऐसा करना सराहनीय है। अभ्यासक्रम उतना ही होना चाहिए, जितना निश्चित समयावधि में पूर्ण किया जा सके। यहाँ ध्यान रहे, कि राग एक 'प्रश्न' की तरह नहीं है, जो पूर्णतः सम्पूर्ण हो पाए। वह अमर्यादित है, उसे पूर्ण करना सम्भव नहीं है। अतः औपचारिक शिक्षण की भाषा में कहा जाए, तो अन्य विषयों में यदि एक 'यूनिट' में 4 या 5 प्रश्न रखे गए हो, तो संगीत के क्रियात्मक के अभ्यासक्रम में भी एक 'यूनिट' में 4 या 5 राग रख देना उचित नहीं होगा। एक राग एक प्रश्न से कई अधिक लम्बा होता है। शास्त्र के एक प्रश्न से कई अधिक समय क्रियात्मक में एक राग को थोड़ा-बहुत आत्मसात करने-करवाने में लगता है। तो इस विषय में आवश्यक परिवर्तन अपेक्षित है।

अभ्यासक्रम में सैद्धान्तिक पक्ष को अत्याधिक स्थान, समय देना भी कला के लिए प्रोत्साहक नहीं रह पाता। आखिर कला क्रियात्मक विधा है। इसमें शास्त्र है, पर वह क्रियात्मक का सहायक है। शास्त्र में इतना अधिक समय नहीं देना चाहिए, जिससे क्रियात्मक के लिए आवश्यक समय न मिल पाए। कला में बिना क्रियात्मक कौशल्य का सैद्धान्तिक ज्ञान कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। यहाँ भी परिवर्तन की आवश्यकता है।

संगीत प्रस्तुति की कला है। अतः इसकी शिक्षा में भी प्रस्तुतीकरण की तालीम समाविष्ट हो, वह अनिवार्य है। अन्यथा शिक्षाकाल के पूर्ण होने पर भी विद्यार्थी रंगमंच पर प्रस्तुतीकरण के लिए सक्षम हो ही नहीं पाते। उनकी प्रस्तुतीकरण की तालीम शिक्षाकाल के दौरान होनी चाहिए। प्रस्तुतीकरण को अभ्यासक्रम में विशेष प्रमाण में ध्यान देना चाहिए। वैयक्तिक रूप में, सामूहिक रूप में तथा शिक्षक के साथ भी रंगमंच प्रस्तुति के अवसर विद्यार्थियों को शिक्षा के दौरान अपने विद्यालय में ही मिलना चाहिए।

यहाँ उल्लेखनीय है कि सिर्फ अभ्यासक्रम में परिवर्तन आवश्यक नहीं है। संगीत में शिक्षण का ढंग भी अधिक योग्य हो वह अपेक्षित है। शिक्षक स्वयं अच्छा संगीतकार हो वह अनिवार्यतः आवश्यक है। साथ ही, उसकी निष्ठा के बिना कला की उच्च तालीम सुनिश्चित नहीं हो पाएगी। गुरू-शिष्य परम्परा में गुरू में जो गहराई, जो क्षमता, तथा शिष्य के लिए अपनापन था, वह यदि विद्यालय के शिक्षक में नहीं है तो विद्यालय से कलाकार मिलना सम्भव नही है। अन्य किसी भी क्षेत्र की तरह संगीत में भी शिक्षक की निष्ठा शिक्षा-स्तर के लिए अत्याधिक जिम्मेवार है।

अभ्यासक्रम और शिक्षण-कार्य के उपरांत और एक महत्त्वपूर्ण पहलू है मूल्यांकन। अन्य किसी भी विषय की तरह संगीत-शिक्षा में भी मूल्यांकन-पद्धति की योग्यता अत्यंत आवश्यक है। संगीत-शिक्षण का सच्चा मूल्यांकन सिर्फ सामान्य परीक्षा-पद्धति से नहीं हो पाता। उसमें भी प्रस्तुतीकरण का स्थान

अत्याधिक महत्त्वपूर्ण है। क्रियात्मक की परीक्षा यदि एक-दो परीक्षकों के सामने न होते हुए अनेक शिक्षकों, समाध्यायियों के समक्ष रंगमंच-प्रस्तुति के रूप में हो, तो उत्तम है। उससे विद्यार्थी के सांगीतिक कौशल का सच्चा मूल्यांकन हो सकता है और सब से बड़ा लाभ यह होता है कि विद्यार्थी सिर्फ परीक्षार्थी न बने रहते हुए कलाकार बनने की दिशा में कार्यरत होंगे।

उल्लेखनीय है कि यहाँ जो सुझाव सूचित किए हैं, वे सिर्फ काल्पनिक या अवास्तविक हैं, ऐसा नहीं है। जब संगीत ने विश्वविद्यालयों में स्थान लिया, तब शिक्षण का स्वरूप कुछ ऐसा ही था। घरानेदार तालीम को औपचारिक शिक्षा के रूप में ढालने का यहाँ प्रयास किया गया था। तालीम की कक्षा, उसका स्तर निम्न नहीं हुआ था, बल्कि शायद अधिक तर्कपूर्ण और सुव्यवस्थित हुआ था। उस समय कुछ प्रखर विद्वान संगीतज्ञों ने उत्तम कॉलेजों की स्थापना की तथा उसमें उम्दा शिक्षण-पद्धति को स्थान दिया। ऐसे विद्वानों में उ. मौला बख्स का नाम सर्व प्रथम लिया जाए तो अनुचित नहीं है। उनकी शिक्षण-पद्धति वाकई में बहुत ही सराहनीय थी।

उ. मौला बख्स बड़ौदा के महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड़ के दरबारी संगीतज्ञ थे। उन दोनों ने साथ मिलकर सन् 1886 में 'गायनशाला' के रूप में संगीत संस्थान की स्थापना की, जो कालान्तर में भारत की सर्व प्रथम म्यूजिक कॉलेज बनी। इससे पहले संगीत घरानों में ही था, जहाँ एक ही गुरू अनेक शिष्यों को पारम्पारिक ढंग से तालीम देते थे। इस संस्थान में स्वरलिपि, शास्त्र, अभ्यासक्रम, परीक्षा, इत्यादि औपचारिक शिक्षण के पहलूओं को स्थान दिया गया। संगीत की पुस्तकें भी प्रकाशित की गई।

उस समय संगीत के अभ्यासक्रम में क्रियात्मक को 60 प्रतिशत और शास्त्र को 40 प्रतिशत स्थान दिया गया था। शिक्षक के रूप में घरानेदार संगीतज्ञों को नियुक्त किया गया था। शिक्षा के दौरान प्रस्तुतीकरण को अत्याधिक महत्त्व दिया जाता था। परिणाम स्वरूप इस संस्थान से जो नींवी कार्य हो पाया, उससे कई विद्वान संगीतज्ञ हुए। इसी मजबूत धरोहर के कारण यह म्यूजिक कॉलेज आज तक टिक पाई है।

परन्तु आज दृश्य कुछ अलग है। यू.जी.सी. के नियमानुसार अभ्यासक्रम में शास्त्र को सिर्फ 70 प्रतिशत और क्रियात्मक को 30 प्रतिशत स्थान दिया गया है। शिक्षक भी डिग्रीधारी हैं, कलाकार सिर्फ नाम के हैं। यहाँ शास्त्र में पारंगत विद्यार्थी को क्रियात्मक में पारंगत विद्यार्थी की अपेक्षा अधिक गुण प्राप्त होते हैं, नौकरी के सम्भावना भी उन्हीं को अधिक मिलती है। पूरा माहौल कागज़ी काम का सिर्फ शास्त्र आधारित हो गया है, होता जा रहा है। जहाँ कला के लिए खतरा ही है।

इस उदाहरण से तात्पर्य यही है कि औपचारिक शिक्षण में भी संगीत की उच्च तालीम सम्भव है। आवश्यकता है दृष्टि की, जागरूकता की और सब से अधिक संवेदना की। वर्तमान समय में शिक्षा की अन्य विधाओं की तरह संगीत में भी जो परिस्थिति है, उसमें परिवर्तन लाने की आवश्यकता अनिवार्य रूप से है। संगीत-शिक्षण से जुड़े हुए होने के नाते इसमें सम्भावित योगदान देना हमारा परम कर्त्तव्य है। यहाँ जो सुझाव सूचित किए हैं, वे सिर्फ काल्पनिक या अवास्तविक हैं, ऐसा नहीं है।

संदर्भ :

1. संगीत विशारद - 'वसंत'।
2. राग परिचय - श्रीवास्तव श्री हरिश्चन्द्र।
3. बाला संगीतमाला - उ. मौलाबख्स।
4. गरबावली - उ. मौलाबख्स।

नागार्जुन के काव्य में संगीत तत्त्व

राजकुमार

नागार्जुन संघर्षरत जनता के कवि हैं। सिद्धान्त मनुष्य के लिए होते हैं न कि मनुष्य सिद्धान्त के लिए। लेकिन, बिना सिद्धान्त का मनुष्य मनुष्य नहीं पशु हो जायेगा। यह भी उसी सत्य का दूसरा पहलू है। सिद्धान्त जड़ता से ग्रस्त होकर सिद्धान्त नहीं रह जाते, वेरूढ़ि बन जाते हैं। कवि नागार्जुन की लड़ाई इसी रूढ़ि से होती है। इसलिए तथाकथित राजनीतिक आकलनकारों को कवियों में विक्षेप और विचलन प्रायः दिखाई दे जाता है। जबकि सच्चाई यह है कि कवि का यह 'विचलन' सिद्धान्त का जड़ता पर प्रहार है न कि सिद्धान्त के मूल तत्व पर। नागार्जुन की कविता जनांदोलन की कविता है। यह सावधान करती चलती है, उद्वेलित करती है, आह्वान करती है, नारे लगाती है और कभी-कभी उकसाती और उत्तेजित भी करती है। यह कविता तटस्थ पाठक को धकेल कर जुलूस के भीतर तक पहुँचादेती है, उसके अंदर सत्य का पक्षधरता पैदा करती है और धीरे-धीरे उसे सक्रिय कार्यकर्त्ता में भी बदल सकती है।

चूँकि यह कविता एकयात्री की कविता है जो स्वर्ग से पाताल तक की यात्रा अनायास ही करता रहा है। इन कविताओं का पाठ इतना सहज है कि अपढ़ जनता तक इस कविता के अर्थ-संसार में आसानी से पहुँच बना लेती है। इसलिए यह संभव हुआ कि अपने समय के सबसे अधिक लोकप्रिय कवि के रूप में नागार्जुन का स्थान अद्वितीय बना रहा। जहाँ एक ओर इन कविताओं का निःसंग सधुक्कड़ी स्वभाव है तो वहीं दूसरी ओर घोषित तौर पर यह प्रतिबद्धता की कविता है। प्रतिबद्धता से भी आगे बढ़कर यह आबद्धता और संबद्धता की कविता है। संबद्धता ऐसा जैसा पिता पुत्र और माँ बेटे के बीच की। आबद्धता ऐसी जैसी पति पत्नी, भाई-बहन के बीच की। और प्रतिबद्धता ऐसी जो संबद्धता और आबद्धता के साथ-साथ एक सैद्धांन्तिक-संवेदनात्मक चेतनात्मक-क्रियात्मक एकता का प्रतीक है। नागार्जन ने मानो फ्रीमंकर्स, शुद्ध कलावादियों को चुनौती देते हुए, अपना घोषणा पत्र जारी किया हो, प्रतिबद्ध हूँ। संबद्ध हूँ / आबद्ध हूँ। बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित/संकुचित 'स्व' का आपाधापी के निर्शधार्थ। अविवेकी भीड़ की भेड़िया धसान के खिलाफ/अंध बधिर व्यक्तियों को सही राह बतलाने के लिए। अपने आपको व्यमोह से बारबार उबरने की खातिर/प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा प्रतिबद्ध हूँ। नागार्जुन की प्रतिबद्धता दूसरों को दिशा दिखाने के साथ-साथ अपने आपको भी लगातार कसौटी पर कसते रहने की प्रतिबद्धता है। यह प्रतिबद्धता हर प्रकार का जड़ता, भेड़िया धसान और अपने अभ्यांतर के अंधकार से लगातार संघर्ष करने की प्रतिबद्धता है। इसलिए कभी कभी विचलनों के बावजूद नागार्जुन ने खुलकर आत्मलोचना की और अपने 'भटकाव' को भी स्वीकार किया।

प्रसिद्ध है कि नागार्जुन 'जनकवि' हैं। 'जनता का साहित्य किसे कहते हैं वाले मुक्ति बोधीय अर्थ में नहीं बल्कि जनता के साथ प्रत्यक्ष तात्कालिक सबंध में बधे 'लोकप्रिय' कवि के अर्थ में। हलांकि विराट निरशरता और अपनी ऐतिहासिक समस्याग्रस्तता में घिरे फंसे आत्मविस्मृत उत्तरभारतीय समाज में नगार्जुन जैसे जनकवि का लोकप्रियता भी एक बिडम्बना ही जगाती है। नागार्जुन एक अर्द्धकिसान कवि हैं। हलांकि वे मिथिला की मिट्टी का अपनी खरी उपज हैं और मैथिली भाषा की

शोध छात्र, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा।

आंचलिक कविता में उनका अग्रणी जगह है, उसके अलावा उनके उपन्यासों में भी आंचलिकता को रेखांकित किया जाता रहा है। लेकिन सारतः वे एक चकित मुदित कौतुकी घुम्मकड़ है, जिसका आधुनिकता के नये से नये रूपों से भी जीवित संपर्क रहा है। यानी शहरी देहाती दोनों ही दुनियाओं का उन्हें खूब अनुभव है। उनकी दुनिया किसी संक्षिप्त बंद वृत की सांस्कृतिक सीमाओं में घिरी कभी नहीं रही।

नागार्जुन की सबसे बुनियादी और दिलचस्प खूबी यही लगता है कि हर हाल में वे चारों ओर फैले हमारे इसी दृश्यमान संसार के कवि हैं। इस स्पंदनशील और पार्थिव जगत के जैविक ओर दुर्निवार अटूट संबंध में बंधे, इसमें हर पल जाग्रत हर पल लिप्त रहने वाले इन्द्रिय सजग कवि हैं। इस तरह इहलोक से उनका संबंध बड़ा ही मूलगानी - पूरी तरह बिना शर्त, नाभिनाल का। हमारे माया जगत का ऐसा संपूर्ण प्रतिनिधि कवि , ऐसे प्रबल पक्षपोषक, हिन्दी में दूसरा ढ़ूंढ़ना कठिन हैं। वे एक इसी के गुरूत्वाकर्षण और सम्मोहन से बंधे-बंधे चलते हैं। वे इसी पानी का मछली हैं। इसमें सांस लेने की तरह ही उनकी कविता होती है।

हम जानते हैं कि नागार्जुन कालिदास और विद्यापति के प्रबल आकर्षण में रहे लेकिन इनका प्रभाव नागार्जुन पर वैसा निखालिस नहीं है जैसे किसी समय रविन्द्रनाथ और बांग्ला स्वच्छंदता वादका निराला पर था। विद्यापति की पदावली का जो अनुवाद बाबा ने किया है, वह बेहद दिलचस्प है। बाबा का पाठ पढ़ कर लगता है जैसे हम विद्यापति को नही, प्राकृत में लिखी प्राचीन 'गाथा-सप्तशती' की गाथाएँ पढ़ रहे हैं। दरबारी कवि विद्यापति अपने भव्य लालित्य का छद्म गरिमा को उतार कर जैसे देहात-कस्बे के लोकजीवन के प्रेमी युगलों के दांव-पेंचों से भरे किस्से सुना रहे हैं। इसके बाद कोई ताज्जुब नहीं होता कि कैसेविद्यापति मिथिला की लोकसंस्कृति के नियमित हिस्से बन गये होंगे। कालिदास में बाबा की दिलचस्पी भी इस जगह से है। 'बादल को घिरते देखा है' जैसे कविता यदि गौर से पढ़े तब यह पता चलेगा की अद्भूत अधूरे प्रकृति चित्रों में पिड़ाई हुई 1939 में लिखी गयी इस कविता में बाबा कैसे हिमालय का मनोहारी सुंदरता को तमाम आवंकित मिथकीय दबाबों से अलग कर देते हैं। संस्कृति का आभास इन सभी बातों को सहज ही लग जाता है। नगार्जुन परंपरा के गहरे पारखी और दृष्टिसंपन्न थे, इसलिए परंपरा की तानाशही से मुक्त थे और उससे संघर्ष भी कर सकते थें उनके संकलन 'रत्नगर्भ' की कविताएँ इस संदर्भ में देखा जा सकता है जिसमें बुद्ध, अहिल्या, राम-लक्ष्मण, महाभारत इत्यादि के प्रसंगों पर वह लंबी कविताएँ लिखने की जदोहहद करते दिखते हैं। इतिहास, परंपरा, समाज, राजनीति, प्रकृति की बहुआयामितता को वह नकारते नहीं है।

यदि कविता हमारी ऐंटिक संरचना का हिस्सा नहीं बनती तो वह हमारी सौन्दर्य-चेतना, संवेदना और सृजनात्मकताका हिस्सा भी नहीं बनती। वह हमारी मनुष्यता को आलोकित करने का काम कैसे कर सकती है। नागार्जुन की कविताएँ यह काम अपने भाषा संस्कर, बिंबों की सघनता और लयात्मकता के बल पर करती है। शब्द संपदा उन्होंने संस्कृत से और लोकचेतना मैथिली से अर्जित की है। लोकसंगीत ने उनकी लय और बिंबात्मकता दोनों को संपन्न किया है। संगीत को उन्होंने नजदीक से जाना है, तभी तो कतिपय संगीत के महत्वपूर्ण एवं गूढ़ शब्द अनायास मिल जाते हैं।

भारतीय संस्कृति में तो ईश्वर भी नाचते हैं। कृष्ण नाचते हैं, शिव तो सपरिवार नाचते हैं। कृष्ण, गणेश और पार्वती के, और विद्या की देवी सरस्वती वीणा लिए रहती हैं। विश्व संगीत के लोक के निकट जाने की हम कल्पना नहीं कर सकते। भाषा हमने लगभग अन्तिम कला के रूप में पायी है। भाषा के पहले लय, अभिनय, चित्रकला हमारी मनुष्यता अर्जित कर चुकी थी। कविता अपनी ताकत के लिए इन सभी का इस्तेमाल करती है। प्रायः सभी कवियों ने इन तत्वों का भरपूर इस्तेमाल किया है। इन सभी कवियों का अधिकार लय पर रहा है।

यह सब कहने का आशय यह नहीं है कि कविता को छंद में लिखा जाना चाहिए। बल्कि यह है कि छंद को, लय और ताल को समझ ज़रूर लेना चाहिए। इसे समझे बिना न तो कवियों को समझ पायँगे और न अपनी तात्कालिक कविता पर सार्थक दृष्टिपात ही कर पायेंगे। यइ भी समझ लेना चाहिए कि सरल गद्य के वाक्यों के पीछे बोली की स्वाभाविक

लय छिपी होती है। अक्सर अच्छी कविताओं के शुरू की पंक्तियों बोली की इस लय का डिज़ायन रस देता है, ओर आगे की-पंक्तियाँ इसक अनुसरण करती है। इस छिपी हुई लय का पता सामान्यतः कविता पाठ के दौरान ही चल पता है। यहाँ यह कहना भी जरूरी है कि विचारों का भाषा लयात्मक होना सहज संभव नहीं होता। उसे फ़ालतू शब्दों का प्रयोग करके लयात्मक बनाने की कोशिय भी नहीं करनी चाहिए। इस तरह भाषा कुछ सख़्त और सपाट हो जाती है। इसकी भरपाई कवि कैसे करता है? उसे अर्थ की ऊँची छलांग लगाने और संवेदनात्मक बनाने के लिए कवि अपनी काव्य प्रतिमा और कौशल का इस्तेमाल कैसे करता है, यही उसका क्षति की कसौटी बनती है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं उपशास्त्रीय संगीत का ऐसी जानी-पहचानी ज़मीन है। जिस पर कई सौ सालों से ठुमरी एवं कजरी के बोल रचनो की रवायत रही है। शास्त्रीय संगीत के तमाम सारे घरानों में ठुमरी के बालों को छोटे-से पदवंध में बांधा जाता है, जिसमें कि श्रृंगारपरक, विरहमूलक या कि प्राकृतिक शब्द चित्र को लयपूर्वक गूंथा जाता है। इस संदर्भ में सबसे प्रचलित परिपाटी यही रही है कि हम किसी शब्द युग्म को, सरगम या तानों को, या कि अंतरा के बीच मुखड़े को बार-बार लय देती हुई क्रमिकता में इस्तेमाल करें। ऐसा करने से स्वतः ही एक लय, दो या तीन पक्तियों के बीच कायम हो जाती है, जिसे ठुमरी के बोल बनाते वक्त गायक एवं वादक सम पर आने के लिए बार-बार प्रयुक्त करते हैं। अब नागार्जुन की कविता को ठुमरी के बोलों से देखें तो पायेंगे कि प्रकृति के सलोने दृश्य को एक शब्द चित्र की तरह छोटे से पद बंध में रचते हुए दूसरी लाइन में 'मेघ बजे' की टेक ले रहा है। मात्रा सोलह पंक्तियों की यह कविता, दरअसल आठ पंक्तियों में ही संभव हो रहा है। शेष आठ पंक्तियाँ अपने टेक कलय को ख्यायी या मुखड़े की तरह बार-बार दोहरा रही है, जिनसे अगर हम ठुमरी का गायन संपन्न न भी करें, तो पायेंगे कि वह अपने पाठ में पूरी लय, ताल और विन्यास लिए हुए हैं।

'घन-कुरंग' को पढ़ते हुए, कोई भी संगीत का साधक या विद्यालय उसमें लय, ताल, छंद और सम आदि को बखूबी निभा लेगा। यदि हम इसे स्व में गाना न भी चाहें , तो भी यह कविता अपने पढ़ जाने पर एक निश्चित लय और वाक्यों के बीच अंतराल और मौन की मांग करता है।, जिसमें उसका पूरा गठन और सौष्ठव उभर आये। जाहिर है , नागार्जुन जब यह कविता लिख रहे होंगे, तब भले ही उन्हें इस बात का भान न रहा हो कि वह ठुमरी या कजरी के बोलों की कसौटी पर किसी कविता को अंजाम दे रहे हैं। मगर उनके व्यक्तित्व में उस परंपरा का बोध अवश्य ही मिला हुआ था, जिसमें ऐसी सरस कविता वे लिख पाये। अधिकांश प्रकृति चित्रण की कविता में यह टेकनुमा टोन था कि स्थाई का दोहराव पाया जाना कोई साहित्यिक प्रयोग नहीं बल्कि संगीत का वह संस्कार है, जो इन प्रकृति प्रेमी कवियों को सुलह रहा है। संपूर्ण शोध में हुई अनुभूति से मैं पूरी सहजता से मैं इतना कहना चाहूँगा कि संगीत का परोक्ष और उदात्त प्रभावी ही नागार्जन की अधिकांश ऐसी कविताओं का उपजीव्य रहा है जिसके चलते वे इतनी प्रवाहमयी कविता लिख रहे, जिसकी जड़े शास्त्रीय संगीत की बंदिशों, कजरी और ठुमरी के बोलों, गजलों की शेरो -शायरी, भजन की भक्ति, दोहे की शक्ति आदि के माध्यम से रची-बरती गयी हैं।

इस प्रकार नागार्जुन के काव्यों में सहजता, सरलता, सजीवता, मर्म स्पर्शिता एवं प्रभावोत्पादकता सर्वत्र पूर्णता के साथ समाविष्ट है। इसलिए संगीतात्मकता तथा लयात्मकता सर्वत्र प्रचुर रूप से परिदृष्ट है। इनके काव्यों की भावनात्मक अनुभूति और नवीन कल्पना को चमत्कारिक एवं चरमोत्कर्ष बनाने में संगीत तत्वों का विशेष योगदान है। भावानुरूप कामल एवं सुमधुर शब्द-संयोजन, लय, यति, गति-प्रवाह, छन्दबद्धता, आकार की लघुता, मात्राओं का साम्य, रागात्मकता एवं तालबद्धता ने इनके गीतों को विशेष सांगीतिक सौष्ठव प्रदान किया है।

चिकित्सा में लोकनृत्य की भूमिका

डॉ. विवेक वर्मा

सांस्कृतिक धरातल के विभिन्न स्तरों की झांकी लोकनृत्य में अधिक मिलती है। प्रत्येक देश की संस्कृति का मूल उत्स वहाँ के लोकजीवन में परिव्याप्त है। लोकनृत्यों से समाज में सौन्दर्यानुभूति का तत्व प्रखर होता है।

प्राचीनकाल से मानव इतिहास में संगीत अनेर नृत्य का सम्बन्ध शारीरिक रोगों के उपचार के लिए उल्लिखित है। आदि मानव नृतय के द्वारा शब्दातीत भाव व्यक्त करता था, जैसे धार्मिक आस्था, भय ओर अत्यक्त के प्रति आश्चर्य की भावना। किसी व्यक्ति, समूल अथवा अनेक समूलों के लिए नृत्य की शक्ति, प्रभाव और अनेक उपयोगों के बारे में ऐतिहासिक और नृवैज्ञानिक आलेखों में प्रचुर प्रमाण प्राप्त होता है। नृत्य समय का संबल पाकर धीरे-धीरे आस्था से जुड़ता गया। इसलिए आज नृत्य में चिकित्सा करने की शक्ति का भी आरोपण होने लगा। वाद्यों की लय के साथ मानव शरीर स्वयमेव थिरकने लगता है। जब यह हरकत समूह में होती है तो उसमें उपचार की अलौकिक सामर्थ्य पैदा हो जाती हें नृत्य के द्वारा अनजाने में ही Physotherpahy और Psychotherapy मिल जाती है।

1. शारीरिक स्वास्थ्य (Physical Health)
2. मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health)
3. सामाजिक स्वास्थ्य (Social Health)

लोकनर्तक द्वारा उपर्युक्त तीनों प्रकार के तत्वों का समावेश नृत्य में स्वतः हो जाता है। लोकनृत्य में केवल मनोरंजन ही नही वरन् स्वास्थ समाज के निर्माण की सारी प्रक्रिया अन्तर्निहित है। अतः तीनों ही प्रकार के स्वास्थ्य की चर्चा कर रहा हूँ -

1. शारीरिक स्वास्थ्य

लोकनृत्य शरीर की अनेक क्रियाओं से मिलकर बने है। यथा-कूदना, झुकना, उछलना, चक्कर लगाना, दौड़ना, बैठना, हाथों को घुमाना आदि। यही क्रियाएँ जब नृत्य संरचना मं कई बार दोहराई जाती है तो शरीर की विभिन्न मांसपेशियों को बल मिलता है। गीत तथा लय के साथ इन नृत्यों में थकान का अनुभव नहीं होता, क्योंकि नृत्य के समय रक्त का संचार प्रचुर मात्रा में होताहै तथा ऑक्सीजन भी अधिक मात्रा में सांस द्वारा ली जाती हे। नृत्य संरचना में भाग लेने वाल को लय के इस प्रवाह में आनंद की प्राप्ति होती है। बायोलॉजी की दृष्टि से इस प्रकार की Neuromusicular क्रियाएं स्वभाविक होती है और यही शारीरिक क्रियाएँ नृत्याकार की भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति बन जाती है।

मानव शरीर के संतुलन को बनाने में मांसपेशियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्हीं मांसपेशियों में जब दुर्बलता और विकृति आती है तो शरीर में अनेक रोग पैदा हो जाते हैं और इन विकृतियों के कारण शरीर की शक्ति का ह्रास होने लगता है। मांसपेशियों की विकृति के दो कारण हैं -

1. जब उन्हें आवश्यक व्यायाम नहीं मिलता।
2. जब मानसिक तनाव होता है।

लोकनृत्य के द्वारा विकृति के ये दोनों ही कारण समाप्त हो जाते हे। परिणामतः शरीर और मन स्वस्थ रहता है।

शिमला, हिमाचल प्रदेश

आजकल देश एवं विदेशों में भी यौगिक क्रियायें लोकप्रिय हो रही है क्योंकि ये शरीर को लचीला बनाकर मांसपेशियेां को संचलन देती है। शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिए आज पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति में Physiotheraphy और Psychotherapy पर काफी शोध किये जा रहे है। अमेरिका में नृत्य की शिक्षा शरीर की विकृतियों का उपचार करने के काम में ली जाती है। डाक्टरों की सहायता से कुशल प्रशिक्षकों में नृत्य से शारीरिक विकृतियों को ठीक करने का अद्‌भुत काम किया है यथा घायल अथवा मानसिक विकृति से पीड़ित रोगी का उपचार करने के लिए। सामुदायिक व्यायाम मूलक नृतयों का प्रयोग पश्चिमी देशों में अत्यधिक हो रहा है। भारत में लोकनृत्यों की बहुत ही सुदृढ़ परम्परा आज भी विद्यमान है। इन नृत्यों में उपचार की अद्‌भुत क्षमता भी है। शरीर में होनेवाली विभिन्न बीमारियों के लिए जैसे मांसपेशियों व जोड़ों के दर्द में जो Psychotherapy दी जाती है, उसके तत्व हमें लोकनृत्यों में स्पष्ट मिलते है। Psychotherapy में क्षीण होती मांसपेशियां अथवा जोड़ों की बीमारी के उपचार में अंग संचालन को कई बार दोहराना आवश्यक होता है। अतः इन नृत्यों में धीमी लय और धीमी गति उसी प्रकार का प्रभाव डालती है जेसे जमे हुए जोड़ों अथवा दुर्बल होती मांसपेशियों के लिए Psychotherapay दी जाती हें शरीर के जोड़ों और मांसपेशियों का स्वस्थ और लचीला बनाने के लिए लोकनृत्य महत्वपूर्ण psysiological प्रक्रिया है। लोकनृत्य घंटों तक चलते हैं, इस नृत्य के दौरान इसके हृदय की गति लय के साथ-साथ चलती है और नर्तक जोर-जोर से सांस लेना शुरू करता हें जिससे उसके फेफड़ों और मस्तिष्क को प्रचुर मात्रा में ऑक्सीजन मिलती है। मानव शरीर को तीन भागों में विभक्त कर चिकित्सा को स्पष्ट किया जा सकता है -

1. Upper Extremity or Cervical Spine (Head, Neck, Shoulder joints & arms)
2. Rest of Spin (a) Thoracic (b) Lumer
3. Lover Extremity (Legs, Foot)

Uper Extremity का नृतय में संचलन :-

गर्दन और रीढ़ के शेष भाग की समस्याएं सामान्यतया बहुत दुखदायी होती है। हमारे शरीर के अधिकतर स्नायु या तो रीढ़ में से निकलते है या Irticulations द्वारा बननेवाले छिद्र Formina में से गुजरते है। अगर Foremina छोटे हो जाते हैं तो स्नायुओं की जड़ों पर दबाव पड़ता है जो बहुत कष्टदायक होता है और कई बार मनुष्य को बेकार बना देता हें ऐसा लगता है कि शरीर को बेकार करनेवाली अधिकतर बीमारियां रीढ़ की हड्डी की उपेक्षा कने से होती हें योग Physiotherphy अथवा लोकनृत्य के द्वारा मिलनेवाले व्यायाम से ये बीमारियां ठीक की जा सकती है।

नृत्य में शरीर का संचालन बहुत कोमल होता हैं इससे शरीर के सारे जोड़ों को और पूरी रीढ़ की हड्डियों के जोड़ लचीले हो जाते है। कई बार अलग-अलग नृत्यों में शरीर के अलग-अलग भाग कार्य करते है किन्तु इनके सारे नृत्यों में पूरी रीढ़ की हड्डी विशेष तौर Cervical Spine इस तरह से व्यायाम करती है कि उसको स्वास्थ रखनेवाली मांसपेशियां ताकतवर हो जाती है।

Side of side movement को Intervertebral movement करते हैं। इसका अर्थ होता है रीढ़ की हड्डी को चक्की की तरह चलाना। शरीर के Articulations and Intervertebral joints जो साधारण जीवन में काम नही करते, उनका व्यायाम इन नृत्यों के माध्यम से हो जाता है। लोकनृत्यों में कंधों को हिलाना और नितम्बों को घुमाना आदि विशेष तोर से होता है। वैज्ञानिक Depalma के अनुसार गर्दन के दर्द के लिए सबसे अच्छा व्यायाम सिर पर किताब रखकर चलना। सिर पर किताब रखकर चलने के लिए Cervical spine को सीध रखना पड़ता है और इस प्रक्रिया में नसों की जड़ों को राहत मिलती है। लोकनृत्यों में सिर पर घड़ा रखकर हाथों का विभन्न प्रकार से संचालन होता है, जिसमें गर्दन का संतुलन अतिआवश्यक है। इस नृत्य से Sterho mstoid muscls बलशाली होती है, जिससे upper Extermity सीधी रहती है। लोकनृत्यों से मिलने वाला व्यायाम उन्हें स्वस्थ रखता है।

Thorcic vkSj Lumber spine का नृत्य में चालन :-

beryl Kenndy Mapa के अनुसार "रीढ़ की ड्डी का नीचे का हिस्सा जिसे Lumber Spine हते हैं, सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। इस Lumber pine को अपने स्थान पर सुरक्षित रखने में जिन ांसपेशियों का योगदान है उन्हें Abdominal nuscles कहते है। इन मांसपेशियों में विकृत आने र कमर में दर्द प्रारंभ हो जाता है और धीरे-धीरे ारीर की कार्य क्षमता घटती जाती हैं इसे चिकितसा द्धति की भाषा में Dynamic abdominal Bracing DAB) कहा जाता है। आधुनिकीकरण और भौतिक ुख सुविधाओं के कारण आज शहरी महिलाओं में कमर और जोड़ों की बीमारी अधिक देखने में आती है। इसका मुख्य कारण उचित और निरंतर व्यायाम नही मिलना है। लोकनृत्य में बार-बार झुककर आगे बढ़ा जाता है। नृत्य में बार-बार होने वाली यह प्रक्रिया इन्हें आवश्यक व्यायाम देती है और नृत्यकार लय में खोकर मानसिक तनाव से मुक्त जब यह प्रक्रिया करता है तो मांसपेशियां स्वतः Relaxed हो जाती है।

कमर की बीमारियों का दूसरा कारण उन मांसपेशियों में जकड़न पैदा होना है जिनसे शरीर के जोड़ संतुलित होते है। इन मांसपेशियों की जकड़न से रीढ़ की हड्डी टेढ़ी हो जाती है और इसी प्रकार शरीर का कोई भी हिस्सा विकृत हो सकता है। लोकनृत्य में इस रोग के निवारण हेतु यह व्यायाम Anterior Abdominal muscles को स्वतः ही मिल जाता हे।

Lover Extremity का नृत्य में संचालन :-

Lover Extremity में घुटने का जोड़ जिसे Pattela कहते हैं महत्वपूर्ण स्थान है। जब मांसपेशियों और जोड़ों में क्षय होने लगता है तो घुटनों में दर्द होता है। लोकनृत्यों में पद-संचालन मुख्य होता है। इससे घुटनों और टांगों को व्यायाम भी मिलता है। घुटनों तथा जोड़ों के दर्द में लोकनृत्य अच्छी औषधि का कार्य करती है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष मिलता है कि लोकनृत्यों द्वारा मांसपेशियां स्वस्थ रहती है और इनके स्वसी रहने से हड्डियां भी मजबूत रहती है। नृत्यों के द्वारा सभी अंग बारी-बारी से व्यायाम करते हैं। इसमें सारा शरीर क्रियाशील होकर सुन्दर ओर आकर्षक बनता है। इस कला से मानव लंबे समय तक जीवंत रहता है।

2. मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health)

देश के कई इलाकों में दिनभर के थके श्रमिक ताल वाद्य पर थाप पड़ते ही घर से बाहर निकलकर समूह नृतय में तल्लीन हो जाते हैं। लय से ओतप्रोत जीवन पद्धति के कारण ये गहरी नींद सोते हैं। इन्हें अनिद्रा जैसा रोग नहीं होता। लोकनृत्य और लोकगीत उनको चिंताओं से मुक्त कर मानसिक संतोष देता है। यह एक मनोवैज्ञानिक इलाज है। महाकवि टैनसन ने कहा है - "यदि लोकनृत्य और लोकगीत लुप्त हो जाएं तो समाज में पागलों की संख्या अधिक हो जाएगी। क्योंकि लोकनृत्य और लोकगीत व्यक्ति को विषम परिस्थितियों का सामना करने की प्रेरणा देता है। मानव शरीर का सबसे महत्वपूर्ण भाग मस्तिष्क है। मानव शरीर की समस्त क्रियायें मस्तिष्क द्वारा संचालित होती है। इसलिए मस्तिष्क का स्वस्थ रहना अत्यधिक आवश्यक है। लोकनृत्य थके हुए मस्तिष्क को अहलाद प्रदान करके ऐसे प्रभाव उत्पन्न करते हैं जो उत्तेजक होते हुए भी अपना सृजनात्मक प्रभाव पैदा करते हैं। इसी संदर्भ में पं. भातखण्डे के अनुसार "लोकनृत्यों को उचित रीति से सीखने पर उसका सुन्दर परिणाम मन और शरीर दोनों पर पड़ता है चिन्ता और थकान से मृतप्रायः स्नायुओं को पुनर्जीवित करने में लोकनृत्य प्राणदायिनी औषधि का कार्य कारते हैं।"

हमें स्वीकारना होगा कि लोकनृत्यों में मानसिक तनाव को समाप्त करने की क्षमता है। शास्त्रीय नृत्यों में भी व्यक्ति तोड़े टुकड़ों में बंधा दर्शकों का अधिक से अधिक मनोरंजन करने के प्रयास में तनाव से पूर्णतः छुटकारा नहीं पाता। किन्तु लोकनृत्य में लयात्मक अंग संचालन यंत्रवत हो जाता है नर्तक लय में थिरकते रहते हैं और मस्तिष्क तनाव से मुक्त रहता है। इस क्रिया में जो ऊर्जा की अनुभूति होती है उसके नशे में लोग सारे दुख भूल जाते हैं।

इस तरह नृत्य का सबसे अनमोल पक्ष यह है कि यह मस्तिष्क के तनाव को पूर्णतया समाप्त कर देता है।

3. सामाजिक स्वास्थ्य (Sockal Health)

सामूहिक रूप से गाने-बजाने और नाचने का महत्व प्रायः सभी देशों ने माना है। इन मिली-जुली सामुदायिक क्रियाओं से एक दूसरे का मन मिलता है और भावात्मक अभिव्यक्ति प्रखर होती है। हमारे देश में विवाह, पर्व, उत्सव आदि में लोकनृत्य और लोकगीत का प्रचलन है। अतः ये नृत्य जब तक समूह में होंगे तब तक समाप्त नहीं होंगे। इन नृत्यों के कारण ही समाज संगठित रहेगा। समूह नृत्य ऐसे समाज की सृष्टि करता है जिसमें विचार साम्य और क्रिया की एकरूपता है। इसी से मानव में सहृदयता का विकास हुआ है। नृत्य संचालन में मूक भाषा का भी संप्रेषण होता है। अच्छी और बुरी अनुभूतियों का भावात्मक विकास होता है। नृत्य के द्वारा उसे अपने और समाज के वातावरण से एक होने की क्षमता मिलती है।

लोकनृत्यों में सामूहिकता की प्रक्रिया इस प्रकार होती है - नृत्य में हाथ से ताली बजाना, एक दूसरे का हाथ पकड़ना, एक दूसरे के कंधों पर हाथ रखना आदि। इसमें अनुशासन, आत्मीयता और एकात्मकता पैदा होती है। Marina chace (1953) के अनुसार "नृत्य में दूसरे व्यक्ति के शरीर को छूने से झिझक समाप्त हो जाती है और यह झिझक वृताकार नृत्यों में जल्दी समाप्त होती है।

अक्सर जैसे जैसे नृत्यकारों को लोकनृत्य में संतोष होने लगता है वैसे ही वे एक दूसरे से खुलकर बात करते है और विचारों का आदान प्रदान सहज हो जाता है। समूह नृत्य के द्वारा जब आत्मीयता और अनुशासन के तत्व मजबूत होते है तब मानव एक दूसरे के लिए त्याग करने को तत्पर हो जाता है, वह दूसरों के सुख-इदुख की संवेदनाओं में भी भागी होता है और ऐसा समूह ही सुगठित समाज बनाता है।

सूरदास का संगीत संसार

डॉ. रामशंकर

उक्ति चोज अनुप्रास बरन अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्‌भुत तुक धारी।।
प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि हृदय हरि लीला भासी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी।।
बिमल बुद्धि गुन और की जो यह गुन सवननि धरै।
सूर कबित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै।।

श्री सूरदासजी की कविता को सुनकर ऐसा कौन कवि है जो आनंद में भरकर सिर नहीं हिलाने लगता हो। इनकी कविता में सुन्दर सरस उक्तियां, मधुर व्यंग्यपूर्ण उपहास (सुभाषित, अनोखा भाव, रहस्य), अनूठे अनुप्रास और ललितवर्ण-मत्री अत्यंत प्रचुरता के साथ वर्तमान है। इनकी वाणी में प्रेम का ओर-छोर निर्वाह देखा जाता है तथा कविता में प्रयुक्त शब्दों के संबंध का पूर्णरूपेण निर्वाह पाया जाता है अर्थात् परस्पर मत्रीयुक्त शब्दों का प्रयोग किया गया है। पदों में अंत्यानुप्रास बड़ा ही मनोरम है तथा प्रत्येक पद में विलक्षण भावार्थ निहित है। दिव्य दृष्टि होने से इनके हृदय में भगवान् की संपूर्ण लीलाएँ प्रतिबिम्बित होकर प्रकाशित होती थीं, अतः भगवान् के जन्म, कर्म, रूप, गुणादि को प्रेमपूर्वक गाने अथवा श्रवण करने से लोगों की बुद्धि निर्मल हो जाती है तथा निर्मल गुणों से युक्त हो जाती है अर्थात् उन्हें भी भगवान् की लीलाओं का संगीतमय प्रवाह के भक्तसागर में बहाने लगता है।

वास्तव में सूरदास जी मनुष्यों में मुकुटमणि हुए। वे पूर्ण भगवद्‌भक्त थे। श्री बल्लभाचार्य के शब्दों में वे 'भक्ति के सागर' और श्री गोसाई विट्‌ठल नाथ की सम्मति से 'पुष्टिमार्ग के जहाज' थे। उनका 'सूरसागर' काव्यामृत का असीम सागर है। वे महात्यागी, अनुपम विरागी और परम प्रेमी भक्त थे। भगवान् की लीला ही उनकी अपार, अचल और अक्षुण्ण संपत्ति थी।

महाकवि सूरदास जी त्यागी, विरक्त और प्रेमी भक्त थे। श्री बल्लभाचार्य के सिद्धांतों के पूर्ण ज्ञाता थे। उनकी मानसिक भगवत्सेवा सिद्ध थी। वे महाभागवत थे। उन्होंने अपने उपास्य श्री राधारानी और श्री कृष्ण का यश-वर्णन को ही श्रेय-मार्ग समझा। गोपी-प्रेम की ध्वजा भारतीय-साहित्य में फहराने में वे अग्रगण्य स्वीकार किये जाते हैं। उन्होंने बताया है कि 'गोपीजनों के भाव से भक्ति भगवान् के भजन से पुष्टिमार्ग के रस का अनुभव होता है। इस मार्ग में केवल प्रेम की ही मर्यादा है।

भारतीय संगीत के मूल तत्त्वों को संरक्षण प्रदान करने में ब्रज के देवालयों का विशेष योगदान रहा है, जिसकी आधारशिला हैं ब्रज के भक्त-संगीतज्ञ तथा वे महान् संगीताचार्य, जिन्होंने काल-परिवर्तन से समय-समय पर शास्त्रीय संगीत पर आधारित वाणियों का गान करके न केवल भक्ति भावना को प्रधानता दी, वरन् शास्त्रीय संगीत के विकास तथा प्रचार तथा प्रसार में भी अपूर्व सहयोग दिया। इन वाणियों में शास्त्रीय संगीत के तीनों अंगों (गायन, वादन, नृत्य), सांगीतिक शब्दावली एवं विभिन्न रागों तथा तालों का प्रयोग प्रचुर मात्र में किया गया है। अतः स्थूल रूप से तो संपूर्ण भारत में वैष्णव भक्तों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक धरातल का परिपोषण हुआ परंतु उत्तर भारत के ब्रज-प्रदेश में जिस पराकाष्ठा तथा समर्पण की भावना से वैष्णव-संप्रदाय से संबद्ध भक्त-संगीताचार्यों द्वारा शास्त्रीय संगीत का आधार लेकर अपने-अपने साम्प्रदायिक विधि-विधानों से परात्पर तत्त्व को प्राप्त करने के लक्ष्य से माधुर्य भाव से युक्त भक्ति-भावना का प्रसार किया गया, वह

गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

निःसंदेह ब्रजभूमि को गौरवान्वित करता है। इसमें महाकवि सूरदास का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

वास्तव में इस कालखंड में संगीत एवं पद-गायन की वह पहली धारा, जो शाही-दरबारों की शोभा बनकर रसवर्षा कर रही थी, मनोरंजन के आनंद का साधन बन रही थी। उसी युग में दूसरी धारा आत्मिक आनंद, भगवत्प्राप्ति हेतु ब्रजभूमि में भक्त-कवि-गायकों द्वारा सभी को, जनमानस एवं सम्राट को रस विभोर करने के लिए बहाई जा रही थी। भक्ति-आंदोलन से जुड़े सभी भक्त-संतों का आत्मिक भावनात्मक लगाव सहज ही रस-खान वृन्दावन से था, चाहे वो बंगाल के चैतन्य महाप्रभु हों, चाहे गुजरात के नरसी मेहता, राजस्थान की मीरा, अवध के तुलसी हों, बल्लभाचार्य, सूर, हरिदास, कुंभनदास, हित हरिवंश हों।

ग्वालियर का ध्रुपद संगीत 15वीं शती के मध्य में ही परम ब्रह्म कृष्ण की जन्म स्थली, क्रीड़ा-स्थली मथुरा-वृन्दावन में पहुँच गया था, 100 वर्ष के भीतर ही भीतर ब्रज से जुड़े भक्त-कवि-गायकों ने अपने प्राणप्रिय प्रियतम के माधुर्य रस का पान करने के लिए ध्रुपद गायकी को उच्चस्थ स्थान पर पहुँचा दिया। ग्वालियर से ब्रजभूमि पहुँचे संगीत एवं गेय पद साहित्य के विकास और प्रचार-प्रसार में अनेकों ख्यात-अख्यात, ज्ञात-अल्पज्ञात, अज्ञात संतों, भक्तों तथा गायकों का स्तुत्य योगदान रहा, इनमें महाकवि सूरदास का योगदान विलक्षण एवं अविस्मरणीय है।

सोलहवीं शताब्दी, संगीत और भक्ति-काव्य के समन्वय की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही, क्योंकि इसी शताब्दी में भक्ति-आंदोलन अपनी परिपक्व अवस्था में पहुँचकर तत्कालीन राजनीति, समाज, धर्म एवं संस्कृति पर अपना सकारात्मक प्रभाव डाल रहा था, स्वयं मुगल सम्राट अकबर भी महाकवि सूरदास के दिव्य भक्ति-रस-संगीत से प्रभावित हुए बिना न रह सके। वास्तव में इनका युग समन्वय, एकता, संगठन का युग था, भगवद् भक्तों की स्वतंत्रता का युग था। इसी काल में आपने 'सूरसागर' के माध्यम से एवं भक्तिपूर्ण काव्य-प्रचार से संगीत कला को भगवत्प्राप्ति का साधन बनाकर उच्चतम शिखर पर पहुँचाने का विलक्षण कार्य किया। मध्ययुगीन भक्ति-परंपरा भी सरस, सहज एवं परम प्रेममयी उपासना विधि में 'सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो बज्राधिपः' की छाया में श्रीकृष्ण के वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव से लाड़ लड़ाने और रिझाने के लिए आपने समस्त विद्या और कला-साधनाओं के साथ कीर्तन-प्रणाली का सरस समन्वय किया।

महाकवि सूरदास ने अपनी भक्ति को ब्रजभाषा के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। ब्रजभाषा उनके आराध्य श्रीकृष्ण की जन्म और लीला-भूमि की भाषा है। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने तो ब्रजभाषा को पुरुषोत्तम भाषा की संज्ञा दी है। अतएव ब्रजवाणी ही वेद बनकर कृष्ण-भक्त संगीतज्ञों की कंठवाणी पर थिरकी। इसीलिए ब्रजभाषा संगीत के रथ पर चढ़कर आनंदकंद श्रीकृष्ण की लीला भूमि से गुजरात, राजस्थान से बंगाल, पंजाब से महाराष्ट्र और काठियावाड़ से कच्छ तक लोकप्रिय हुई। मध्ययुगीन भक्त-कवि की "ब्रज-रस-पगी" वाणी देश के कोने-कोने में गूँजने लगी। संगीत ब्रज-भाषा के भक्ति-गीतों के साथ जितना लोकप्रिय हुआ, उतना संभवतः अन्य किसी भाषा में नहीं। सूरदास ने अपनी रचना में इस भाषा का प्रयोग कर इसे अत्यंत ही विशिष्ट बनाया।

सूरदास के पद अंतर्संगीत के शब्द, वर्ण-माधुर्य और भावानुकूल लय-योजना के साथ संगीत की ताल मात्राओं के इतने समीप हैं कि उन्हें संगीत में निबद्ध कर सहज ही गाया जा सकता है। कविता तथा संगीत लय का तादात्म्य का प्रत्यक्ष दर्शन इनके पदों में मिलता है। इनके पदों में ध्रुपद-धम्मार गायकी की झलक मिलती है, क्योंकि सूरदास स्वयं गायन में पारंगत थे और वे इस शैली को शुद्ध भारतीय गायन-प्रणाली मानते थे। ये रागों के अच्छे ज्ञाता थे - इन्होंने रागों के भाव, ऋतु और समय को महत्त्व दिया है इनके पदों में लोक-संगीत एवं शास्त्रीय संगीत दोनों का ही पूर्ण प्रभाव है। जहाँ आज इनके पदों को एक ओर रागिनियों में बद्ध करके गाया जाता है, वहाँ दूसरी ओर लोकसंगीत की शैलियों में रसिया, हिंडोरा, झूला आदि पदों को गाया जाता है। ब्रज के मंदिरों में राग-रागिनियों अथवा विशिष्ट पदों का प्रयोग नवधा भक्ति एवं अष्टयाम सेवा की अनुकूलता की दृष्टि से किया जाता है। ब्रज के मंदिरों में संगीत की परंपरा इतनी सुदृढ़ है कि परंपरागत रूप से जिन रागों की गेय विधाओं का प्रयोग जिस समय या जिस अवसर पर होता चला आया है, उसे आज भी ब्रज के मंदिरों में कीर्तनकार भक्ति भाव एवं श्रद्धा से अक्षुण्ण रखने का प्रयास करते हैं।

संत रविदास का सांगीतिक अवदान

डॉ. संतोष दत्तात्रयराव परचुरे

जब जब इतिहास करवटे बदलता है तो समाज में उथल-पुथल मच जाता है। सामाजिकता का ताना बाना बदलने लगता है और किसी महापुरूष के प्राकट्य की पृष्ठभूमि का निर्माण कर डालता है। इसी संदर्भ में संत रैदास के तात्कालिक सामाजिक अवस्थाओं के अवलोकनोपरान्त आभास होता है कि कमल के खिलने के लिये कीचड़ की महती भूमिका है। शरीर को खड़ा करने में पैरों की जो भूमिका होती है अथवा किसी राजत्व के विकास में उसकी प्रजा को भूमिका बड़ी मानी जाती है। ठीक उसी तरह संतों के उदय होने में समाजिक ताना बाना बड़ी भूमिका अदा करता है। समाज में बड़े एवं छोटों के बीच खाई गहरी हो चली थी। इसी खाई को पाटने ने लिये संतत्व सदा अग्रसर रहा है। इतिहास देखें तो पता चलता है कि वर्ण व्यवस्था की चक्की में पिस कर कितने सितारे ऐसे चमक उठे जिनकी आभा सूर्य से भी अधिक प्रखर एंव जिनकी वाणी सरस्वती से भी अधिक मुखर थी। जिनका संस्कार बालचन्द्र से भी अधिक द्योतित था। जिनका स्मरण भी एक संपूर्ण शांति को आकृति दे देता है। ऐसे संतों की चर्चा करते वक्त संत की वाणी के आलोक में ही विचरण करना उचित होता जान पड़ता है। संतों की वाणियों की व्याख्या के सिलसिले में समाज की कीचड़ का उल्लेख कतई उचित नहीं।

संत रैदास के जीवन पर निगाह डालने के क्रम में कई ग्रंथों को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। सभी में संत की स्वीकार्यता पर बल दिया गया परन्तु संत से इतर तत्कालीन समाज को लगभग सभी लेखकों में विरोधाभाषा है। खास कर ब्राहमण जाति या ब्राहमण वंशों के खाल खींचने का प्रयास अधिक किया गया।

मेरे विचार से ऐसा करना उचित नहीं क्योंकि तब के समाज और अब के समाज में कोई खास परिवर्त्तन नहीं दीख पड़ता है। आजकल भी महापुरूषों को अपने ही समाज से जबरदस्त उपेक्षा मिलती है। क्या यह सच नहीं है? शोधकर्त्ताओं ने एक तरह से रैदास के कंधे पर अपनी अपनी बंदूक डाल कर निशाना साधने का अनुचित प्रयास कर डाला है। ऐसा आभास यूं ही नहीं हुआ। बल्कि संपूर्ण रैदास के वांगमय का निगूढ़ अवलोकन एंव चिन्तन से ऐसा लगा कि लेखकों की कलम लक्ष्य से बहुत ज्यादा भटक गई। खैर साहित्य तो साहित्य है। जो लिखा गया वह साहित्य बन गया। इस तरह वे लेख भी संत साहित्य में समाहित हो गये जो संत के बहाने किसी और की उपेक्षा हेतु अवतरित किये गये। वैसे साहित्य संतों के संतत्व से दृष्टि हटा कर, उनकी महनीयलता की ओर से मुंह घुमाकर, उनकी दयनीयता, एवं प्रतिद्वद्वियों की भर्त्सना की ओर मुखातिब प्रतीत होते हैं। कतिपय ऐसे शोधकर्त्ता भी है जिनकी शोधकृति निश्छल एवं निष्कपट मालूम हुई। उनमें तटस्थ भाव से संत की उपादेयता को संकलित किया है।

वस्तुतः संत की वाणी अनुरणीय, मननीय, चिंतनीय होती है। किसी किसी की निन्दा करना संतों का स्वभाव नहीं। उनकी दृष्टि में शिव और जीव, आत्मा और परमात्मा का निरंतर संबंध रहते हुए भी तात्कालिक बिछुराव के चलते मिलन नहीं हो पाना दुखद है। सभी प्राणी उसी की संतान है। सभी उसी के अंग है। सभी उसी से प्रकट हुए है। अतः मंजिल भी वही है। जीव जब इस महायात्रा में

अध्यक्ष, संगीत विभाग, एस.पी.एस. महिला महाविद्यालय, मालेगाँव, नासिक

अपनी मंजिल से भटक जाता है तो करूणावरूणालय संतों के हृदय में जीव के प्रति सहज दया भाव उमड़ पड़ता है। संतों के समाज से यही संबंध होते हैं। छुआछूत की बीमारी अद्यतन है। आज भी इस प्रथा का असर समाज में दूसरे रूप में दिखाई देने लगा है। तब भी था तो अब भी है। तब भी संतों को प्राकट्य इसी कदम से हुआ और आज भी संतों के उदय में कदमों की भूमिका कम नहीं है। संत नादमय ब्रहम जिसे निराकारी संत लोग निराकार बोलते हैं, के परम उपासक होते हैं। वे नाद साधना पर ही बल देता है। नादमय शिव या शिवमय नाद में लीनता ही तो तल्लीनता है। जहाँ यह नहीं है, वहाँ शिवत्व से जीव का मिलन हो ही नहीं पाता। यही कारण है कि इस मार्ग में ढकोसलों की बहुलता हो गई। चूंकि ब्रहम इतना निकट है जिसे अंतर्मुख हुए बिना देख ही नहीं सकते। इसके लिए नाद का मार्ग ही माना गया है। नाम, जप, सुमिरन, भजन कीर्त्तन, आदि नादाधीन ही है। इसी नाद से उस परमात्मा को छुआ जा सकता है। इसी नाद से उसे पहचाना जा सकता है, इसी से उसे महसूसा जा सकता है और इसी नाद से उसमें समाया जा सकता है। यह एक ऐसा मार्ग है जो कभी अवरूद्ध नहीं होता, कभी इस मार्ग में बाधा नहीं, कहीं ढूढ़ना नहीं पड़ता वह स्वयं प्रकट है। स्वयं प्राप्त है, स्वयं अनुसरणीय है। इसलिये संतों के उपदेश में सुमिरन, सेवा, सतसंग, भजन, मंत्रजाप आदि बतलाये जाते हैं। पता नहीं किस जीव को किस ध्वनि मार्ग में कहाँ परमात्मा की प्राप्ति हो जायं यह संत जानते है। इसीलिये नाम जपने का आदेश देते हैं। परमात्मा तो इतना सूक्ष्म है कि जीव उससे इतर हो ही नहीं सकता। इसकी अनुभूति होने पर ही मिलन संभव है। अनुभूति तो विभ्रम पैदा करती है। यह प्राप्त को अप्राप्त एंव अप्राप्त को प्राप्त के रूप में देखती है जबकि संत मतानुसार स्थिति ठीक इसके उलटा है।

"नासतो विद्यते भावः नाभावो विद्यते सतः।।"

(श्रीमद् भगवत गीता)

अर्थात् असत् (असत्तावान्) को सत्ता (भाव) विद्यमानता नहीं है और सत् (सत्तावान) का असत्ता (अभाव) अविद्यमानता नहीं है। जो विद्यमान है उसका अभाव नहीं और जो अविद्यमान है उसका भाव नहीं। जीवन के इस निगूढ़ संदेश को संत [illegible] जानते है। इसलिये वे शिवरूप, गुरूरूप या सर्व[illegible] हो जाते है क्योंकि उनमें और परमात्मा में एक [illegible] हो जाता है इसीलिये समस्त से व्यस्त वही है। [illegible] समष्टि है। वही व्यष्टि है। वही अवशिष्टि है। [illegible] सृष्टि है, वही स्रष्टा है, वही करता है किन्तु वर्त[illegible] नहीं है। इसीलिये संत एवं भगवंत में अंतर [illegible] माना गया है।

पारस में अरू संत में बड़ों अंतरों जान।
पारस तो सोना करें वो कर आप समान।।

संत रैदास की वाणियों का जब अनुशी[illegible] करते हैं तो कही वैर विरोध एवं बौद्धादि [illegible] ग्राहयता भी नहीं भासती है। वे तो विटठ्ल वासुदे[illegible] राम, नरहरि, वामन आदि नामों में लीन लगते [illegible] उनमें ईष्या नहीं, वह तो अनुकरणीय है। भगवान [illegible] पवित्र नाम के नाद के रसिक हैं क्योंकि वह जान[illegible] है कि नाद ही वह तत्व है जो तब भी था और [illegible] भी है इसका जितना उच्चारण किया जाय उतनी [illegible] तन्मयता बढ़ती जाती है। पाद की पावनता इतनी [illegible] कि मानव रचित जातियाँ पीछे छूट जाती है। सामाजि[illegible] जितने भी अनुबंधन है वे सभी खुल जाते [illegible] क्योंकि ध्वनिरूप, नादरूप भगवान् के नाम में निष[illegible] ही पायी है जिससे सारी ग्रंथियाँ खुल जाती हैं। को[illegible] बंधन अवशेष नहीं रहता। इसलिये मुक्ति सलय [illegible] मोक्ष पग पग पर विद्यमान है। यह रहस्य नहीं पर[illegible] अविज्ञेय है। संतों की वाणियों का रहस्य बड़ा [illegible] सूक्ष्म, गूढ़ एवं सहज है। इसके लिये सहज हो[illegible] आवश्यक है। संत रैदास जैसे पहुंचे हुए संत देवदु[illegible] हैं। ये कदापि असहज नहीं हो सकते। संयम नि[illegible] में जीने वाला असहज कैसे असहज हो सकता [illegible] संत रैदास भी सहजता का उपदेश करते है। [illegible] जप का उपदेश करते है। कीर्त्तन एवं भजन [illegible] अनुमोदन करते है। ईश्वर के दोनों ही रूप उ[illegible] मिला हुआ है। साकार भी उनके इशारे पर [illegible] करते है और निराकार भी।

आकृति को निराकृति में डुबो देने वाले [illegible] वास्तव में ईश्वर से तदाकार हो जाते है। ऐसे [illegible] दीर्घजीवी होते है। उनका जीवन परमार्थ होता [illegible] संत रैदास भी इसी कोटि के है। इनकी प्रति[illegible] इनका फक्कड़पन, इनका निर्लोभ, इनकी उदासीन[illegible]

इनकी तटस्थता, तथा इनका बेबाक कथन सभी में पूर्णता है। संपूर्णता है। कहीं भी दिखावा नहीं। इसलिये आडम्बर का विरोध है। कहीं भी लोभ नहीं, इसलिये संतोष धनी है, कहीं भी मान नहीं इसलिये निरभिमानी है, कहीं भी कर्मकाण्ड नहीं, इसलिये वर्णों के झंझट से मुक्त जन्मजात मुक्त संत है। भारतवर्ष में संतों की अविछिन्न परम्परा रही है। अनादि काल से इतिहास में संतों की कृतियां एंव कीर्तियां विद्यमान है। आजतक के काल तक में कई संत परम्पराओं का ह्रास एंव विकास हुआ। ईश्वर प्राप्ति के कतिपय मार्ग दिखलाये गये। इन मार्गों के कर्मकाण्ड में काफी अन्तर है। सबों का अपना अपना विधान है। सबों में ईश्वर ही मंजिल है। सबों में उसके नामों में भी अंतर है। मूलतः सनातनी संत, बौद्ध संत, जैन संत, हिन्दू संत, मुस्लिम संत। ये पांच प्रकार की संत मत की धाराएँ विद्यमान है। संत रैदास हिन्दू संत या सनातनी संत दोनों की कहा जा सकता है। कुछ शोधकर्त्ताओं ने इन्हें शायद बिना कारण के ही बौद्ध धर्मावलम्बी साबित करने का कुछ कुप्रयास किया है। ऐसा उचित नहीं क्योंकि उनकी वाणियों में बौद्धिक देवों के नाम, सनातनी व हिन्दू देवताओं के नाम सुमिरन तो मिलते हैं परन्तु किसी बौद्ध या बुद्ध भगवान का उल्लेख नहीं मिलता।

भारतीय संत परम्परा में सगुन से निर्गुण की ओर मुखातिब होते हुए दिखलाया गया है। प्रायेण सगुन संत धीरे-धीरे निर्गुण की ओर झुक जाते है। इसमें भी अगर किसी हीन जाति के होने पर तो उन्हें हिन्दू समाज में मंन्दिर बहिष्कार का दंड भी मिलता था। संत रैदास के साथ भी ऐसा हुआ। कठोर सामाजिक वर्जनाओं के चलते मूर्त से अमूर्त ईश्वर में तल्लीनता इन्हें निराकार प्रेम का आंगन दिखाया। इनका भगवान इन्हीं में आ बसा एवं ये अपने भगवान में ही बस गये। दोनों में तादान्मय हो गया। अतः इन्हें तीर्थयात्र मूर्तिपूजा, या अन्य कर्म काण्डों की आवश्यकता नहीं रही। ये कर्म काण्ड से ऊपर, स्व में अवस्थित आत्माराम में लीन, सर्वत्र समभाव हो गये। इसमें किसी प्रकार का कोई भेद ही नहीं रहा। ये अभेद हो गये। नाद लीन, नाद ब्रम्ह, नादमय, नादादि, नादांत हो गये।

संगीत में नाद को ईश्वर कहा गया है। चूंकि ईश्वर से स्वर एक ही अक्षर लघु है। अतः यह स्वर ईश्वर के आंगन विहरने वाला नित्य पार्षद है। शिवपुराण में कहा गया है।

शिवो नादमयो ज्ञेयो नादः शिवमयस्तथा।
उभयोरन्तरं नास्ति यथा नादस्तथा शिवः।।
(शिवपुराण)

अर्थात् शिव नादमय है और नाद शिवमय। दोनों में कोई भेद नहीं, जैसे- शिव, वैसा नाद, जैसा नाद वैसा शिव।

वास्तव में यह श्लोक नाद की संपूर्णता व्यक्त करता है। शिव से ऊपर कोई नहीं और नाद से ऊँचा कोई नहीं। संसार की उत्पत्ति से लेकर व्युत्पति तक सभी नाद के अधीन ही है। नाद की असीमता में सभी सीमित है। इसलिये नाद से ऊँचा कोई नहीं। शिव परमतत्व है। शिव मंजिल है। शिव स्थाई है। शिव में परिणति है। शिव ही परिणाम है और शिव नाद रूप है इसलिये नाद के द्वारा शिव तक पहुंचा जा सकता है। शिव की प्राप्ति में नाद ही साधन होता है और शिव प्राप्ति में नाद ही साध्य होता है। नाद ही सिद्ध होता है और नाद ही बचता है। इस तरह नाद और शिव में अनेकत्व के बदले एकत्व ही सिद्ध होता है। सिद्ध संत को यह भली भांति मालूम होता है कि भगवान के पावन नाम जप एवं नाम में तल्लीनता से बढ़िया कुछ नहीं होता। यही कारण है कि वे नाम जप का उपदेश करते है।

संत रैदास भी नाम प्रेमी है।

"कहि मन राम नाम सभारि।",
" नाम तेरो आरती भजन मुरारे।",
"हरि जपत तेऊ जना।",
"हरि हरि हरि न जपसि रसना।",
"पावन जस माधो तेरा।",
"नर हरि चंचल मति मोरी
कैसे भजनु करौं मैं तोरी।",
तब राम-राम कहि गावैगा।",
साध का निंदक कैसे तरे।",
"बंदे जानि साहिब गनी।",
"संत जी संगत संत कथा रसु।",
"हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरि।",
"भाई रे सहज बन्दरे लोई।",

" जयै राम गोव्यंद बीठल, वासदेव।",
"चल मन हरि चटसाल पढ़ाऊँ।",
"दरसान दीजै राम दरसन दीजै।",
"ऐसे जानि जपो रे जीव।",
जो तुम गोपालहि नहि गैहौं।",
"धन्य हरिभक्ति भैलोक यथपावनी।",
अब कैसे छुटै राम नाम रट लागी।",
'संत उतारै आरती देव सिरोमणये।"

संत रैदास की इन वाणियों में भगवान की पावन कथा का जाप करने, नाम जप करने, उनका सुमिरन करने का उपदेश है। ये सभी नाम सनातन देवताओं के है। रैदास सगुन से निर्गुण के यात्री प्रतीत होते हैं। इनके उपदेशों से कहीं साम्य या बौद्धागमों का संकेत नहीं मिलता अतः यह कहना कि ये बौद्ध धर्मावलम्बी थे। तथ्य एवं तर्क से परे है।

हाँ, निर्बाध नामधुन, अविच्छिन्न नामजप, अविरल भजनाभक्ति इन्हें प्रिय है। भगवान नाम की पवित्र ध्वनि इन्हें परमप्रिय है। इसीलिये ये बारम्बार नाम जप को प्रेरित करते है। इनकी प्रेरणा में पाखण्ड नहीं हैं, सरलता एंव सहजता से अनुप्राणित है। इन्हें वह मधुर स्वर इतना तन्मय करता है कि सहज ईश्वर प्राप्त हो जाते है। ईश्वर प्राप्ति का सहज मार्ग संत लोग सहज ही बांटते भी है। माया मोहित संसारों के लिये वह सर्व सुलभ मधुर स्वर भींग नहीं पाता। उसे उसकी मिठास का आभास तक नहीं। उसे उस मधुर स्वर के रस का रसायन बांटने वाला संत भाव विह्वल होकर बांटता है। संत रैदास इसी कोटी के सिद्ध संत थे।

संगीत शास्त्र में स्वरों को सुसज्जित करने का तरीका बताया जाता है। संगीत में स्वर एवं ताल के दिव्य अनुभव प्राप्त ऋषियों का, स्वरसिद्ध संतों का बड़ा ही उपकार भरा योगदान है। कोई संत यह भली भांति जानते हैं कि मनुष्य भावनाप्रधान जीव है। उसके हृदय की भावना को छू लेने की शक्ति मात्र स्वर में है। स्वर में जितनी उद्दाम शक्ति होगी वैसा ही उसका प्रभाव होगा। स्वर तो सीमित है परन्तु उसके प्रयोग की अनेक विधियां है। इन अलग-अलग ढ़गों से निकाले गये स्वरों से अलग-अलग के भाव की प्रकट होते हैं। स्वरों के भाव मनोदशा को बदल देने में सक्षम होता है। स्वर यदि उदात्त है तो उत्तेजना बढ़ जाती है। स्वर यदि अनुदात्त है तो कमनीयता की वृद्धि होती है। स्वर में यदि स्वरितावस्था है तो शांत रस का संचार होता है। स्वरों के इस निराकार विज्ञान में सब कुछ छुपा हुआ है। स्वरों की एकरूपता या क्रमिकता से लय का निर्माण होता है। आसपास का वातावरण स्वरान्वित होता है। यह गुंफित स्वरावली सम्पूर्ण वातावरण को ही अपने में समेट लेती है। यह चमत्कार स्वर एवं स्वर प्रयोग का है। स्वरों की इस सहज भाव प्रवणता को संत लोग बखूबी जानते है। इसलिये स्वर सागर में तैरना एवं गोता लगाने को सभी संत उपदेश देते हैं चाहे वे किसी भी मत के संत हों।

समय के अनुसार स्वरों के प्रयोग बदलते हैं उनके भाव बदलते हैं। मौसम, दिन, रात, संध्या, सुबह, दोपहर अन्य ऋतुओं के भाव को व्यक्त करने वाले विशेष नियमावद्ध सुसज्जित स्वरावली को विभिन्न राग के नाम से जानते है। ये राग के जानने वाले संत लोग समाज में सुचिता हेतु विभिन्न राग के माध्यम से गाये जाने वाले भजनों के द्वारा नाम उपासना को प्रेरित करते हैं। संत रैदास भी यह रहस्य भली भांति जानते हैं। इसलिये उनकी वाणियां विभिन्न रागों में मिलती है। हरि भक्ति, भगवान नाम जप वह भी रागाबद्ध होकर स्वतः भाव प्रादुर्भूत होता है। और जीव अपनी जीवता को विस्मृत होकर शिवत्व में विचरण करने लगता हैं। यह संतों की दयालुता है।

भाव संप्रेषण के क्षेत्र में यदि स्वर का महत्त्वपूर्ण स्थान है तो भाव को झंकृत कर देने की अद्भुत क्षमता तालों में भी होती है। ताल की गति, यति, प्रकृति एवं निःसृति भाव को अभिभाव में परिणत कर देने में पूर्ण समर्थ है। इसीलिये स्वर के साथ ताल का संगम अनिवार्य माना गया है। ताल के बिना सुर मृत है। इसी कारण संतों ने राग के साथ-साथ विभिन्न प्रकृतियों के तालों का भी आश्रय लिया है। चतुस्त्र, तिस्र, मिश्र, खंड, संकीर्ण, सभी प्रकार के तालों का उपयोग इनकी वाणियों में मिलता है। चतुस्र तालों में एक प्रकार की ऐसी गति होती है कि गीतों या पदों में वो गतिशीलता पैदा कर देती है जिससे सामूहिक भाव बंधन में शीघ्रता आ जाती

है। लोगों को स्वत्व भूलने को ही तो तल्लीनता कहा जाता है। जब साधन आत्मविस्मृति को प्राप्त होता है तो वह नाचने लगता है। उसे अपने आप का ध्यान नहीं रहता। इस ऊँचाई को प्राप्त करना सहज नहीं है। संगीत ऐसी स्थिति सघः ला देता है। आदमी अपने आप को भूल जाता है। यानी विद्यमान में वह अविद्यमान का आभास कर लेता है। यही पराभास है। यही परमाभास है। आस्ति में नास्ति का भाव। यह भाव ताल त्वरित गति से आधान कर देता है। इसलिये इसकी अनुपस्थिति में संगीत में प्राण नहीं आ पाता। और निष्प्राण स्वरों में भाव कैसे आ पाएँगे। अतः ताल संतों की चाल में समाहित रहता है। जैसा भाव फूटा, वैसे पद बने। वैसा ही ताल प्रयुक्त हुआ और उसी रस की अभिव्यक्ति हुई। वैसा ही प्रभाव हुआ।

श्रृंगार के दोनों पक्ष प्रलंभ एवं विप्रलंभ ताल के अधीन है। तिस्र एवं चतुस्त्र तालों से श्रृंगार के प्रलंभ पक्ष का ज्यादा अवलम्बन होता है जबकि खण्ड तालों से विप्रलंभ एवं करूण रस का प्राकट्य होता है। विप्रलंभ वियोग को कहा जाता है। इस अवस्था के लिये खण्ड जाति के ताल बड़े ही सहायक सिद्ध होते हैं।

शांत रस एवं भक्ति रस के लिये मिश्र जाति के ताल उपयुक्त माने जाते हैं। इस प्रकार के तालों में छोटे बड़े विभागों द्वारा ऐसी चाल उत्पन्न होती है जो चंचलता के स्थान पर गूढ़ हो जाती है। पग पग पर सावधानी आवश्यकता हो जाती है। इसी सावधानी में भक्ति की पृष्ठभूमि पर शांति रस का उदय होता है। यह शीघ्र ही वातावरण को शांत कर देता है। अतः संतों का आश्रय ये ताल भी है जिससे भाव संप्रेषण में सहजता एवं सरलता हो। संतों ने गंभीर एंव ऊँची बात बताने के लिये संकीर्ण जाति के तालों का भी प्रयोग किया है। अतः संतों की वाणियों में सुर के साथ ही ताल भी है। जब जीव शरीर के निराकार अवयवों का अनुसन्धान करने लगता है तो उसे अध्यात्म का मार्ग दिखलाई पड़ता है। जीवों की अवस्था दयनीय होती है। संत लोग बड़े ही दयालु होते है। जीवों की दयनीय स्थिति से ये दयार्द्र हो जाते है और भगवान के पावन जस गाने का उपरंग करते है। इस उपदेश में सुर और ताल स्वंयमेव उपादिष्ट हो जाते है क्योंकि ये तो ईश्वर के नित्य पार्षद होते हैं। ये पार्षदादि भजन में शामिल हो जाते हैं तो ईश्वरानुभूति भी सघः ही हो जाती है। कहा गया है कि "संघः प्रीति करो रागः।"

अर्थात् राग में सद्य प्रीति (प्रेम) उत्पन्न करने की अद्‌भुत् क्षमता होती है। ईश्वर प्राप्ति के लिये प्रेम होना आवश्यक है। ईश्वर प्रेम बिना नहीं मिलता। अतः प्रेमाभक्ति के लिये सुरीला संगीत, तालमय भजन एवं नाद दर्शन आवश्यक है। संगीत प्रेमाभक्ति में सहायक होता है। इसलिये संगीतमय भक्ति के गीत या पद, या संतों की वाणियां सद्यः प्रीतिकर ही नहीं बल्कि सद्यः मुक्ति कर भी मानी गई है। जिन पर संत रैदास की वाणियों सौ फीसदी खड़ा उतरती है।

जिस तरह सुर, ताल संगीत में प्रभावी माने गये है उसी प्रकार संगीत में भाव संप्रेषण हेतु नर्तन का भी विद्यान है। भाव प्रवण भक्तगण अपने स्वत्व को भूलकर अपने निराकार में ही अपने अंगों की भंगिमा से इष्ट को आकृति प्रदान कर देते है। उनके लय एवं तत्कार से भाव की वह ऊँचाई पैदा हो जाती है जहाँ ईश्वर का आवास है। लय में लीनता को विलय कहा जाता है। जहाँ साधक एवं साध्य एकाकार हो जाते हैं। इसी लय में सारी प्रकृति का क्रिया-कलाप आबद्ध है। इस लयबद्धता में कदाचित व्यवधान पड़ता है तो व्यक्तिक्रम हो जाता है जिसे प्रलय कहा जाता है। लय की अव्यवस्था से प्रलय पैदा होता है जो संहार या विनाश का प्रतीक है। संतों को लय की प्रासंगिकता का पूर्णाभास होता है। जो रैदास को भी इसलिये वे लय का उल्लंधन नहीं करते अपितु उसी में रम जाते हैं और ऐसे वर्ण एवं वाणियों का रचना कर जाते हैं जो आने वाली पीढ़ियों से मुक्ति प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होते है।

भारतीय संगीत-विद्यालयों में प्रवर्तमान अभ्यासक्रम एवं मूल्यांकन पद्धति में परिवर्तन की आवश्यकता

डॉ. निर्झरी देसाई ठक्क

प्राचीन काल भारत में अन्य विद्याओं की तरह संगीत शिक्षा भी गुरू-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत ही हुआ करती थी। शिष्य कई वर्षों तक गुरू-गृह निवासी रहता था और गुरू से विद्या प्राप्त करता था। इस परम्परा में कोई निश्चित अभ्यासक्रम और मूल्यांकन पद्धति नहीं होते थे। शिष्य की क्षमता, विशेषता, विकास आदि ध्यान में रखकर गुरू उसे एक-एक सोपान आगे ले जाया करते थे - किसी औपचारिक अभ्यासक्रम के बिना। उनको जब, जो सिखाना उचित लगे, वो सिखाते थे और शिष्य का मूल्यांकन तो दिन प्रतिदिन होता ही रहता था। अभी भी कई जगह इस परम्परा से संगीत-शिक्षा होती है, लेकिन मध्यकाल से भारत में संगीत विद्यालयों की स्थापना होने लगी, जिसका प्रमाण आधुनिक काल में और भी बढ़ गया है, बढ़ ही जा रहा है। अतः अब गुरू-शिष्य परम्परा संगीत-शिक्षा एक मात्र माध्यम नहीं रह गई है।

आधुनिक संगीत विद्यालयों में अनेक विद्यार्थी एकसाथ तालीम ग्रहण करते हैं। तालीम के कुछ निश्चित स्तर पूर्ण करने पर प्रमाण-पत्र भी दी जाती हैं। अतः यहाँ निश्चित अभ्यासक्रम, उसकी निश्चित समयावधि तथा उनके पश्चात निश्चित मूल्यांकन पद्धति से शिक्षा की जाँच की व्यवस्था होना आवश्यक है। यहाँ इस अभ्यासक्रम और मूल्यांकन के मुताबिक संगीत-शिक्षण-कार्य होता है। विभिन्न विद्यालयों में भिन्न-भिन्न अभ्यासक्रम प्रवर्तमान हैं। आमतौर पर देखा जाए तो कई वर्षों से इन अभ्यासक्रमों के मुताबिक बहुत बड़े पैमाने पर शिक्षण कार्य होता आ रहा है, जिससे अनेक विद्यार्थी तैयार हुए हैं, अत उसे अयोग्य तो नहीं कहा जा सकता। लेकिन फि भी, उनमें कुछ परिवर्तन की आवश्यकता भी महसू होती है।

कई बार पाया जाता है कि वर्तमान विद्यालय शिक्षण में अभ्यासक्रम काफी लंबे होते हैं। उन्हें पूर्ण करने की जल्दबाजी में प्रत्येक राग को जो वक मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाता। तालीम जितनी विस्तृत होनी चाहिए वह नहीं हो पाती। परिणामस्वरू विद्यार्थी का स्तर अत्यंत निम्न रह जाता है, जो आनेवाले कल के शिक्षक हैं। जब शिक्षण-कार्य उनके हाथों में जाता है, तब ये गहरी, विस्तृत शिक्षा देने के लिए सक्षम ही नहीं होते और अगली पीढ़ी और भी कच्ची शिक्षा प्राप्त कर पाती है।

अभ्यासक्रम में यदि कुछ राग-संख्या कम की जाए, तो तालीम का स्तर ऊँचा आ सकता है। संगीत वैसे भी एक कला है, जो मानसिक शांति, स्वस्थता से जुड़ा हुआ है। अभ्यासक्रम पूर्ण करने की जल्दबाजी में कला कतई नहीं टिक पाती। रागों की Quantity कम करने से यदि संगीत-शिक्षा की Quantity ऊपर आ सकती है, तो ऐसा करना सराहनीय है। अभ्यासक्रम उतना ही होना चाहिए, जितना निश्चित समयावधि में पूर्ण किया जा सके। यहाँ ध्यान रहे, कि राग एक -topic' की तरह नहीं है, जो पूर्णतः सम्पूर्ण हो पाए। वह अमर्यादित है, उसे पूर्ण करना सम्भव नहीं है। अतः university education की भाषा में कहा जाए, तो अन्य विषयों में यदि एक unit में 4 या 5 प्रश्न रखे गए हो, तो

पी.एच.डी. स्कोलर (एम.फी.ए., नेट), डि.इ.म्यू., फैकल्टी ऑफ परफोर्मिंग आर्ट्स, एम.एस.वि.वि. बड़ौदरा

संगीत के क्रियात्मक के अभ्यासक्रम में भी एक unit में 4 या 5 राग रख देना उचित नहीं होगा। एक राग एक प्रश्न से कई अधिक लम्बा होता है। Theory के एक प्रश्न से कई अधिक समय practical में एक राग को थोड़ा-बहुत आत्मसात करने-करवाने में लगता है। तो इस विषय में आवश्यक परिवर्तन अपेक्षित है।

अभ्यासक्रम में सैद्धान्तिक पक्ष को अत्याधिक स्थान, समय देना भी कला के लिए प्रोत्साहक नहीं रह पाता। आखिर कला क्रियात्मक विधा हैं इसमें शास्त्र है, पर वह क्रियात्मक का सहायक है। शास्त्र में इतना अधिक समय नहीं देना चाहिए, जिससे क्रियात्मक के लिए आवश्यक समय न मिल पाए। कला में बिना क्रियात्मक कौशल्य का सैद्धांतिक ज्ञान कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। यहाँ भी परिवर्तन की आवश्यकता है।

संगीत प्रस्तुति की कला हैं अतः इसकी शिक्षा में भी प्रस्तुतीकरण की तालीम समाविष्ट हो, वह अनिवार्य है। अन्यथा शिक्षाकाल के पूर्ण होने पर भी विद्यार्थी रंगमंच पर प्रस्तुतीकरण के लिए सक्षम हो ही नहीं पाते। उनकी performance की तालीम शिक्षाकाल के दौरान होनी चाहिए। प्रस्तुतीकरण को अभ्यासक्रम में विशेष प्रमाण में ध्यान देना चाहिए। वैयक्तिक रूप में, सामूहिक रूप में तथा शिक्षक के साथ भी रंगमंच प्रस्तुति के अवसर विद्यार्थियों को शिक्षा के दौरान अपने college में ही मिलना चाहिए।

अन्य किसी भी विषय की तरह संगीत-शिक्षा में भी मूल्यांकन-पद्धति की योग्यता अत्यंत आवश्यक है। संगीत-शिक्षण का सच्चा मूल्यांकन सिर्फ सामान्य परीक्षा पद्धति से नहीं हो पाता। उसमें भी प्रस्तुतीकरण का स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। क्रियात्मक की परीक्षा यदि एक-दो परीक्षकों के सामने न होते हुए अनेक शिक्षकों, सहाध्यायिओं के समक्ष रंगमंच-प्रस्तुति के रूप में हो, तो उत्तम है। एक performing art होने के नाते संगीत का सही मूल्यांकन performance से ही हो पाता हैं उससे विद्यार्थी के सांगीतिक कौशल्य का सच्चा मूल्यांकन हो सकता है और सब से बड़ा लाभ यह होता है कि विद्यार्थी सिर्फ परीक्षार्थी न बने रहते हुए कलाकार बनने की दिशा में कार्यरत होंगे।

उल्लेखनीय है कि यहाँ जो सुझाव सूचित किए हैं, वे सिर्फ काल्पनिक या अवास्तविक हैं, ऐसा नहीं है। जब संगीत ने विश्वविद्यालयों में स्थान लिया, तब शिक्षण का स्वरूप कुछ ऐसा ही था। घरानेदार तालीम को औपचारिक शिक्षा के रूप में ढालने का यहाँ प्रयास किया गया था। तालीम की कक्षा, उसका स्तर निम्न नहीं हुआ था, बल्कि शायद अधिक systmetic हुआ था। उस समय कुछ प्रखर विद्वान संगीतज्ञों ने उत्तम colleges की स्थापना की थी तथा उसमें उमदा शिक्षण-पद्धति को स्थान दिया था। उनसे आवश्यक परिवर्तन ग्रहण करना सराहनीय रहेगा।

इन सब के उपरांत अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बात है शिक्षक तथा विद्यार्थी दोनों का अभ्यास। अभ्यासक्रम और मूल्यांकन पद्धति चाहे किने भी सुयोग्य हों, अंत में सवाल उनके प्रति के अभ्यास का है। 'चल जाता है' का अभिगम कई जगह देखने को मिलता है, जो कतई उचित नहीं है। शिक्षा-तंत्र की योग्य चीजें कायम बना रखने के साथ ही उसमें आवश्यक परिवर्तन करना, उसे गंभीरतापूर्वक अनुसरन हमारा कर्त्तव्य है, होना चाहिए और जो उपयोगी चीजें तंत्र के अन्तर्गत अभ्यासक्रम तथा मूल्यांकन पद्धति में नहीं हैं, उनको भी शिक्षण में स्थान देना चाहिए, क्योंकि आखिर तंत्र मार्ग है, साधन है, मंजिल या साध्य तो शिक्षा ही है।

संदर्भ सूची :

1. संगीत विशारद - वसंत।
2. संगीत के घरानों की चर्चा - चौबे डॉ. सुशील कुमार।
3. भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान सतर - सक्सेना डॉ. मधुबाला।

संगीत में शोध, आवश्यकता तथा महत्व

सीमा चौधरी

वैज्ञानिक प्रक्रिया के द्वारा अज्ञात को ज्ञात करना एवं प्रचलित तथ्यों को अविष्कृत करके सत्यापन करना। क्यों, कहां, कब, कैसे इत्यादि प्रश्नों का हल खोजना ही शोधकार्य कहलाता है।

शोध शब्द की व्युत्पत्ति **'शुद्ध'** धातु में **'धन्न'** प्रत्यय लगाने पर होती है। 'धन्न' प्रत्यय भाव और कारण के अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'शुद्ध' धातु का अर्थ है- पवित्र करना या पवित्र होना। शब्द कोषों में इसके निम्नलिखित अर्थ प्राप्त होते हैं- शुद्धिकरण, स्वच्छीकरण, सुधार एवं उचित विन्यास। इस प्रकार शोध का अर्थ हुआ शुद्ध करना, या स्वच्छ रूप प्रदान करना। अर्थात् खोजी गई सामग्री को शुद्ध कर, परिष्कृत कर निष्कर्ष रूप में उसका प्रतिपादन किया जाना। शोध के पर्यायवाची शब्दों में **अन्वेषण, अनुसंधान, गवेषणा, खोज, अनुशीलन, परिशीलन, संशोधन** आदि की गणना की जाती है।

अंग्रेजी भाषा में शोध के पर्याय हैं- डिस्कवरी, रिसर्च, डाक्टरेट, थीसिज, पी.एच.डी. आदि। लेबेस्टर डिक्सनरी के अनुसार त्म का अर्थ है Frequentative और search का अर्थ है खोज करना। इसके प्रत्येक अक्षर से एक नया शब्द निकलता है।

R : Stands for rational way of thinking (तार्किक ढंग से चिन्तन करना)

E : Stand for Expert and Exhaustive Treatment (अनुभव एवं परीक्षण के साथ कार्य करना)

S : Stands for search for solution (समाधान की खोज करना)

E : Stand for Exactness (निश्चिता)

A : Stands for Analytical Analysis o Adequate data (उपयुक्त प्रदत्तों का उचि विश्लेषण)

R : Stands for Research and developmen (शोध एवं विकास)

C : Stands for (i) Careful recordin (सावधानी पूर्वक संकलन)

(ii) Critical observation (यथार्थ निरीक्षण

(iii) Constructive atitude (रचनात्म मनोवृत्ति)

(iv) Constructive and compactly state Generalization (उचित एवं संक्षिप्त सामान्यीकरण)

H : Stands for Honesty and Hard work i all aspects of the treatment of data (प्रदत्तों का विश्लेषण आदि करने में ईमानदारी एवं मेहनत से काम करना)

संगीत में शोध :

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के दो पक्ष है- 1. शास्त्र पक्ष 2. क्रियात्मक पक्ष। संगीत में शास्त्र पक्ष के साथ-साथ क्रियात्मक पक्ष का भी विशेष महत्व होता है। संगीत के शास्त्र या सैद्धान्तिक पक्ष की खोज शोध प्रविधि के द्वारा सफलता पूर्वक की जा सकती है किन्तु क्रियात्मक पक्ष में इसका प्रयोग पूर्णतः सफल सिद्ध नहीं होता। जैसे- संगीत के क्रियात्मक पक्ष में नए-नए रागों का निर्माण या नए-नए वाद्यों

शोध छात्रा, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)

का निर्माण करना भी शोध कार्य के अन्तर्गत आता है इस प्रकार के शोध कार्य के लिए शोध प्रविधि की अपेक्षा प्राक्कल्पना, एवं सांगीतिक प्रयोगशाला का विशेष महत्व होता है।

संगीत के क्रियात्मक क्षेत्र के अतिरिक्त शास्त्रीय पक्ष में भी शोध की विशेष संभावनाएं हैं क्योंकि किसी भी साहित्य या कला को शास्त्रीय आधार तब मिलता है जब उसके पीछे एक परम्परा और शास्त्रीय नियम विद्यमान हो। हमारा संगीत भी परम्परागत होने के साथ-साथ पूरी तरह शास्त्रीय नियमों से आबद्ध है।

अतः ऐसे बहुत से शास्त्र एवं क्रियात्मक पक्ष हैं जिनके शोध की सम्भावनाएं निरन्तर बनी रहती हैं।

संगीत में शोध की आवश्यकता :

किसी भी क्षेत्र में प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि उसमें आगे बढ़ने के लिए नवीन मार्ग खोजे जाएं। अतः अन्य विषयों के समान संगीत के क्षेत्र में भी खोज होना अति आवश्यक है। परम्परागत रूप से प्राप्त संगीत की धरोहर को सम्भालकर रखने और उसमें समयानुसार नवीनता लाने के लिए यह आवश्यक है कि संगीत में शोध कार्य होता रहे।

संगीत के शास्त्र पक्ष पर शोधकार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है जैसे- श्रुति सदैव से शोध का एक प्रिय विषय रही है इसका आकार समान है या असमान, इस समस्या को लेकर कई सिद्धान्त बने हैं। इसी प्रकार ग्राम, मूर्च्छना आदि का विश्लेषणात्मक अध्ययन भी शास्त्र पक्ष के अन्तर्गत आता है। प्राचीन राग लक्षण तथा ग्रन्थों में वर्णित ताल शास्त्र का अध्ययन-जाति-गायन, प्राचीन प्रबन्ध, आदि सभी शास्त्र पक्ष के अन्तर्गत आते हैं।

शास्त्रीय पक्ष के साथ-साथ इसका क्रियात्मक पक्ष भी बहुत महत्वपूर्ण है। विभिन्न कलाकारों की प्रत्येक राग में अलग-अलग मान्यताएं हैं तथा राग स्वरूपों में भी भिन्नता है। अतः इन रागों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाना चाहिए। इसी प्रकार वाद्यों की वादन कला, उनकी निर्माण विधि, लोक वाद्य एवं शास्त्रीय वाद्य, लोक संगीत तथा शास्त्रीय संगीत का तुलनात्मक अध्ययन आदि विषयों पर शोध कार्य किया जा सकता है।

अतः हम कह सकते हैं कि भूतकाल से वर्तमान काल की यात्रा में प्राप्त उपलब्धियों का ब्यौरा शोधकार्य के माध्यम से ही सम्भव है। इसलिए संगीत जैसे व्यापक और लोकप्रिय विषय में शोध कार्य अति आवश्यक है। संगीत में शोध की आवश्यकता निम्न कारणों से प्रतीत होती है-

1. **शास्त्रीय संगीत की वर्तमान दशा** : वर्तमान में संगीत की क्या स्थिति है? संगीत की वर्तमान स्थिति को प्राप्त करने के लिए किन मार्गों से होकर गुजरना पड़ा। प्राचीन काल में संगीत की क्या स्थिति थी? वह किस रूप में था, किस प्रकार उसका विकास हुआ वाद्यों की उत्पत्ति कैसे हुई? आदि प्रश्नों को हल करना और किसी निष्कर्ष तक पहुँचना यही शोध कार्य है।

2. **शास्त्रीय संगीत का संस्थागत शिक्षा में समावेश** : शास्त्रीय संगीत जिसे केवल मनोरंजन एवं भक्ति का साधन माना जाता रहा है जब इसका महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षण के रूप में समावेश हुआ तब उससे संगीत की स्थिति में क्या परिवर्तन आया। इसका अध्ययन भी शोध कार्य के अन्तर्गत आता है।

3. **घरानेदार शिक्षण पद्धति का लुप्त होना** : घरानेदार शिक्षण पद्धति का लुप्त होना संगीत में शोध का एक महत्वपूर्ण कारण है संगीत एक गुरू-मुखी विद्या है जो कि गुरू-शिष्य परम्परा अथवा घराना पद्धति द्वारा विद्यार्थी को प्राप्त होता था तथा आज भी ग्रहण करता है वही सही अर्थ में संगीत की शिक्षा प्राप्त करता है। जिन बारीकियों को शिष्य गुरू के सम्मुख बैठकर सीख सकता है उसे तकनीकी प्रगति के माध्यम से प्राप्त नहीं कर सकता। इन सभी कारणों पर गहन अध्ययन ही शोध कार्य है।

4. **फिल्म संगीत की बढ़ती लोकप्रियता** : फिल्म संगीत की दिन-प्रतिदिन बढ़ती लोकप्रियता संगीत के क्षेत्र में अनुसंधान का व्यापक क्षेत्र बनता जा रहा है। जन साधारण जितना फिल्म संगीत की ओर आकृष्ट हुआ है उसका जुड़ाव जितना फिल्म संगीत की ओर बढ़ता जा रहा है शास्त्रीय संगीत से उसकी दूरी उतनी ही घटती जा रही है ऐसा क्यों ? किन कारणों से जनसाधारण का झुकाव शास्त्रीय

संगीत की अपेक्षा चित्रपट संगीत की ओर बढ़ता जा रहा है।

इस प्रकार ऐसे ही अन्य और बहुत से विषय हैं जिनके समाधान के लिए तथा जिनके सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि संगीत के क्षेत्र में शोध कार्य अनिवार्य रूप से होता रहे। संगीत के शास्त्र तथा क्रियात्मक क्षेत्र में भिन्नताओं के कारण फैली हुई भ्रान्तियाँ, मानसिक प्रवृत्तियों का शास्त्रीय संगीत पर प्रभाव आदि अनेक ऐसी समस्याएं हैं जिनके समाधान के लिए यह आवश्यक है कि संगीत में शोध कार्य अवश्य होना चाहिए। जिससे इस विषय में प्रगति हो सके और इनमें नवीन मार्ग प्राप्त
सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय संगीत में शोध प्रविधि, नागपाल अलका
2. भारतीय संगीत के अनुसंधान की समस्याएं, श
वन्दना
3. संगीत एवं शोध प्रविधि, शर्मा डॉ. मनोरमा
4. साहित्यिक अनुसंधान के आयाम, जैन डॉ. रवीन्
कुमार
5. शोध प्रविधि, शर्मा डॉ. विनय मोहन

मानव शरीर एवं मस्तिष्क पर संगीत का प्रभाव

अमरजीत कुमार

संगीत साहित्य और कला के बिना मनुष्य पशु के समान है। ऐसा माना जाता है कि संगीत का मूल स्रोत भारत है। यहाँ ईसा से कई शताब्दियों पूर्व सामवेद की रचना हुई थी जो पूर्णतः संगीतमय है। गीता में कहा गया है- "प्रसादसब्र दुःखनां हानिरस्योय जायते।" प्रसन्नव्यक्ति के सारे दुःख समाप्त हो जाते है। यही कारण है, कि संगीत सामदेव को ब्रम्ह ने स्वंय का ही स्वरूप माना "वेदानांसामवेदास्मि। सम्पूर्ण सृष्टि में नैसर्गिक संगीत है। उसकी ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ता है। प्रकृति में हम जहाँ भी देखते है। हवाओं के शोर में पेड़ो की पत्तियों कि सरसराहट में पक्षियों के चहचहाहट में, नदियों और झरनों के पानी के बहाव में, बारिश के रिमझिम बरसने में बच्चों की मासूम खिलखिलाहट में भी संगीत है। दिल की धडकनों में भी सुर होता है। गम और खुशी में उनकी धड़कने की लय अलग-अलग होती है। संगीत के बिना इस संसार में इंसान मात्र एक मशीन होता है। सारे भाव क्रोध दुःख सुख, अध्यात्म सबके तार संगीत से जुड़े है। संगीत वह कला है, जिसके द्वारा इंसान अपने हृदय के सूक्ष्म भावों को स्वर और लय की सहायता से सुन्दर रूप से प्रकट करता है। संगीत ही तो है, जो हमारे हृदय को सहज रूप में आकर्षित करते है। जिसका प्रभाव हमारे मन मस्तिष्क पर पड़ता है।

संगीत एक ऐसी कला है जो कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करने की अद्भुत क्षमता रखती है। व्यवस्थित सुर ताल हमारे दिमाग को क्रियाशील करते है। उसके साथ ही पूरे शरीर पर सकारात्मक प्रभाव भी डालते है, जिससे हमारा मन एकाग्रचित हो जाता है संगीत के स्वर लय तथा बोल और उनके संयोजन में ऐसे तत्व सम्मिलित है, जिनके द्वारा रागों में चिकित्सा भी सम्भव है क्योंकि विद्वानों के कथानुसार संगीत के स्वरों का क्रम आकाशी तत्वों के आन्दोलनों से उद्भूत ध्वनि के आधार पर निश्चित किया गया हैं, संगीत से हमारी असाध्य बिमारियाँ दूर हो जाती है। प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि कीट्स संगीत के बारे में कहते है कि "मधुर संगीत न केवल हमें चिन्ता मुक्त करता है बल्कि हमारा दुःख भी हरता है यह हमें प्रसन्नता देता है।

संगीत आत्मा की आवाज है। यह हमारे शरीर और मस्तिष्क को स्पंदित करता है और इससे व्यक्ति में प्रसन्नता और ऊर्जा का विकास होता है। शरीर मानसिक और भावात्मक को प्रभावित करता है। संगीत की ध्वनि तरगें शरीर के प्रत्येक भाग पर प्रभाव छोड़ती हैं। हेलर मेयर ने अपनी "पुस्तक इडियन म्यूजिक इन फेसिसिटी" में भारतीय संगीत की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन किया है उनके अनुसार "भारतीय संगीत विश्व में सर्वश्रेष्ठ सरगम में दिव्य गुण होते है, जो हमारी भावना को जगाते है और सक्रिय करते है।

विज्ञान की जानी मानी पत्रिका न्यू साइटिस्ट में प्रकाशित एक शोध पत्र में बताया गया है कि "संगीत मानसिक विकास का सर्वोत्कृष्ट माध्यम है"। विशेषज्ञों के अनुसार संगीत बच्चों के बौद्धिक विकास और तर्क क्षमता में बढ़ोत्तरी करता है।

"डाक्टर बर्नर" ने लिखा है कि संगीत सुनने से स्पंदन पैदा होता है। जिससे रक्त संचार पेट तथा सीने की मांसपेशियों का विस्तार होता है।" संगीत

एम.ए., विषय नाट्य, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

की शक्ति से प्रभावित होकर महात्मा गांधी जी ने एक बार कहा था कि "संगीत आत्मा की बेचैनी को दूर कर उसे शान्ति प्रदान करता है। यह मन अशुद्धताओं को दूर कर उसे पवित्र बनाता है। इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता कि मनपसंद संगीत सुनने से दिमाग को सुकून मिलता है इसके साथ ही तनाव भी दूर होता है। आस्ट्रिया में हुए एक अध्ययन के अनुसार संगीत हमारे स्वास्थ्य पर गहरा असर डालता है। संगीत हमारे आटोनोमिक नर्वस सिस्टम पर असर डालता है यह नर्वससिस्टम हमारे ब्लडप्रेसर हार्टबीट और ब्रेनफंक्शन से जुडा हुआ होता है। जब हम मनपसंद संगीत सुनते है तो हमारा ब्लडप्रेसर नियत्रिंत रहता है और हार्ट भी धीमी गति से कार्य करती है जिसके कारण हम सॉस लेना शुरू कर देते है, इस प्रक्रिया के द्वारा शरीर के विभिन्न हिस्सों में होने वाले दर्द से राहत मिलती है।

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि संगीत मन की तीनों अवस्थाओं चेतन अवचेतन तथा अचेतन पर प्रभाव डालता है। **हंसराज भाटिया के अनुसार** "मधुर उत्तेजनापूर्ण संगीत सुनने से कई पुरानी स्मृतियाँ और संवेग पुनर्जीवित हो जाते है।" पीटरडीट्र
एवं वीणा व्यवहार के मतानुसार संगीत में माध्यम
रोगी की दबी हुई इच्छाओं एवं संवेगों को चेतन
पर लाने का प्रयास किया जाता है। वह नई
एवं उत्साह के साथ समस्या निराकरण का प्र
करता है। उसको संगीत से नई स्फूर्ति प्राप्त होती
तथा संवेगों का संचार होता है। दुःख में भी
है तथा शारीरिक क्रियाएँ सामान्य रूप से कार्य
लगती है।

मानसिक रोगियों के लिए मनोरोग चिकित्
पीटर न्यूर्मन और माईकल सेन्डर्स ने एक ऐसा
रोग चिकित्सालय प्रारंम्भ किया है जहाँ उपचार
संगीत वादन से रोगी के रक्तचाप रसपाक प्रक्रि
आदि कई प्रकार के शारीरिक परिवर्तन होते है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि संगीत केव
आनन्दानुभूति नहीं होती। ध्वनियाँ मानसिक स्थिति
की भी सूचक होती है। साथ ही ये हमारे मनोभा
को भी प्रभावित करती है। जिससे संगीत हमा
आत्मा में प्रसन्नता की अनुभूतियों से भर देता है।

गुरू-शिष्य परंपरा एवं संस्थागत संगीत शिक्षा

श्रीनिवास सुधांशु

प्राचीनकाल से ही संगीत अध्ययन की दो धारायें रही गुरू-शिष्य परंपरा एवं संस्थागत शिक्षण प्रणाली। ये दोनों ही शिक्षा, ज्ञान एवं उपयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण है जिनका गहन अध्ययन कर मैं प्रस्तुत हूँ।

भारत में संगीत की शिक्षा प्रणाली मुख्य रूप से दो प्रकार की रही है- एक व्यक्तिगत पद्धति, जिसे गुरूकुल पद्धति के रूप में या गुरू-शिष्य परंपरा के रूप में जाना जाता है और दूसरी संस्थागत पद्धति जिसे किसी संस्थान से संबद्ध माना जाता है। प्रायः 19 वीं सदी के अंत तक संगीत शिक्षा गुरू-शिष्य परंपरा से ही दी जाती रही, यद्यपि संस्थागत शिक्षण की विधिवत शुरूआत सन् 1880 ई. के आसपास जामनगर में पंडित आदित्यराम, बड़ौदा में उस्ताद मौलाबख्श और कलकत्ता में सुरेन्द्र मोहन टैगोर के द्वारा हो चुकी थी।[1] परंतु वास्तव में संगीत की शिक्षा संस्थाओं के युग का सूत्रपात तो पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर तथा आगे चलकर पं. विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा हुआ और इनके प्रयत्नों के फलस्वरूप 24 से 30 वर्षों में ही पूरे उत्तर भारत में संगीत की शिक्षा संस्थाओं का जाल बिछ गया, जिसकी वृहत चर्चा हम आगे करेंगे।

संगीत के इन दोनों पद्धतियों का उद्देश्य लगभग एक है। विद्यार्थी को उसके विषय से किस प्रकार अवगत कराया जाये, विद्यार्थी के मन में रूचि उत्पन्न करने के साथ ही उसे अपने शिक्षण में निम्नलिखित उद्देश्यों का भी ध्यान रखना। जैसे-

1. विद्यार्थी को गायन वादन के प्रयोग दिखाना।
2. विषयों का स्पष्टीकरण सप्रमाण करना।
3. विद्यार्थियों में आत्मविश्वास का निर्माण।
4. सुगम विषयों से कठिन विषयों की ओर ले जाना, इत्यादि।

इस प्रकार संगीत की प्रतिभा, योग्यता और लगन से युक्त तथा कलाकार बनने का लक्ष्य रखने वाले व्यक्ति संगीत की शिक्षा प्राप्त करते थे। वे गुरू के प्रति सच्ची श्रद्धा रखकर परिश्रम और साधना करते थे, दिन-रात संगीत के वातावरण में रहने से उनके संगीत के संस्कार पुष्ट होते थे।[2] गुरू-शिष्य परंपरा में आधुनिक संस्थागत संगीत की तरह विशेष पाठ्यक्रम, पाठ्य-पुस्तकें, परीक्षा प्रणाली, विशेष साधन और सुविधायें तथा उपाधि आदि में से कुछ नही था, फिर भी अंत में व्यक्ति कलाकार बनकर निकलता था, जबकि संस्थागत शिक्षा से व्यक्ति का संपूर्ण विकास नहीं हो पाता था और कलाकार एकांगी बनकर रह जाता था इसके अतिरिक्त समाज में प्रतिदिन व्यक्ति के रूप में जिन गुणों की आवश्यकता होती है उनका विकास न हो पाने से वह समाज में पूरी तरह से नहीं मिल पाता था।

अतः गुरू-शिष्य परंपरा एवं संस्थागत संगीत शिक्षा की पृथक व्याख्या एवं समीक्षा प्रस्तुत है, जिससे संगीत के छात्र-छात्राओं का जीवन उत्कृष्ट बनाया जा सके। गुरू-शिष्य परंपरा से ज्ञान की धारा अबाध तथा अविरल गति से प्रवाहित होती रही है। इसमें स्नान कर कोटि-कोटि लोगों का जीवन धन्य हुआ है। ज्ञानार्जन तथा ज्ञानदान से ऋषि-ऋण या गुरू ऋण से मुक्ति होती है। इस ऋण से ज्ञान का अभिवर्द्धन भी होता है।[3]

व्याख्याता, बी.एड. विभाग, चन्द्रदेव नारायण महाविद्यालय साहेबगंज, मुजफ्फरपुर

वेद को श्रुति भी कहते है। अर्थात वेद को बिना सुने पढ़ पाना असंभव है। वेद मंत्रों के एक-एक शब्द एक-एक पंक्ति के जैसे भी होते है। यानी एक पंक्ति के सारे अक्षर ऊपर की पड़ी लकीर से जुड़े होते है, जिसे स्पष्टतः पढ़ पाना मुश्किल था। येन-केन-प्रकारेन पढ़ भी लिया तो उसका सही अर्थ लगाना मुश्किल। इसलिए वेद के शुद्ध पाठ के लिए व्याकरण के नियम बनाये गये। इसी प्रकार संगीत के न्यूनतम इकाई को भी श्रुति ही कहा जाता है। अर्थात् जिसे कान से ध्यानपूर्वक स्पष्ट एवं पृथक समझा जा सके वही श्रुति है। संगीत में श्रुति इतना सूक्ष्म होता है कि श्रुतिज्ञान के बाद भी अगर हमारा ध्यान थोड़ा भी इधर-उधर हो जाये तो हम एक श्रुति को दूसरे से अलग नहीं समझ पाते। अतः श्रुति ज्ञान, श्रुति उच्चारण कराने के लिए संगीत में योग्य गुरू का बहुत अधिक महत्व है। संगीत के इस विकसित युग में भी आज तक श्रुति को लिखकर समझ पाना संभव नहीं हो पाया। अतः संगीत शिक्षा आज भी प्राचीन गुरू-शिष्य परंपरा पर ही आधारित है, चाहे इसे हम आधुनिक संस्थागत संगीत के रूप में ही क्यों न देखें। यह बात अलग है कि आधुनिक काल के संगीत में श्रुतियों का स्थान स्वर ने ले लिया है, अर्थात् कुल 22 श्रुतियों को मात्र 12 स्वरों के रूप में ही प्रयोग किये जा रहे हैं जो अपेक्षाकृत श्रुति से सरल एवं आसान हैं, तथापि संगीत शिक्षा के लिए गुरू की अनिवार्यता कम नहीं आँकी जा सकती। इन स्वरों को हम किसी गुरू से सुने बिना कैसे समझ सकते? अतः आज तक संगीत का अस्तित्व गुरू के बिना संभव नहीं हुआ और भविष्य में भी गुरू का विकल्प नहीं दिखता।

संगीत शिक्षण एक क्रियात्मक विद्या है, जिसे लिखकर या पढ़कर नहीं सिखा जा सकता, चाहे वह वाद्य संगीत हो, गायन हो अथवा नृत्य। गायन गुरू के पास प्रत्यक्ष रूप में संपूर्णतः कानों द्वारा सुनकर सीखा जाता है। अलग-अलग वाद्यों को बजाने की तकनीक भी अलग-अलग होती है जिसे देखकर ही सीखना पड़ता है, संगीत एक ऐसी विद्या है कि विद्यार्थी को गुरू के द्वारा सिखाये गये पाठ को उसी समय समझ लेने की आवश्यकता है, क्योंकि उनकी अनुपस्थिति में उनका वह पाठ कहीं किसी पुस्तक में नहीं मिल सकता, न ही किसी अन्य गुरू के पास ही मिल सकता है। हर संगीत शिक्षक की अपनी अलग शिक्षा पद्धति होती है। राग एक ही होने पर भी उसकी बंदिश, अलाप-तान, लयकारियाँ सब अलग-अलग हो सकती है। विद्यार्थी अपने गुरू से सीखकर घर लौटने पर सीखी हुई चीजों का अभ्यास करता है। प्राचीन शिक्षा पद्धति में अधिकांशतः न तो संगीत शिक्षक को लिखना-पढ़ना आता था न ही शिष्य को। लेकिन आधुनिक संस्थागत संगीत-शिक्षा में विद्यार्थी को कुछ पाठ लिखा देने की परंपरा बन गई है।[4]

प्राचीनकाल से ही संगीत के विकास में गुरू-शिष्य परंपरा की महती भूमिका रही है। गुरू अपने शिष्यों को अपने ज्ञान, अपने अनुभव, अपने सिद्धांत एवं भावों द्वारा संगीत की अनेक विधाओं को सिखाते थे और योग्य शिष्य उनका अनुसरण कर एक महान गायक, एक योग्य संगीतज्ञ होते थे। वह शिष्य अपने साथ अपने गुरू का नाम भी अमर करता था।

संगीत को गुरू मुख विद्या भी कहा गया है और इसी कारण संगीत में गुरू-शिष्य परंपरा का बहुत अधिक महत्व है। आदिकाल से वैदिक काल तक तथा पुराणकाल, रामायणकाल, महाभारतकाल, बुद्धकाल होते हुए मध्यकाल के अंत तक गुरू अपने शिष्यों को जो भी संगीत की शिक्षा देते थे वह पूर्णरूपेण मौखिक था, उस समय बंदिशों को लिखने का न ही प्रचलन था न ही कोई सिद्धांत। गुरू अपनी योग्यतानुसार छात्रों को सिखाते थे, अभ्यास करवाते थे और छात्र अभ्यास के बल पर उसे आत्मसात करते थे। संगीत कला में पारंगत होने के लिए गुरूकुलों में प्रतिभाओं का चयन कर पुत्रवत प्रशिक्षण दिया जाता था, शिष्यगण गुरूओं की श्रद्धाभाव से सेवा करते थे तथा अभिभावक गुरू की आजीविका के लिए दक्षिणा प्रदान करते थे। कुछ राजे-महाराजे, जमींदार, रईस, बादशाह स्वयं अच्छे गुरूओं के सानिध्य में संगीत कला सीखे होते थे ऐसे कला प्रेमी गुरूकुल का सारा खर्च वहन करते थे।

कुछ राजे-महाराजे, बादशाह संगीत को मात्र मनोरंजन का साधन मानते थे और अपने दरबार के नवरत्नों में संगीतज्ञों को राजाश्रय दिये हुये थे

संगीतज्ञों में कुछ तो संगीतजीवी थे और कुछ संगीतोपासक प्रवृत्ति के जिन्हें एक राजदरबार से दूसरे राजदरबार में भेंटस्वरूप भी स्थानांतरण किया जाता था, इस प्रकार यह गुरू जहाँ भी जाते वहाँ उसकी परंपरा का निर्वाह करते हुए राज परिवार का आमोद-प्रमोद करते थे, राजदरबारों में आयोजित संगीत प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेते थे। इस प्रकार गुरू-शिष्य परंपरा से संगीतकला प्रचारित होती थी।[5]

संगीत का संस्थागत शिक्षण दो प्रकार की संस्थाओं के माध्यम से होता है-1. केवल संगीत की शिक्षा देने वाली संस्थायें और 2. अन्य विषयों के साथ संगीत की शिक्षा देनेवाली संस्थायें। इनमें से प्रथम वर्ग में संगीत विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के संगीत विभाग आते है और दूसरे वर्ग में सामान्य विद्यालय तथा महाविद्यालय जिसमें दूसरे विषयों के साथ-साथ संगीत की भी शिक्षा दी जाती है। दोनों का क्षेत्र भिन्न-भिन्न होते हुए भी ये किसी न किसी प्रकार एक दूसरे से संबद्ध हैं।

गुरू-शिष्य परंपरा के पश्चात् संगीत की विधिवत संस्थागत शिक्षा का श्रीगणेश 20 वीं शताब्दी के आरंभ में हुआ। सन् 1986 में बड़ौदा में संगीत कला के विकास हेतु प्रसिद्ध गायक एवं वीणावादक उस्ताद मौलाबख्श के मार्गदर्शन में संगीत पाठशाला खोली गयी। संस्थागत शिक्षा के प्रारंभ होने के मुख्य कारण जनसामान्य को संगीत की शिक्षा सुलभ कराना था। पुराने जमाने में संगीत में अभिरूचि रखने वाले छात्र गुरूकुल में रहकर गुरू की सेवा करके संगीत की शिक्षा लेते थे। इसके लिए उन्हें कठोर परिश्रम करना पड़ता था। संगीतोद्धारक विष्णु द्वय (पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर तथा पं. विष्णु नारायण भातखंडे) ने संगीतकला में अभिरूचि रखने वाले सामान्य जनों के लिए संगीत संस्थायें खोलकर कलाकार, शिक्षक, शोधार्थी एवं संगीतज्ञ बनने के द्वार खोल दिये।[6]

यद्यपि आधुनिक युग में संगीत के संस्थागत शिक्षण की व्यवस्था पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के प्रभाव से बहुत विकसित हुई, परंतु इस विषय में शालेय शिक्षण का प्रचलन प्राचीन एवं मध्ययुग में भी यत्र-तत्र देखने को मिलता है। महाभारत में बृहन्नलला रूपधारी अर्जुन की नियुक्ति विराट की राजकन्या तथा राजस्त्रियों की संगीत-शिक्षा के लिए किये जाने का उल्लेख है। यहाँ अर्जुन को गांधर्व-विशारद कहा गया है। महाभारत काल में बड़े-बड़े नगरों में संगीत शिक्षा के लिए संगत-शालाओं का प्रबंध शासन की ओर से किया जाता था तथा इनके सम्यक् संचालन का समुचित प्रबंध रहता था। मत्स्यराज की राजधानी में युवतियों की नृत्य शिक्षा के लिए विशाल नृत्य भवन का निर्माण किया गया था।[7]

बौद्ध काल में तक्षशिला विद्यादान का प्रमुख केन्द्र था जिसमें वैदिक विद्यालय, विद्यालय, शिल्प-विज्ञान आदि विभिन्न अध्ययन विभागों में पाँच-पाँच सौ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। वाराणसी बौद्धकाल का एक दूसरा विद्या केन्द्र था, जिसमें संगीत अध्ययन का स्वतंत्र विभाग था। नालंदा, विक्रमशीला, ओदन्तपुरी जैसे अन्य विश्वविद्यालयों में भी गान्धर्व का स्वतंत्र निकाय अथवा फैकेल्टी था तथा इसके अधिष्ठाता के रूप में भारत-विख्यात संगीतज्ञों की नियुक्ति हुआ करती थी।

बाण के हर्षचरित में राजभवन के अंतर्गत संगीत-गृह का उल्लेख है जो राजप्रासादों का आवश्यक अंग रहा है। राजप्रासादों की जिस रचना का उल्लेख बाण के हर्षचरित में है, उसकी परंपरा पूर्वकालीन साहित्य से लेकर उत्तरवर्ती साहित्य में बराबर पाई जाती है जिसमें संगीतशाला का अनिवार्य स्थान रहा है।

भास के नाटकों में राजकन्याओं को बाल्यकाल से ही संगीत शिक्षा प्रदान करने हेतु संगीतशालाओं की व्यवस्थाओं का उल्लेख मिलता है। ये संगीत शालायें राजभवन के परिसर में हुआ करती थी जिसमें गीत, वाद्य तथा नाट्य आदि कलाओं का यथाविधि शिक्षण दिया जाता था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के साक्ष्य से स्पष्ट है कि नाट्य तथा संगीत कलाओं को राजाश्रय प्राप्त था। गणिका, दासी तथा नटों को गीत, वाद्य, नृत्य, नाट्य आदि कलाओं की शिक्षा देने वाले व्यक्तियों को शासन की ओर से द्रव्य दिया जाता था। इनके पाठ्यक्रम में वैशिकी कला के अतिरिक्त गीत, वाद्य,

नृत्य, नाट्य, वीणा, वेणु, मृदंग की शिक्षा सम्मिलित थी। ललितकला की इन संस्थाओं का प्रवर्तन राज्य की ओर से होता था। ऐसी संस्थाओं में गणिकाओं के अतिरिक्त उनके वंशज तथा संगीत का व्यवसाय करने के इच्छुक अन्य शिक्षार्थियों को प्रवेश दिया जाता था। वात्स्यायन के कामसूत्र में भी संगीतशालाओं में संगीत शिक्षा के प्रबंध का उल्लेख मिलता है। इन शालाओं का संचालन समस्त नगर की ओर से अथवा भिन्न-भिन्न व्यवसायिक गणों की ओर से होता था। विद्यार्थियों तथा गणकादि वर्गों को संगीत की उच्च शिक्षा दी जाती थी। इन शालाओं का पाठ्यक्रम समाप्त करने पर गणिका तथा अन्य विद्यार्थी न केवल जीविकोपार्जन के लिए योग्य बन जाते, अपितु सुसंस्कृत नागरिक कहलाने के पात्र हो जाते थे।

कालीदास द्वारा रचित ग्रंथों में भी संगीत विषयक उल्लेख मिलते हैं। इस युग में संगीत को यथेष्ट राजसम्मान प्राप्त था। राजगृह में संगीतशालाओं का संचालन बड़ी सफलतापूर्वक होता था जिसके फलस्वरूप मालविका, हंसपदिका, शर्मिष्ठा, इरावती तथा इन्दुमती जैसी प्रतिभाओं का निष्पादन हुआ था। अग्निमित्र के राजगृह में संगीतशाला थी जिसमें संगीत के विविध अंगों का अध्ययन तथा अध्यापन अधिकारी आचार्यों की देख-रेख में होता था। ऐसे आचार्यों को उनकी योग्यता के अनुकूल वेतन दिया जाता था। राजभवन में संगीत शिक्षा का प्रबंध विशेष रूप से राजस्त्रियों तथा उनकी दासियों के लिए होता था।

मध्यकाल में संगीत की संस्थागत शिक्षा प्रणाली का विकास :

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर (1486-1516 ई.) से ग्वालियर राज्य का उत्कर्ष माना जाता है। मानसिंह तोमर गुणियों के आश्रयदाता रहे और संगीतकला को विशेष प्रश्रय उनके हाथों मिला। संगीत के अध्येताओं के लिए संगीतशाला खोलने का श्रेय उन्हीं को है। मान सिंह तोमर ने संगीताचार्य बैजू, बख्शू, महमूद, लोहंग, कर्ण, पाण्डवीय आदि की सहायता से ही संगीत ग्रंथ मानकुतूहल की रचना करवाई थी, जिसके द्वारा ध्रुपद गायकी का प्रचार हुआ था। तत्कालीन सांस्कृतिक केंद्र तथा ध्रुपद गायकी के गायन-विद्यालय में इन आचार्यों से भी तानसेन ने संगीत शिक्षा पाई थी।[9]

आधुनिककाल में संगीत की संस्थागत शिक्षा प्रणाली का विकास :

मानसिंह तोमर काल के उपरांत और आधुनिक काल के पूर्व तक अन्य किसी राजा या महाराजा द्वारा संगीत विद्यालय स्थापित कराये जाने का प्रामाणिक उल्लेख हमें प्राप्त नहीं होता। इस संबंध में छुट-पुट प्रयास 19 वीं शताब्दी से प्रारंभ हुयें। अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ ही संपूर्ण शिक्षा प्रणाली का पाश्चात्यीकरण प्रारंभ हुआ। मानविकीय (Huminity) एवं विज्ञान (Science) के साथ-साथ ललित कलाओं एवं संगीत की शिक्षा भी गुरूकुल प्रणाली के स्थान पर संस्थाओं या विद्यालयों में सामूहिक रीति से प्रारंभ हुई। जनसामान्य में अधिकतम प्रचार-प्रसार, शिक्षण में नियमवद्धता एवं स्तरीयकरण के उद्देश्य से संगीत विषय की संस्थागत सामूहिक शिक्षण विधि अपनाना युग की आवश्यता थी। इनके द्वारा ही अधिकतम व्यक्ति लाभान्वित हो सकते थे। पाश्चात्य देशों में काफी पहले से ही इस विधि का व्यवहार हो रहा था तथा वहाँ संगीत शिक्षण के क्षेत्र में भी इसका प्रचलन था। 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में तानसेन के वंशज बहादुर खाँ (सेनिया घराना) जो प्रसिद्ध ध्रुपदिया थे विष्णुपर (बंगाल) में जाकर बस गये। वहाँ उन्होनें संगीत का एक विद्यालय प्रारंभ किया जिसमें गदाधर चक्रवर्ती, रामशंकर भ्राचार्य, निताई नजीर, वृन्दावन नजीर इत्यादि प्रसिद्ध गायक तैयार हुये। रामशंकर भट्टाचार्य के शिष्यों में क्षेत्र मोहन गोस्वामी ने सन् 1871 में कलकत्ता में राजा यतीन्द्र मोहन ठाकुर और राजा शौरेन्द्र मोहन ठाकुर की सहायता से भारत में सर्वप्रथम संगीत महाविद्यालय की स्थापना की।[10]

पं. भास्कर राव बखले द्वारा 1874 में पुणे में पूना गायन समाज नामक संस्था की स्थापना हुई, जिसका नाम बाद में भरत गायन समाज हो गया। सन् 1881 में राजा शौरेन्द्र मोहन ठाकुर ने बंग

संगीत विद्यालय की स्थापना कोलकाता में की। इन्हीं दिनों पं. बालकृष्ण बुवाइचलकरंजीकर ने मुम्बई में गायन समाज की स्थापना की। सन् 1880 के लगभग दिल्ली में प्रसिद्ध सितार वादक पन्नालाल गोसाई ने सितार का विद्यालय चलाया।

इस दिशा में निश्चित प्रयत्न सन् 1886 में बड़ोदा में हुआ जहाँ श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड़ द्वारा उस्ताद मौलाबख्श, घिस्से खाँ और पं. आदित्यराम की देख-रेख में संगीत विद्यालय प्रारंभ करवाया गया। यही विद्यालय बाद में बड़ौदा स्टेट कॉलेज ऑफ म्यूजिक कहलाया। मुम्बई में पारसियों द्वारा सन् 1890 के पूर्व ही गायनोत्तेजक मंडल की स्थापना की जा चुकी थी। इसी मंडल में पं. भातखंडे जी ने रावजी बुवा बेलगाँवकर से ध्रुपद एवं उस्ताद अली हुसैन खाँ से ख्याल की शिक्षा पाई थी।

भारतीय संगीत के पुनर्उत्थान तथा संस्थागत संगीत शिक्षा के क्षेत्र में पं. विष्णु नारायण भातखंडे का स्थान सर्वोपरि है। इनके प्रयत्न से कई संगीत-विद्यालयों की स्थापना हुई। उनमें मुख्य हैं- मैरिस म्यूजिक कॉलेज वर्तमान नाम भातखंडे संगीत महाविद्यालय, लखनऊ, माधव संगीत विद्यालय, ग्वालियर तथा म्यूजिक कॉलेज, बडौदा आदि।[11]

बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर अखिल भारतीय संगीत कलाकोविदों में एक उच्च श्रेणी के गायक तथा पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के गुरू थे। इन्होनें बम्बई में गायन-समाज की स्थापना की।[12]

जैसा कि सर्वविदित है कि आधुनिक भारतीय संगीत के जीर्णोद्धार में पं. भातखंडे के जैसा सम्मान इनके कुछ दिनों बाद पं. विष्णु दिगम्बर को प्राप्त हुआ। ये आँख से अंधे होते हुए भी आधुनिक भारतीय शास्त्रीय संगीत को एक नया उजाला देने का कार्य किया। संस्थागत संगीत शिक्षा में इनका उत्कृष्ट योगदान रहा। 5 मई 1901 ई. को लाहौर में संगीत महाविद्यालय गांधर्व महाविद्यालय की स्थापना की। 1906 ई. में एनीबेसेन्ट द्वारा थिओसोफिकल विद्यालय की स्थापना बनारस में की जिसमें संगीत को शिक्षा का एक विषय बनाया गया। सन् 1906 ई. में ही वाराणसी में काशी संगीत समाज संस्था के अंतर्गत एक संगीत विद्यालय चलाया गया जो 1925 ई. तक ही चल पाया। 1908 ई. में पंडितजी ने बंबई में गंधर्व महाविद्यालय की एक शाखा खोली।[13]

भारत के महान गायक, तंत्रकार, सारंगी वादक व किराना घराना के संस्थापक अब्दुल करीम खाँ ने सन् 1913 ई. के लगभग पूना में आर्य संगीत विद्यालय की स्थापना की। इसी विद्यालय की एक शाखा 1917 ई. में खाँ साहब ने बम्बई में स्थापित की।[14]

पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के प्रमुख शिष्यों में से एक नारायण मोरेश्वर खरे ने सन् 1912 ई में अहमदाबाद में संगीत मंडल की स्थापना की तथा अपने गुरू विष्णु दिगम्बर जी के देहावसान के बाद सन् 1931 में गांधर्व महाविद्यालय मंडल की स्थापना कराई।[15]

आधुनिक काल के विश्व विख्यात सितारवादक एवं संगीत के क्षेत्र में प्रथम भारत रत्न पं. रविशंकर ने सन् 1962 ई. में बंबई में किन्नर स्कूल ऑफ म्यूजिक की स्थापना की।[16]

इन सभी का उद्देश्य संगीत के प्रति जनरूचि पैदा करना एवं संगीत का प्रचार घर-घर तक करना था। लगभग इसी समय इलाहाबाद में प्रयाग संगीत समिति की स्थापना हुई। सन् 1950 ई. में वाराणसी में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अंतर्गत संगीत विभाग की स्थापना के परिणाम स्वरूप देश के अन्य विश्वविद्यालयों में भी संगीत विभाग को प्रारंभ करने की होड़ सी लग गयी।

इसके पश्चात् सरकार तथा समर्थ व्यक्तियों की ओर से भी देश के अनेक स्थानों में नवीन संस्थायें व अकादमी खुली जिसमें संगीत नाटक अकादमी व उसकी शाखायें, भारतीय कला केन्द्र, दिल्ली, सगीत रिसर्च अकादमी, कोलकाता, ध्रुपद केंद्र, भोपाल आदि प्रमुख हैं। यहाँ सरकार व अन्य संस्थाओं की ओर से पुरस्कार तथा छात्रवृति भी दी जाती है।

दक्षिण भारत भी संगीत की संस्थागत शिक्षण प्रणाली के प्रभाव से अछूता नहीं रह सका। तालचुर बंधुओं द्वारा 1873 ई. में कर्नाटक संगीत की स्थापना की प्रथम पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित की गई।

अतः प्राचीनकाल से मध्यकाल होते हुये आधुनिक काल तक संगीत की गतिविधि का

अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि जहाँ संस्थागत संगीत शिक्षा प्रणाली से इस क्षेत्र में बहुत सारे सिद्धांत आये और संगीत के प्रायोगिक पक्ष के साथ सैद्धांतिक पक्ष को भी अनिवार्य किया गया, परीक्षा एवं प्रमाण-पत्र दिये गये जिससे लोगों को रोजगार एवं व्यवसाय प्राप्त हुआ और यह संगीत विषय अन्य विषयों की श्रेणी में आ गया, वहीं गुरू-शिष्य परंपरा का प्रभाव आज भी कम नहीं। यह परंपरा शिष्यों को अपने गुरू से प्राप्त विरासत की तरह है जो उन्हे संगीत का उत्कृष्ट संस्कार एवं अभ्यासी बनाता है।

अतः भारतीय संगीत के समुचित विकास के लिए इन दोनों को एक दूसरे का पूरक मानना चाहिए।

संदर्भ सूचीः-

1. रावत डॉ निशा, संगीत, पृष्ठ संख्या-178
2. यहीं पृष्ठ संख्या-179
3. बत्र दीनानाथ, शिक्षा में त्रिवेणी, पृष्ठ-18, विद्या भारती प्रकाशन।
4. रावत डॉ निशा, संगीत, पृष्ठ संख्या-178
5. यहीं पृष्ठ संख्या-170
6. यहीं पृष्ठ संख्या-178
7. पाण्डेय डॉ कृतार्थ, पृष्ठ-17 संगीत कार्यालय, हाथरस, फरवरी-15
8. वहीं, पृष्ठ-17
9. वहीं, पृष्ठ-19
10. वहीं, पृष्ठ-19
11. श्रीवास्तव हरिशचन्द्र, राग परिचय भाग-1 पृष्ठ-10, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
12. वसंत, संगीत विशारद, पृष्ट-489, संगीत कार्यालय हाथरस, 27 वाँ संस्करण।
13. श्रीवास्तव हरिशचन्द्र, राग परिचय भाग-1 पृष्ठ-18, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
14. वसंत, संगीत विशारद, पृष्ट-490, संगीत कार्यालय हाथरस, 27 वाँ संस्करण।
15. यहीं पृष्ट-496
16 यहीं पृष्ट-510

आधुनिक युग में शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता

नन्दकिशोर झा

शास्त्रीय संगीत गंगा की भाँति नाद ब्रह्म के अनिर्वचनीय आनन्द की उन्मुक्त कल्याणी चिरन्तन धारा है, जो समाज को युगों से रसाप्लावित करती रही है। इस धारा को कोई भी अपने पात्र की क्षमता के अनुसार संजो सकता है, आनन्द प्राप्त कर सकता है। समर्पण भाव एवं साधना ही पात्र के आकार-प्रकार का आधार है। एक वाक्य में कहा जा सकता है, संगीत एक विशाल सरिता अवश्य है, परन्तु यदि इसका फैलाव बढ़ा, तो गहराई अनिवार्यतः छँटेगी और यदि गहराई बढ़ती है तो फैले जल को अपने प्रबन्धों के बीच सिमटना ही होगा, यही है शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता का मर्म।

प्राचीनकाल में ही अभिजात्य वर्ग तथा विद्वानों द्वारा संस्कृत तथा अन्य वर्गो द्वारा प्राकृत बोली जाती थी। हम हर राह चलते साधारण व्यक्ति से कैसे आशा कर सकते हैं कि वह वाल्मीकि, कालिदास, भास अथवा अन्य कृतियों का सहज रसास्वादन कर ले। इसी प्रकार साहित्यकारों, रचनाकारों से अपेक्षा करना कि वह ऐसा लिखें कि हर व्यक्ति बिना प्रयास समझ लें, आनन्द ले सकें - न केवल अन्यायपूर्ण बल्कि अव्यावहारिक भी होगा। स्तरीय कला, साहित्य को समझने के लिए उसके मूलभूत सिद्धान्तों, शास्त्रीय नियमों व्यावहारिक बारीकियों, सौन्दर्य का अंतरंग ज्ञान आवश्यक है। जिन्हें भाषा विशेष का ज्ञान नहीं है, उनके लिए जर्मन, फ्रेंच अथवा रूसी या अन्य किसी भी अजनबी भाषा की श्रेष्ठतम काव्य रचना का पाठ शोर से अधिक और क्या होगा? इस स्थिति में दोष किसका है? रचनाकारों का, अथवा उस भाषा विशेष से अनभिज्ञ श्रोताओं का, जो न केवल काव्य के रस, अलंकार, छन्द, काव्य सौन्दर्य, बल्कि भाषा से ही अपरिचित है।

लोकप्रियता के संदर्भ में शास्त्रीय संगीत पर गलेबाजी, भावशून्यता, नीरस, अशुद्ध तानबाजी, संगत के नाम पर दंगल, द्वन्द्व युद्ध जैसे आरोप लगाए जाते हैं। ऐसे आरोप अंशतः सही हो सकते हैं, परन्तु सामान्य रूप में ऐसा नहीं है। इसके अनेक कारण थे, मध्ययुगीन राजदरबार परम्परा में रहने वाले संगीतज्ञों का व्यवसायी दृष्टिकोण, दरबार में अपना ऊँचा स्थान बरकरार रखने के लिये एक दूसरे को नीचा दिखलाने, अपने को सबसे ऊँचा सिद्ध करने, लय, गति अथवा अन्य किसी भी चमत्कारिक प्रभाव से आश्रयदाता को आश्चर्यचकित, प्रभावित करने अथवा फिर संरक्षक का रूख और रूचि देखकर, भले ही वह संगीत-विरोधी अव्यवहारिक अश्लील ही क्यों न हो, प्रदर्शन से प्रसन्न करने की ललक जैसे अनेक कारण थे। हिन्दी साहित्य में रीतिकाल में भी यही हुआ। चमत्कार, अलंकारों की प्रधानता हुई, भाव उपेक्षित हो गया, परन्तु अब ऐसा नहीं है। वर्तमान श्रोता कहीं अधिक सजग और संवेदनशील, व्यापक दृष्टिवाले, समालोचक हैं। कलाकार भी कला को भाव सरसता प्रधान बनाने के लिये प्रयत्नशील है।

शास्त्रीय संगीत के श्रेष्ठ कलाकारों की, जिन्होंने लोकप्रियता की कीर्तिमान स्थापित कियें, अपनी समृद्ध परम्परा है। इनमें अब्दुल करीम खाँ, बड़े गुलाम अली खाँ, अमीर खां, बुन्दू खाँ, इनायत खाँ, विलायत खाँ, बिस्मिल्ला खां, भीमसेन जोशी, सलामत अली-नजाकत अली, पण्डित जसराज जैसे अनेक

शोध छात्र, वि.वि. संगीत विभाग, ति.मां. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

नाम लिये जा सकते हैं। आजकल मात्र किसी घराने अथवा परम्परागत रूप में अपने पिता आदि की अर्जित ख्याति मात्र से संगीतज्ञ स्थापित अथवा लोकप्रिय नहीं हो सकता। वर्त्तमान श्रोता इस सम्बन्ध में कहीं अधिक वस्तुनिष्ठ और पूर्वग्रहमुक्त हैं। संगीतज्ञों की सीमित संख्या के आधार पर लोकप्रियता के सामने प्रश्न चिन्ह लगाया जाता है। यह आरोप भी असंतुलित है। किसी भी कला या साहित्य के शिखर पर थोड़े ही लोग पहुँच पाते हैं। गत पचास वर्षों से भी अधिक निरन्तर प्रचार और गाँव-गाँव घर-घर लोकप्रियता के बावजूद फिल्म गायकों की संख्या भी तो सीमित हैं। कुन्दन लाल सहगल, सी. एच. आत्मा, शमशाद बेगम, गीता दत्त, मुहम्मद रफी, मुकेश, महेन्द्र कपूर, मन्ना डे, लता मंगेशकर, आशा भोंसले, सुमन कल्याणपुर, सुलक्षणा पंडित, अनुराधा पौडवाल, वाणी जयराम जैसे कुछ नाम लिये जा सकते हैं।

अन्य समस्त कलाओं की तुलना में संगीत की अन्य शैलियों की अपेक्षा अमूर्त, सूक्ष्मतम होने के कारण शास्त्रीय संगीत को श्रेष्ठ माना गया है। मूर्तिकार, चित्रकार जिस अभिव्यक्ति को सजीव प्रतीत होने वाली प्रतिमा अथवा जीवन्त रंग-बिरंगे चित्रों से प्रस्तुत करता है, संगीतज्ञ उसे शब्दों-स्वरों से अभिव्यक्त करता है। अभिव्यक्ति का रूप जितना अधिक मूर्त और ठोस होता है, उसके श्रोताओं, दर्शकों की संख्या उतनी अधिक होती है। सम्भवतः इसी कारण विशुद्ध ध्वनि (स्वर) प्रधान शास्त्रीय संगीत की तुलना में शब्द-प्रधान भाव संगीत, ठुमरी, भजन, गजल आदि अधिक लोकप्रिय हैं। इनकी तुलना में दर्शक मूर्त-प्रधान होने के कारण नृत्य अधिक पसंद करते हैं, इसी प्रकार फिल्मी संगीत शब्द-भाव प्रधान दृश्य विशेष से सम्बंधित (एसोसियेसन ऑफ आइडियाजस) होने के कारण श्रोताओं को अधिक प्रभावित करता है। फिल्म को देखने के पश्चात् उसके गीत सुनने से श्रोता के सामने गीत से सम्बंधित दृश्य विशेष उभरकर साकार हो उठता है, जिसके साथ गीत और श्रोता का पूर्ण तादात्म्य स्थापित हो जाता है। गीत से सम्बधित फिल्म देखकर और बिना देखे गीत सुननेवाले श्रोताओं की संवेदनशीलता, प्रभाव में बड़ा अन्तर मूर्तता के प्रभाव का सबसे बड़ा प्रमाण है। सूक्ष्मता के कारण शास्त्रीय संगीत सुननेवालों की संख्या भले अन्य शैलियों के श्रोताओं जैसी न हो परन्तु अमूर्तता और सूक्ष्मता के कारण ललित कलाओं में शास्त्रीय संगीत को सर्वोत्तम स्थान दिया गया है।

शास्त्रीय संगीत तथा अन्य कलाओं में वही अन्तर है जो निर्गुण और सगुण ब्रह्म में है। शास्त्रीय संगीत मूर्तता, साहित्य से परे है, विमुख नहीं। साहित्य में भाव, रस, अलंकार, छन्द, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना की भाँति संगीत का अपना सौन्दर्य है। स्वरों से आरोह-अवरोह, स्वर सन्निवेश, चलन, ढंग, गमक, कम्पन, आलोड़न से संगीत आंगिक चेष्टा, शाब्दिक भाव को अभिव्यक्त करता है। काकुभेद से उन्हीं शब्दों/वाक्य को अलग अर्थसूचक रूप में मात्र शब्दों के उच्चारण में उतार-चढ़ाव के माध्यम से सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया जाता है। "पिया नाहीं आए" व्यंजना की टीस की कल्पनशील कलाकार बिना पुनरावृत्ति किये अनेक रूपों में प्रभाव ढंग से व्यक्त करता है, यही उसकी श्रेष्ठता है। विद्वान लोग जानते हैं, भीमपलासी, बागेश्री, आसावरी, जौनपुरी, मालकंस, अड़ाना, धानी, तोड़ी, दरबारी सभी में कोमल गान्धार का प्रयोग होता है। प्रत्येक राग में गान्धार का विशेष ढंग से प्रयोग/चलन राग को अलग-अलग स्वरूप और पहचान देता है। यही है शास्त्रीय संगीत की विशेषता। शास्त्रीय संगीत की इन विशेषताओं, बारीकियों तथा सौन्दर्यबोध के साथ पारखी के लिये गहराई तक डूब कर कला का आनन्द लेने के लिये भी पर्याप्त संगीत-ज्ञान, समझ, साधना, अनुशासन, धैर्य आवश्यक है। ऐसे प्रबुद्ध पारखीजनों और कलाकारों के बीच निरन्तर द्विपक्षीय संवाद से कलाकार की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति का आनन्द मिलता है। इस दृष्टि से शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता सदैव सीमित रहेगी। व्यापक प्रचार के लिये लोकसंगीत है।

यह विडम्बना है कि राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अपना देश, अपनी कला-संस्कृति पर गर्व करने की अपेक्षा सांस्कृतिक दासता में स्वेच्छया दिनोंदिन जकड़ता जा रहा है। इस प्रवृत्ति के कारण संगीतज्ञों का एक वर्ग अपनी कला-श्रेष्ठता, साधना की अपेक्षा येनकेन प्रकारेण विदेशी दौरा करके वहां

के तमगों, प्रेस समीक्षा कटिंग्स अथवा अतिरंजित वर्णन से व्यापार की विज्ञान-शैली का आकर्षक फोल्डरों के माध्यम से भरपूर उपयोग करके भारत के श्रोताओं को चकाचौंध करने, लोकप्रियता हासिल करने और इस तरकीब से रातोंरात अपनी फीस कई गुना बढ़वाने में लगा है। ऐसे शॉर्टकट से त्वरित लाभ भी हो रहा है। परन्तु इससे सही अर्थों में, और स्थायी लोकप्रियता नहीं प्राप्त हो सकती है। इसी प्रकार कलाकारों के लिये सस्ती लोकप्रियता के चक्कर में न पड़कर अपने स्तर, स्वाभिमान को बनाये रखना है। स्व. पं. वी.जी. जोग, उस्ताद विलायत खाँ, उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ आदि जैसे कलाकारों ने श्रोताओं के फिल्मी गीत अथवा धुन जैसे अनुरोध को विनम्रतापूर्वक अस्वीकार करके अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। मात्र लोकप्रियता के लिये शास्त्रीय संगीत के सरलीकरण का कोई प्रश्न ही नहीं है। ध्रुवपद से खयाल, खयाल से ठुमरी जैसी प्रक्रिया सहज रूप में अपने आप चलती रहती है।

हर समस्या का राजनीतिक पद्धति से निदान ढूंढने की प्रवृत्ति के कारण दीनइलाही धर्म की तर्ज पर कर्नाटकी एवं हिन्दुस्तानी संगीत पद्धतियों को मिलाकर नयी पद्धति चलाने का सुझाव दिया गया है, जिससे शास्त्रीय संगीत अधिक लोकप्रिय हो। ऐसे सुझाव कला के लिये नितान्त अनुपयुक्त और अव्यावहारिक हैं। दोनों पद्धतियाँ गुलदस्ते के रंग-बिरंगे फूलों जैसी हैं, जिनके पुष्पों की विविधता, सुगंधि ही उनका सौन्दर्य हैं। समय की गति और दृष्टिकोण के कारण तालवाद्य कचहरी, दोनों पद्धतियों में राग-रागनियों को परस्पर अपनाये जाने और लोकप्रिय होने की प्रक्रिया सहज रूप में चल रही है। जो आधुनिक युग में शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता के कारण ही संभव हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. परांजपे शरद चन्द्र श्रीधर भारतीय संगीत का इतिहास।
2. शर्मा डॉ. हरद्वारीलाल, कला में संगीत, साहित्य एवं उदात्त के तत्व।
3. लेख- परांजपे श्री शरद चन्द्र श्रीधर, 'संगीत निबंध संग्रह'।
4. चौबे सुशील कुमार - हमारा आधुनिक संगीत।

वैदिक साहित्य और संगीत

नीलम कुमारी

संगीत का संबंध मानव अस्तित्व के साथ ही आरम्भ होता है। वस्तुतः जीवन के आरम्भ से अबतक की यात्रा पूरे ब्रह्माण्ड में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से विद्यमान लयात्मकता के साथ एकाकार होने का उपक्रम मात्र है और संगीत इसी आन्तरिक उपक्रम की बाह्य प्रकटीकरण है। पाषाणकालीन स्फुट अवशेषों से लेकर प्राक्इतिहास, सिन्धु सभ्यता से होती हुई संगीत की जो विभिन्न धारा प्रवाहित हो रही थी वह पहली बार पूरी इयत्ता के साथ वैदिक काल में मुखर हुई। संगीत का स्वरूप वैदिक काल में एक उदात्त ओज से ओत-प्रोत था। वैदिक कालीन कर्मकाण्डों एवं ऋचाओं को संगीत के रूप में प्रस्तुत किया गया। इसका अभिप्राय एक ओर प्राकृतिक जनित आपदाओं से रक्षा, ब्रह्मांड के अज्ञात नियमों के प्रति आस्था-समर्पण एवं मानव जीवन में धीरे-धीरे आ रही लयात्मकता-संगीतात्मकता एवं उल्लासभाव का प्रकटीकरण था। जीवन में स्थिरता के साथ जो एक अनुशासनजनित विश्वास पैदा किया वह मानवीय भावों के उस त्वरा को अभिव्यक्त करता है जो कविता एवं वैदिक ऋचाओं के रूप में आज भी बेजोड़ है। ऋग्वेद के अलग-अलग मंडलों में विभिन्न ऋषि-कुलों के द्वारा, भारतीय मनीषियों के द्वारा ब्रह्माण्ड के गूढ़ रहस्यों में पटाक्षेप हेतु अनुभूत सत्य एवं संवेदना के बाह्यीकरण की भाषा के रूप में संगीत ही उनका संबल बना।

1500 ई. पू. से 600 ई. पूर्व के कालखंड में रचित वैदिक साहित्य की विशेषता के रूप में संगीत के विभिन्न अवयवों छंदात्मकता, लयात्मकता, ध्वन्यात्मकता को अतिमहित किया जा सकता है। पूरा सामवेद तो जैसे भारतीय संगीत का उत्स ही माना जाता है। सामवेद उदग्र ऋचाओं को वैदिक कर्मकाण्डों के दौरान 'उदगाता' नामक पुरोहित गाते थे। वे कर्मकाण्ड के महत्वपूर्ण अंग थे। संगीत का प्रयोग एक ओर लयात्मकता के आधार पर अज्ञात शक्तियों को प्रसन्न करने के लिए किया जाता था। वही दूसरी ओर अपने गम्य प्रकृति के कारण श्रुति परम्परा के निर्वाह में भी सहायक सिद्ध हुआ। वस्तुतः भारत में संगीत एवं धर्म पूर्णतः एक दूसरे में अनुस्यूत रहे हैं।

सात स्वरों की पहचान प्रकृति में रचे बसे संगीत के आयाम को भारतीय मनीषियों ने न सिर्फ सबसे पहले किया बल्कि अपने जीवन के साथ सम्बद्ध कर मानव को देवत्व के करीब ला खड़ा किया। अप्सराओं, किन्नरों, गंधर्वों की परिकल्पना इसी आयाम को प्रस्तुत करता है।

वैदिक साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस समय व्यक्तिगत एवं सामूहिक गान दोनों की परम्परा विद्यमान थी जो प्रार्थना एवं बलि के लिए प्रयुक्त होती थी। सामवेद में सामगायन हेतु चार संगीत स्वरूप की चर्चा मिलती हैं- जो परिस्थिति एवं उद्देश्य आधारित थी। इसी समय कुछ वाद्य यंत्रों की भी चर्चाऐं मिलती हैं।

वैदिक साहित्य की अंतिम कड़ी के रूप में अथर्ववेद का संबंध झाड़-फूँक, जादू टोना, स्वास्थ्य लाभ से रहा है। और इन सारी प्रक्रियाओं में गीत-संगीत-वादन का गहरा रिश्ता रहा है। वैदिक कालखंड इस बात की साक्षी रहा है कि भारतीय मनीषियों ने प्रकृति एवं ब्रह्मांड के सूक्ष्म अध्ययन-

शोध छात्रा, वि0वि0 संगीत विभाग, ति0मा0 भागलपुर वि0वि0, भागलपुर

विश्लेषण कर उनमें निहित प्राण-जीवन को समझा एवं उसी लयात्मकता को आधार बनाया।

वैदिक कालीन संगीत के परिपक्वता का ही विस्तार पौराणिक काल (500 ई. पू.- 200 ई. पू.) में रचित रामायण एवं महाभारत में दृष्टिगत किया जा सकता है। इन पुराणों का स्वरूप श्लोकात्मक है, जिनका प्राण इसकी लघुता, स्पष्टता, लयात्मकता में निहित है।

इस समय संगीत के अन्य रूप 'मार्ग संगीत' का वर्णन मिलता है। जिसके रचनाकार ब्रह्मा हैं।

पौराणिक काल में अनेक वाद्ययंत्रों का वर्णन मिलता हैं जिन्हें चार श्रेणियों में विभाजित किया गया था। जिनमें-वीणा, वेणु, बंशी, शंख, दुदुंभी, भेरी, मृदंग, षणव, आदि हैं। वीण तुनुव, दुधुंमी, भूमिदुधुमी और तालाब आदि जो संगीत वाद्ययंत्रों की श्रेणियों को स्पष्ट करती है- स्वरसंगीत, झिल्लीकार वायु प्रयुक्त एवं तार वाले वाद्ययंत्र और संगीत के साथ वाद्ययंत्रों के इस्तेमाल में प्रयुक्त समायोजन, शारीरिक गतिविधियाँ, भंगिमाएँ एवं मनः दशा का भी स्पष्ट संकेत मिलता है।

वैदिक कालीन ऋचाओं में बसे संगीत में इस बात पर विशेष बल दिया जाता था कि सही उच्चारण, मात्रा, ध्वनि, स्वर (सूक्ष्म, लघु, दीर्घ, ह्स्व) हो। संगीत शिक्षा का ही एक प्रमुख अंग था जिसे अलग करके नहीं देखा जा सकता। संगीत एवं ऋचाओं के सही मंत्रोच्चार की दृष्टि से यह एक विज्ञान था, जिसे विभिन्न घटकों में विभाजित कर अध्ययन अभ्यास किया जाता था। इन्हें मुख्यतः छः भागों में विभाजित किया गया है:-

1. वर्ण 2. स्वर 3. मात्रा 4. बल 5. सम (पूरे उच्चारण में एक प्रकार का संतुलन) 6. संतुलन (शब्दों के बीच अवकाश)

उपरोक्त की बारिकियों पर अत्यधिक ध्यान किया जाता था और शुद्धता यहीं संरक्षित होती गई और इस कालखंड के कुछ प्रसिद्ध हस्ताक्षर के रूप में पाणिनि, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, कात्यायनी, नारदीय आदि हैं।

संगीत के एक महत्वपूर्ण अंग 'पाठ्य-संगीत' की संक्षिप्त परिचर्चा यहाँ प्रासंगिक है- भारतीय संगीत शास्त्र में पाठ्य के छः आयाम बताए गए हैं-

1. सप्रस्वर
2. ध्वनि उत्पत्ति हेतु तीन मुख्य स्थान
3. ध्वनि व्यवस्था हेतु चार वर्ण
4. छः काकु
5. छः अलंकार
6. छः अंग

इनका उद्देश्य मनोरंजनपरक न होकर अध्ययन एवं ज्ञानपरक रहा था।

निष्कर्षतः संगीत शब्द मनः पटल पर जो झंकृति एवं अनुगूंज उत्पन्न करती है अपनी सर्वव्यापकता के कारण शब्द बहुलता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि वर्तमान मानवीय संवेदना के क्षजन के इस युग में 'संगीत' ही वह अंतिम संबल है जो मानव को देवत्व के स्तर पर उत्तीर्ण कर विश्व समाज तु वसुधैव कुटुम्बकम् के लक्ष्य पर आरूढ़ करने में प्रकाश पूंज, उर्जा पूंज की भूमिका निर्वाह कर सकता है।

संदर्भ-ग्रन्थ

शर्मा वीणा डॉ. - भारतीय संगीत का इतिहास
वीर रामावतार- भारतीय संगीत का इतिहास
बावरा जोगिन्द्र सिंह- भारतीय संगीत का इतिहास

मिथिला का संगीत घराना

डॉ. पुष्पम नारायण

मिथिला क्षेत्र सीतामढ़ी, मधुबनी, शिवहर, सुपौल, अररिया, कटिहार, दरभंगा, समस्तीपुर, रोसड़ा, सहरसा एवं पूर्णिया आदि जगहों तक बसा हुआ हैं यह क्षेत्र नेपाल की सीमाओं से सटा हुआ है, तथा इसका कुछ भाग नेपाल में भी हैं मंडन मिश्र, जिन्होंने शंकराचार्य जी को पराजित किया था, वे इसी क्षेत्र के वासी थे। कविवर विद्यापति भी इसी क्षेत्र के थे। दृश्य कला में भी यह मिथिला, देश में अग्रगण्य हैं मधुबनी आर्ट के नाम से देश-विदेश में पहचान बनाने वाली कला इसी क्षेत्र की देन है। पद्मश्री यशोदा देवी और उनके समतुल्य अन्य कई कलाकार दृश्यकला में अपना स्थान बनाए हुए हैं। इस क्षेत्र में ऐसे तो सभी जाति के लोग रहते हैं, परंतु मैथिल ब्राह्मण की बहुलता है। संगीत के मानक ग्रंथ 'राग-सर्व-संग्रह' एवं 'राग-तरंगिणी' के रचयिता पंडित ''लोचन'' मैथिल ब्राह्मण एवं इसी क्षेत्र के थे।

मिथिलांचल में दरभंगा राज बहुत ही प्राचीन है। यहां पर कई राजाओं ने शासन किया। जैसे राजा माधवसिंह, विशेश्वर सिंह, शिव सिंह, लक्ष्मीश्वर सिंह, कामेश्वर सिंह इत्यादि। यहां के प्रत्येक राजा संगीत के बड़े शौकीन एवं जानकार थे। दरभंगा राज की अनेक छोटे-छोटे रियासतं यथा-मधुबनी, राजनगर, कुर्सेला, निर्मली इत्यादि जगहों पर थी। प्रत्येक राजा को संगीत प्रिय थी। अतः जहां-जहां राज्य रियासत थी, वहां-वहां मिथिला क्षेत्र के संगीतज्ञों को इन राजाओं ने बसाया। दरभंगा स्टेट के अतिरिक्त यहां के अन्य स्टेट के राजा-महाराजा भी संगीत प्रेमी एवं संगीत पोषक थे। मिथिलांचल में प्रचलित संगीत के घरानों का परिचय निम्न है :-

अमता (दरभंगा) घराना :-

अमता घराना ध्रुपद गायन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध है। अमता मिथिला का एक सुप्रसिद्ध गांव है। यहां के लगभग प्रत्येक आदमी संगीत साधक है। ये गांव मिथिला के ग्वालियर कहे जाते हैं। अमता घराना को मल्लिक घराना भी कहा जाता है। ये मल्लिक लोग दरभंगा में कहां से आये थे, इस बारे में अनेक मत प्रचलित हैं परिचय के क्रम में ज्ञात होता है कि ये मल्लिक खानदान गौड़ ब्राह्मण जाति के हैं। (जिस तरह मिथिला के ब्राह्मण मैथिल ब्राह्मण कहलाते हैं, उसी तरह गौड़ देश के ब्राह्मण गौड़ ब्राह्मण कहलाते हैं।) अमता घराना के विषय में प्रो. दास जी एक जगह लिखे हैं-

Ram Chaturji hails from one of the oldest musical families of the country which have nourished classical music for centuries. His ancestors pandit Radha Krishana and Kartaram came to Darbhanga from the court of Oudh in the last decade of the eighteenth century and did miracles through music.[1]

एक दूसरे मत के अनुसार दरभंगा के महाराज माधव सिंह ने नवाब सिराजुद्दौला के दरबार से राधाक. ण और कर्ताराम नामक दो संगीतज्ञों को लिए थे। कहा जाता है कि ये दोनों भाई मूलतः राजस्थान के थे, जो बाद में अवध के नवाब सिराजुद्दौला के दरबार में रहने लगे। इन दोनों भाई को राजपूत खां (महारंग) जो नियामत खां (सदारंग) के पुत्र थे, उनसे ध्रुपद की शिक्षा मिली थी। इन

विभागाध्यक्ष, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.विश्वविद्यालय, दरभंगा

दोनों भाई की ध्रुपद गायकी प्रसिद्ध थी। इनकी प्रसिद्धि मिथिला नरेश महाराजा माधव सिंह (1775 ई.-1807ई.) तक पहुंची। महाराजा, नबाब सिराजुद्दौला के निकटतम थे। इनके आग्रह पर नबाब ने इन्हें दरभंगा जाने की अनुमति दे दी। दरभंगा में महाराजा माधव सिंह ने इन दोनों भाइयों को दरबारी गायक के रूप में नियुक्त किया एवं इन्हें अमता गांव की 500 बीघे की जागीर दे दी। इनकी मृत्यु के बाद इनके वंशज अपनी जागीर में रहने लगे। जागीर के मालिक होने के कारण भी इस वंश के लोग व्यवहार में मल्लिक कहलाने लगे।[2]

कर्ताराम के पुत्र कन्हैया लाल हुए। कन्हैया लाल के पुत्र नेहाल एवं नेहाल के दो पुत्र राजाराम मल्लिक एवं राजितराम मल्लिक हुए। छितिपाल मल्लिक अमता घराने के गुरू तुल्य माने जाते हैं। इन्हें ध्रुपद, धमार गाने में प्रसिद्ध प्राप्त थी। छितिपाल मल्लिक ध्रुवपद के गोबरहार बानी गाते थे। ये ध्रुपद, धमार, छंद, प्रबंध, त्रिवट, तथा तेलाना आदि के जानकार थे। ये राग, तान, ताल आदि से दक्ष थे। महाराज मिथिलेश लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर एवं इनके पुज्य पिता महाराजा कुमार गुणेश्वर सिंह (किशोर बाबू) इनके गायन से प्रसन्न होकर इन्हें अपने दरबार में प्रतिष्ठित किया। ये राजित राम शर्मा मल्लिक के गुरू थे। छितिपाल मल्लिक अमता घराने के एक मजबूत स्तंभ माने जाते हैं। इनके वंशजों में नरहरि पाठक, जगत नारायण पाठक, प्रभाकर पाठक इत्यादि है। राजित राम शर्मा इस घराने के सुविख्यात गायक हुए। ये बाल्यकाल से ही महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह तथा महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह बहादुर के दरबार में थे। इन्होंने गायन के साथ-साथ रचना भी की है। ये संगीत एवं साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान थे। इसके साथ-साथ एक सिद्ध भक्त भी थे। इनके प्रमुख शिष्यों में पं. सुखदेव पाठक एवं पं. रामचतुर मल्लिक जी हैं। राजित राम शर्मा मल्लिक को चार पुत्र हुए, जिनमें सबसे ज्यादा यश एवं प्रसिद्धि पं. रामचतुर मल्लिकजी को मिली। इन्हें पांच वर्ष की उम्र में ही ध्रुपद गायन की शिक्षा अपने पिता से प्राप्त हुई। उसके बाद इनको छितिपाल मल्लिक से भी गायन की शिक्षा प्राप्त हुई। बाद में इन्हें पं. रामेश्वर पाठक से भी संगीत की शिक्षा मिली। पं. रामेश्वर पाठक प्रतिष्ठित सितार बादक थे।[3]

रामचतुर मल्लिक 15 वर्ष की आयु से ही मंच पर गाना शुरू कर दिये थे। महाराजा कामेश्वर सिंह के ये दरबारी गायक थे। ये ध्रुवपद के खंडारबानी गाते थे। दरभंगा महाराज के यहां भारत के उच्च कोटि के गायक अपना गायन प्रस्तुत करने आते रहते थे। पं. रामचतुर मल्लिक राज दरबार में गायक थे, अतः इन्हें सभी गायकों के गायन सुनने का सुअवसर मिला, जिससे इनकी गायकी में और भी निखार आया। दरभंगा राज के ये प्रसिद्ध दरबारी गायक थे, इसलिए इन्हें ग्वालियर, बीकानेर, जोधपुर, राजस्थान, इत्यादि राज से भी गाने का निमंत्रण मिला और ये इन राज के महाराजाओं के दरबार में जाकर अपना गायन प्रस्तुत किए। जहां इन्हें पूर्ण मान सम्मान मिला। अमता घराना ध्रुपद, धमार के गान के लिए प्रसिद्ध है। लेकिन ये लोग ख्याल भी पूर्ण निपुणता के साथ गाते हैं। रामचतुर मल्लिक ध्रुपद, धमार एवं ख्याल के साथ-साथ विद्यापति संगीत के कारण भी बहुत यशस्वी हुए। ये विद्यापति के गीत को राग में निबद्ध कर दरबार मं सुनाया करते थे, जिस कारण इनकी गायकी और भी चमक उठी।[4]

जमींदारी समाप्त होने के बाद ये अपना गायन जनता के बीच प्रस्तुत करने लगे, जिससे इनके संगीत का उत्तरोत्तर विकास ही हुआ। ये ध्रुपद धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा के अलावा विद्यापति संगीत भी गाते थे। ये विद्यापति संगीत एवं गीत-गोविन्द के पदों के साथ मिथिला के लोकगीतों का मिश्रण कर इस तरह जनता के सामने प्रस्तुत करते कि जनता मंत्रमुग्ध हो उठती। ये अमता घराने के सिरमौर माने जाते हैं। पं. रामचतुर मल्लिक जी को ढेरों ही मान सम्मान एवं उपाधियों की प्राप्ति हुई। बिहार राज्य संगीत अकादमी ने 1953 ई. में इन्हें फेलोशिप प्रदान किया। 1970 ई. में भारत सरकार ने इन्हें "पद्मश्री" की उपाधि से विभूषित किया। इसी साल इन्हें "संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार" भी मिला। "सुर-विलास" एवं "ध्रुपद

सम्राट'' की भी उपाधि मिली। मध्य प्रदेश सरकार ने इन्हें 1981 ई. में तानसेन पुरस्कार से सम्मानित किया एवं इंदिरा कला विश्वविद्यालय ने इन्हें 1983 ई. में डाक्टरेट की मानद उपाधि से विभूषित किया। इनका व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था। सांवला रंग, ऊंचा कद, उन्नत ललाट, घंघराले बाल, बलिष्ट शरीर, चूड़ीदार पैजामा और शेरवानी ये हमेशा पहना करते थे। इन्होंने अपने पारिवारिक सदस्य अभय नारायण मल्लिक को भी संगीत की शिक्षा दी। जर्मनी के पीटर पेनके ने पं. रामचतुर मल्लिक जी का 500 से अधिक बंदिशों की रिकार्डिंग कर रखी है।[5]

पं. विष्णुदेव पाठक भी इस घराने के श्रेष्ठ गायक एवं वादक कलाकार हुए। इनका जन्म लगभग 1897 ई में अमता में हुआ। ध्रुपद गायन एवं पखावज वादन में इन्हें प्रसिद्धि प्राप्त थी। ये अमता घराने की यश और ख्याति को और भी समृद्ध किये। इन्होंने छितिपाल मल्लिक से ध्रुपद एवं धमार गायन की शिक्षा ली थी। इन्होंने शुरू में गायन पर ध्यान दिया, एवं बाद में वाद्य के प्रति आकर्षित हो गए। इन्होंने पखावज वादन की शिक्षा देवकीनन्दन पाठक से ग्रहण की। इनकी मृत्यु 16 मार्च 1972 ई. को हुई। इनके शिष्य पं. सियाराम तिवारी, रामाशीष पाठक जी आदि है। रामाशीष पाठक अमता घराने के एक उच्च कोटि के वादक हुए।[6]

पं. सियाराम तिवारी का जन्म अमता गांव में 10 मार्च 1921 ई. को हुआ। अमता गांव इनका ननिहाल था। इनका ददिहाल ईकरपुर (गया, बिहार) का पहाड़ी अंचल है, जो इनके पूर्वज फिरंगी बाबा की जन्मभूमि है। पं. राम चतुर मल्लिक के बाद अमता घराने के ये सबसे लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध गायक हुए। इनको अपने पिता पं. बलदेव तिवारी से गायन की प्रारंभिक शिक्षा मिली। इनके पिता फतुआ स्टेट में ख्याल एवं ठुमरी के प्रसिद्ध कलाकार थे। इनके दादा अवध तिवारी सितार वादक थे। पं. सियाराम तिवारी आठ वर्षों तक ननिहाल में रहकर अपने नाना पं. विष्णुदेव पाठक से संगीत की शिक्षा ग्रहण की। पं. विष्णुदेव पाठक ने इन्हें पहले ध्रुपद, धमार के ताल का ज्ञान कराए, फिर ताल के ग्रह, मात्रा, द्रुत लघु, प्लुत, काकु इत्यादि सिखलाए। उसके बाद ध्रुपद, धमार गायन की शिक्षा दी। उसके बाद ये 11 वर्ष तक अपने पिता से ख्याल, ठुमरी एवं टप्पा गायकी की शिक्षा हासिल की। ये 1940 ई. से ही पिता के साथ दिनाजपुर, मैमनसिंह, मुक्तागाछा, आदि दरबारों में गाने लगे थे। सर्वप्रथम इन्होंने 1944 ई. में गया कांफ्रेंस में अकेले प्रस्तुति दी, जहां पपर पं. ओंकारनाथ ठाकुर, उस्ताद फैयाज खां, अहमद जान थिरकवा, पर्वत सिंह इत्यादि दिग्गज कलाकारों ने इनकी गायकी की प्रशंसा की थी। इसके बाद इन्होंने देश के विभिन्न स्थानों में अपना गायन प्रस्तुति देकर बेहद प्रसिद्ध हुए। इन्होंने देश के विभिन्न स्थानों के अलावा ब्रिटेन, स्विट्जरलैंड, हॉलैंड, फ्रांस, इटली, अमरीका, पश्चिमी जर्मनी नेपाल आदि देशों में भी अपने गायन कार्यक्रमों की प्रस्तुति दी।

सन् 1955 ई. में राष्ट्रपति का स्वर्ण-पदक, 1971 ई. में पद्मश्री, 'संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार' 'संगीत महामहोपाध्याय' की मानद डिग्री, राज्य सरकार की ओर से 'बिहार रत्न' आदि है। ये छः साल तक बिहार विधान परिषद के सदस्य भी रहे। इनकी मृत्यु 23 अगस्त 1998 ई. को हुई।[7] इस घराने में गायक के अलावा एक से एक बीनकार, ईसराज वादक और पखाबज वादक हुए हैं।

इस घराने के ध्रुपद गायकों में कर्ताराम, राधाकृष्ण, रामनेवाज, गजराज मल्लिक, कन्हैयालाल, नेहाल मल्लिक, खुशी मल्लिक, भरोसा मल्लिक, भीम मल्लिक, लोचन मल्लिक, बेनी मल्लिक, राजाराम मल्लिक, छितिपाल मल्लिक, राजितराम मल्लिक, रामेश्वर पाठक, रामचतुर मल्लिक, महावीर मल्लिक, झुमकराम, रामलाल, विदुर मल्लिक, यदुवीर मल्लिक, पं. सियाराम तिवारी आदि है। इसके अतिरिक्त वर्तमान में प्रो. अभय नारायण मल्लिक, रामकुमार मल्लिक, रघुवीर मल्लिक, शंकर मल्लिक, प्रेमकुमार मल्लिक, संजय मल्लिक, इत्यादि गायक आज भी इस घराने की गायकी को आगे बढ़ा रहे हैं। तबला एवं पखावज के क्षेत्र में इस घराने में रामाशीष पाठक, श्री राम उपाध्याय, सतभुवन पाठक, रमेश मल्लिक, हीरालाल पाठक, पृथ्वीराज कुमार झा, रंजीत कुमार पाठक इत्यादि हैं।

पं. विदुर मल्लिक जी भी इस घराने के प्रतिष्ठित एवं गुणी कलाकार थे। ये पं. सुखदेव मल्लिक के पुत्र थे। पं. सियाराम तिवारी, पं. रामचतुर मल्लिक एवं पं. विदुर मल्लिक इस घराने के मूर्धन्य कलाकार थे। पं. रामचतुर जी की गायकी जहां अत्यंत सुरीली लोचदार, गमकयुक्त थे, वहीं पं. सियाराम जी की गायकी खुली आवाज में ओजपूर्ण, पाटदार, सुरीली एवं कल्पना युक्त थी और विदुरजी की गायकी में मीड़, गमक के प्रकारों की बहुलता थी। विशेषकर जब ये अपने गायन में मीड़ का सूत की तरह प्रयोग करते तो, श्रोता मंत्रमुग्ध हो उठती। पं. विदुरजी के शिष्यों मं राम स्वारथ ठाकुर, प्रेम कुमार मल्लिक इत्यादि हैं।

प्रो. अभय नारायण मल्लिक को संगीत की शिक्षा पं. रामचतुर जी से मिली। रामचतुर मल्लिक जी के साथ ये कुछ दिनों तक युगलबंदी में गाते थे, बाद में ये खैरागढ़ विश्वविद्यालय में संगीत व्याख्याता के पद पर प्रतिष्ठित हुए।ये अवकाश प्राप्त कर चुके हैं। प्रेमकुमार मल्लिक एवं राम कुमार मल्लिक, पं. विदुर मल्लिक के पुत्र हैं। इनको संगीत की शिक्षा अपने पिता से मिली। प्रेम कुमार मल्लिक इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संगीत शिक्षक हैं। वर्तमान में ये सभी गायक अमता घराने को अपनी गायकी से और भी समृद्ध कर रहे हैं।

अमता घराने की विशेषताएं :-

1. इस घराने के गायक घराने की मौलिकता को बरकरार रखते हुए सौन्दर्य दृष्टि में प्रयोग को महत्व देते हैं।
2. इस घराने में गमक एवं मीड़ का विविध प्रयोग अपनी गायकी में संगीतकार करते हैं।
3. नोम-तोम की आलापचारी का अनोखा ढंग।
4. प्रबंध गाने में लयकारियों की विविधता इस घराने की निजी विशेषता है।
5. गायकी में सम-विषम, अतीत-अनाघात (अनागत) की तरकीबों का खूबसूरती में प्रयोग गायक करते हैं।
6. प्रस्तुति में चैनदारी।

रागात्मक, तालात्मक, रसात्मक गायन इस घराने के गायक करते हैं। इस घराने में प्रसिद्ध गायक के अलावे प्रसिद्ध पखावज एवं तबला वादक हुए हैं। जिसके कारण इस घराने के संगीतकार गायन के अलावा तबला एवं पखावज की भी शिक्षा देते हैं। इस घराने के संगीतज्ञ, ध्रुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा के साथ-साथ, विद्यापति संगीत एवं इसके अतिरिक्त मिथिलांचल के लोक संगीत में भी दक्ष होते हैं।

मधुबनी घराना

मिथिला के संगीत घरानों में मधुबनी का मिश्र घराना ख्याल गायकी के लिए प्रसिद्ध है। इस घराने के गायक कत्थक जाति के हैं।[8] खरवान मिश्र इस घराने के प्रवर्तक माने जाते हैं। मनसा मिश्र एवं डीही मिश्र बनारस के रहनेवाले थे। पूर्व में इनके वंशज रामायण एवं गीता को राग-रागिनी में बांधकर लय स्वर के माध्यम से कथा के रूप में कहते थे। इस कारण ये लोग 'कथैत' कहलाते थे। कथा बांचना ही इन लोगों का मुख्य पेशा था। बाद में ये लोग कथा बांचना छोड़कर संगीत के क्षेत्र में आ गए। इनके ही वंशज खखान मिश्र थे। डीही मिश्र एवं मनसा मिश्र तो बनारस के तरफ ही रहे थे। खखान मिश्र दरभंगा महाराज के यहां आये थे। अतः इनसे ही इस घराने की शुरूआत मानी जाती है।[9]

दरभंगा महाराज के ही परिवार के अन्य लोग मधुबनी, रांटी, राजनगर इत्यादि जगहों पर जाकर अपना राज्य स्थापित किये, जो ड्योढ़ी के नाम से विख्यात हुआ। मधुबनी ड्योढ़ी के राजा महाराज कीर्ति सिंह थे। इन्होंने दरभंगा दरबार से खखान मिश्र को लाकर मधुबनी ड्योढ़ी में राज्य गायक के पद पर प्रतिष्ठित किया। राज्य की ओर से जमीन जायदाद एवं रहने के लिए आवास दिया गया। खखान मिश्र राज्य दरबार में रहकर संगीत साधना में लग गए। इस घराने का प्रधान अंग ख्याल गायकी है। गायक, वादक एवं नर्तक तीनों श्रेणी के कलाकार इस घराने में पाये जाते हैं। खरवान मिश्र के बाद ही यहां पर पन्ना मिश्र, कौली मिश्र एवं वंशीधर मिश्र राजस्थान से आए थे, जिनका संबंध बनारस रामनगर से भी था। खरवान मिश्र तत्कालीन प्रतिष्ठित गायक थे। ये संगीत प्रतियोगिता में भाग

होते थे और अधिकतर विजय प्राप्त करते थे। इनके पुत्र का नाम लालू मिश्र था।

मुरे मिश्र एवं शिवलाल मिश्र भी उस समय के जाने माने संगीतज्ञ भाई थे। लखन मिश्र के ये समकालीन थे। ये दोनों मधुबनी राज इस्टेट के अलावा मिथिला के अन्य स्थानों में भी अपना गायन कार्यक्रम देते थे। ये ध्रुपद, धमार और ख्याल के अलावे लोक संगीत भी सहजता से गाते थे। तत्कालीन समय के ये प्रतिष्ठित एवं नामी कलाकार थे।[10]

लालू मिश्र ख्याल के साथ-साथ ध्रुपद के भी प्रतिष्ठित कलाकार थे। इनको संगीत की शिक्षा अपने पिता खजान मिश्र से प्राप्त हुई। ये बाबा विश्वनाथ के बहुत बड़े भक्त थे। वृन्दावन, जालंधर, अमृतसर एवं गांधी में ये अक्सर अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करने जाया करते थे। साथ ही इस्टेट के राजा चंद्रधारी सिंह (सरिसो, इस्टेट, मधुबनी) के दरबार में विशिष्ट गायक के रूप में दरबार की शोभा बढ़ाते रहे। हीरा मिश्र एवं सिंगुर मिश्र दोनों भाई प्रसिद्ध गायक हुए। सिंगुर मिश्र की शादी बड़हिया घराने के चंडी मिश्र की पुत्री से हुई। इसलिए बड़हिया घराने का भी प्रभाव इस घराने की गायकी पर पड़ा।

हीरा मिश्र को तीन पुत्र हुए-भगत मिश्र, कमलेश्वरी मिश्र एवं परमेश्वरी मिश्र। इन तीनों भाई में भगत मिश्र एक उच्च कोटि के गायक हुए। शेष दोनों भाई कमलेश्वरी मिश्र एवं परमेश्वरी मिश्र संगीत के जानकार थे, लेकिन ये लोग स्टेट का कार्य देखने में लग गए। भगत मिश्र चन्द्रधारी बाबू के दरबारी गायक थे। दरबारी गायक होने के साथ-साथ ये देश के अन्य स्थानों पर जाकर अपना गायन प्रस्तुत करते थे। भगत मिश्र के पुत्र आद्या मिश्र मधुबनी घराना के सबसे विशिष्ट गायक हुए। ख्याल के उत्तम गायक होते हुए भी इन्हें ध्रुपद की बंदिशें भी मालूम थी।[11] इनका जन्म 1902 ई. में हुआ। कहा जाता है कि ये भी बाबू चन्द्रधारी सिंह के दरबारी गायक थे। इनके गायन शैली में प्राचीन विष्णु शब्दु की झलक थी। ये दरबार के साथ-साथ बनारस, कलकत्ता, पंजाब एवं वृन्दावन में स्वामी हरिदास जी के कुटी पर भी अपना गायन कार्यक्रम दिए। मधुबनी घराना के ये महत्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठित कलाकार माने जाते हैं। इनके तीन पुत्र रामजी मिश्र, लक्ष्मण मिश्र एवं लखन मिश्र हैं। ये लोग भी अच्छे गायक हुए।

परमेश्वरी मिश्र के पुत्र अनन्त मिश्र सिर्फ गायक थे। वादन अंग के कलाकार होने के कारण ये "बनारस मिश्र घराना" के कलाकार थे। इनके एक पुत्र सीताराम मिश्र, दुर्गा मिश्र, रामन मिश्र एवं पूरन मिश्र है। इनके अतिरिक्त बाबू चन्द्रधारी सिंह के दरबार में नोखेलाल एवं इमिरती लाल मिश्र नामक एक जोड़ी गायक एवं वादक कलाकार थे। राज दरबार में गायन के साथ तबले की आवश्यकता हुई तो बाबू चन्द्रधारी सिंह ने बनारस से इमिरती लाल मिश्र को बुलाकर इन्हें अपने दरबार में रखा। इमिरती लाल मधुबनी के विख्यात तबला वादक थे। इनके तीन पुत्र क्रमशः हरिशंकर, मणिशंकर एवं मधुशंकर है। हरिशंकर जी के छोटे पुत्र विजय शंकर भी तबला वादक हैं। इसके अतिरिक्त वंशीधर मिश्र, वंशीधर मिश्र के नाती कृष्णदेव मिश्र, कृष्णानन्द मिश्र के पुत्र उदय शंकर मिश्र एवं रविशंकर मिश्र भी इसी घराने के गायक हैं। वर्तमान में रामजी मिश्र, उदयशंकर मिश्र, रविशंकर मिश्र, लखन मिश्र इत्यादि इस घराने के गायकी को आगे बढ़ा रहे हैं।

मधुबनी घराने की विशेषताएं :-

1. इस घराने का प्रधान अंग ख्याल गायकी है।
2. ख्याल गायकी के साथ-साथ इस घराने के कलाकार ध्रुपद, धमार, विद्यापति एवं मैथिली लोक गीत भी गाते हैं।
3. गायक, वादक एवं नर्तक तीनों श्रेणी के कलाकार इस घराने में पाये जाते हैं।
4. इस घराने के अधिकांश गायक की गायकी सरस ढंग की है।

पनिचोभ घराना

पनिचोभ दरभंगा जिला का एक प्रतिष्ठित एवं विख्यात गांव है। यह गांव संगीत का बहुत बड़ा केन्द्र एवं ख्याल गायकों के लिए मशहूर है। इस गांव के एक से एक धुरंधर एवं कलामर्मज्ञ गायक हुए। इसी गांव में अवध झा नामक एक प्रतिष्ठित संगीतज्ञ थे। ये

मैथिल ब्राह्मण एवं उच्च कोटि के कलाकार थे। इनसे ही इस घराने का सूत्रपात हुआ। इनका जन्म समय अनुमानतः 1840 ई. से लकर 1850 ई. के बीच का है।[13] इनके पुत्र रामचन्द्र झा दरभंगा महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह के समकालीन थे। इनका जन्म संभवतः 1885 ई. में हुआ।[14] इनको संगीत की प्रारंभिक शिक्षा अपने पिता अवध झा से ही प्राप्त हुई। अपने पिता से इन्हें ध्रुपद गायन की शिक्षा मिली थी, लेकिन इनकी विशेष रूचि ख्याल गायन में थी, इसलिए इन्होंने गायक आजिम बक्स खां से ख्याल गायन की शिक्षा ली। गायक आजिम बक्स खां दरभंगा राजदरबार में राजगायक थे। रामचन्द्र झा ने मौला बक्स खा से दरभंगा राजदरबार में राजगायक थे। रामचन्द्र झा ने मौला बक्स खां से भी संगीत की शिक्षा कुछ दिनों तक ग्रहण की थी। मौला बक्स खां, आजिम बक्सखां के छोटे भाई थे एवं ये भी दरभंगा दरबार में थे।

कुछ दिनों तक रामचन्द्र झा बनेली के राजा कृत्यानन्द सिंह एवं कलानन्द सिंह जी के दरबार में रहे थे। राजदरबार में रहने के दौरान इन्हें पूर्ण ख्याति प्राप्त हुई। उसके बाद ये माधव शमशेर जंग बहादुर राणा के दरबार में रहने लगे। माधव शमशेर राणा मोरंग, नेपाल के महाराज थे। राणा संगीत प्रिय व्यक्ति थे। इन्होंने रामचन्द्र झा को बीस बीघा जमीन उपहार स्वरूप दिया। रामचन्द्र झा ध्रुपद, ख्याल के अलावा मैथिली लोकगीत बहुत उत्कृट ढंग से गाते थे। ये दरबार के अलावा मिथिला के अन्य जगहों पर भी अपना कार्यक्रम देते थे। दरभंगा राज दरबार से इन्हें बार-बार बुलाया गया, लेकिन इन्होंने राज गायक होना स्वीका नहीं किया। कहा जाता है कि ये हर हमेशा संगीत के स्वरेां में डूबे रहते थे।[15]

कभी भी किसी भी समय ये स्वरों का अभ्यास करने लगते थे। इनको तीन पुत्र हुए दिनेश्वर झा, राजकुमार झा एवं मंगनू झा। इनके शिष्य रमाकान्त झा, नचारी चौधरी, मदन चौधरी (तबला वादक) दुर्गानन्द झा, रमाकान्त झा, ब्रजमोहन चौधरी इत्यादि हुए।

दिनेश्वर झा को संगीत की प्रारंभिक शिक्षा अपने पिता स्व. रामचन्द्र झा से मिली। इनका जन्म लगभग 1924 ई. में हुआ। ध्रुपद गायन में इनकी विशेष रूचि नहीं थी। अतः इन्होंने ख्याल एवं ठुमरी की शिक्षा "अब्दुल गनी खां" से प्राप्त की। अब्दुल गनी खां दरभंगा राज के राज गायक उस्ताद आजिम बक्स खां के पुत्र थे। दिनेश्वर झा माधव शमशेर जंग बहादुर राणा (मोरंग नेपाल) के यहां बारह वर्षों तक राज गायक के रूप में रहे। वे नेपाल नरेश महेन्द्र वीर विक्रम शाहदेव के राज्यभिषेक के अवसर पर भी इन्होंने अपना गायन कार्यक्रम प्रस्तुत किया था। इस अवसर पर भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन भी वहां उपस्थित थे। इनके साथ-साथ अनेक देश के राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री वहां उपस्थित थे। सभी इनके गायन से बहुत प्रभावित हुए।[16]

ये दरभंगा के अनेक स्थानों एवं मंदिरों जैसे पल्लीपुर, लाला पद्मनाम प्रसाद अग्रवाल के मंदिर, शिवनन्दन प्रसाद अग्रवाल के मंदिर पर झूलन इत्यादि के अवसर पर गायन कार्यक्रम देते थे। सरगम एवं तान ये विशिष्ट ढंग से करते थे। जिससे श्रोता रोमांचित हो उठती थी। इनमें सभी स्तर के श्रोताओं के अनुकूल गायन प्रस्तुत करने की अपूर्व क्षमता थी। एक आकस्मिक घटना के बाद करीब 1965 ई. से गायन के प्रति उदासीन हो गए। बाद में ये हाई स्कूल पनिचोभ में संगीत शिक्षक के पद पर रहकर संगीत सेवा करने लगे। बाहर जाकर कार्यक्रम देना एकदम बंद कर दिये।

दुर्गादत्त झा पनिचोभ घराना के प्रतिष्ठित गायक हुए। ये रामचन्द्र झा के छोटे भाई एवं शिष्य थे। इनको संगीत शास्त्र का अपूर्व ज्ञान था। इन्होंने संगीत विषय के पुस्तक भी लिखी। बनेली में संगीत शिक्षक के पद पर प्रतिष्ठित हुए। इसी घराने के नचारी चौधरी एक साधारण गायक थे, लेकिन हारमोनियम पर नचारी चौधरी ही संगत करते थे। बनारस एवं अनेक स्थानों पर हारमोनियम वादन के कारण नचारी चौधरी काफी यश प्राप्त किए। मदन चौधरी भी एक प्रतिष्ठित संगीतज्ञ थे। लेकिन ये तबलावादक के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

तबला के अतिरिक्त ये कठतरंग भी बजाते थे। जटाधर झा भी पनिचोभ घराना के एक उत्कृट गायक थे। ये रामचन्द्र झा के ही शिष्य थे। राजा

विशेश्वर सिंह के दरबार में अंतिम कड़ी के रूप में जटाधर झा रहे। इनकी ठुमरी गायन प्रसिद्ध है।[17] कहा जाता है कि राजा विशेश्वर सिंह के पास इनके गाये हुए अनेक ठुमरियों का रिकॉर्ड था। ये भी कहा जाता है कि जटाधर झा भारत के प्रसिद्ध गायक बड़े गुलाम अली खां के साथ कुछ दिनों तक रहे थे। ओंकार नाथ ठाकुर के साथ भी ये थोड़े दिनों तक रहे थे। जटाधर झा की आवाज बहुत मधुर थी। ब्रजमोहन चौधरी भी इस घराना के कुशल गायक थे। जीवन के पहले भाग में ये अपनी संगीत प्रतिभा के लोगों का मन मोहते रहे, बाद में ये हायाघाट हथौड़ी कोठी के बाबू साहब श्री तुलापति नारायण सिंह के यहां रहने लगे एवं इनकी पत्नी प्रतिभा सिंह को पनिचोभ घराना की गायकी की शिक्षा देने लगे।[18]

पनिचोभ घराने की विशेषताएं :-

1. इस घराने के कलाकार ध्रुपद भी गाते हैं, लेकिन ख्याल, ठुमरी एवं मैथिली लोक गीत गायन में दक्ष होते हैं।
2. इस घराने के कलाकारों को संगीत के शास्त्रीय पक्ष ज्ञान अधिक रहता है।
3. आवाज के मधुरता इस घराने के कलाकारों में पायी जाती है।
4. इस घराने में गायक के साथ-साथ हारमोनियम वादन एवं तबला वादन के भी श्रेष्ठ कलाकार हुए।

पंचगछिया घराना

पंचगछिया घराने का स्थान मिथिला के संगीत घराने में महत्वपूर्ण है। पंचगछिया सहरसा जिलान्तर्गत एक विख्यात गांव है। सामन्ती प्रथा का प्रतीक यह गांव बिहार राज्य का गौरव हैं पंचगछिया स्टेट के राजा राय बहादुर लक्ष्मी नारायण सिंह संगीत के बहुत बड़े विद्वान थे। गायन, वादन, एवं नृत्य संगीत के इन तीनों विद्याओं पर इनका समान अधिकार था। संगीत, साहित्य एवं कला क्षेत्र में इनका नाम बिहार में हमेशा गौरव एवं श्रद्धा के साथ लिया जाता रहेगा। इनके पिता का नाम रायबहादुर प्रियवत नारायण सिंह था। लक्ष्मी नारायण सिंह जी के भाई रायबहादुर योगेन्द्र नारायण जी भी संगीत प्रिय व्यक्ति थे। पंच लक्ष्मी नारायण सिंह जी ने संगीत की शिक्षा [illegible] विश्वनाथ पाठक से ग्रहण की थी। जयपुर, बनारस, दिल्ली, आगरा, पटियाला एवं ग्वालियर घराने के कलाकार इनके दरबार में अपना गायन कार्यक्रम देने आया करते थे। इनके अतिरिक्त देश के अन्य कलाकार भी इनके दरबार में आया करते थे। संगीत चर्चा बराबर ही इनके दरबार में हुआ करती थी। बाबू लक्ष्मीश्वर नारायण सिंह को अंग्रेजी हुकूमत ने "राय बहादुर" की उपाधि दी थी। ये मृदंग एवं हारमोनियम के सिद्धहस्त कलाकार थे। ये एक गुणी व्यक्ति थे। इनके दरबार में अनेक संगीत कलाकार एवं संगीत साधक राज्याश्रित होकर संगीत की सेवा में लगे रहते थे। राय साहब स्वयं जीवन भर संगीत प्रतिभा के निर्माण में लगे रहे। रायबहादुर पंचगछिया घराने के प्रवर्तक है।[19] इनके बारे में प्रो. सी.एन. दास का कहना है-

"The letter was immensely helpful in guiding Rai Bahadur Babu Laxmi Narain Singh of Pachgachhia (Saharsa district) in music. Rai Bahadur was a great connoisseur of music and rate patron in promoting the growth of music and musicians in this state"[20]

रायबहादुर लक्ष्मी नारायण सिंह के दरबार में सुबह एवं शाम महफिल लगती थी जिसमें देश के गुणी कलाकार अपन गायन प्रस्तुत करते थे। बाहरी संगीतज्ञों का बाबू लक्ष्मी नारायण ससम्मान विदाई करते थे। इनके अनेक शिष्य हुए लेकिन सबसे प्रमुख शिष्य मांगन खबास माने जाते हैं। मांगन के बाद ही रघु झा, गायक अनमोला एवं रामेश्वर झा इत्यादि का नाम आता है। राय साहब के बाद पंचगछिया घराने की गायकी इनके शिष्यों द्वारा ही आगे बढ़ी।[21]

राय साहब के सबसे प्रधान शिष्य मांगन थे। इनके पिता का शंकर कामति एवं दादा का नाम सर्वजीत कामति था। इनका जन्म स्थान पंचगछिया गांव ही है। मिथिला में धानुक नामक जाति बहुत पुरानी जाति है। इनका मुख्य पेशा है राजे-महाराजाओं के यहां नौकरी एवं चाकरी करना। मिथिला में इस

जाति को खबास कहा जाता है। मांगन के पूर्वजों ने अपने नाम के आगे "कामति" लगाया, कामति के बाद इनलोगों ने नाम के आगे "लाल" लगाया एवं वर्तमान में ये लोग लाल के बाद "महतो" उपनाम से चर्चित है। खानदानी पेशा के अनुरूप ये ड्योढ़ी में खबासी करते थे। इनका बचपन खबासी एवं भैंस की चरवाही में ही बीता। इनके दादा एवं पिता भी ड्योढ़ी में खबासी करते थे। ये लोग मुख्य रूप से ब्रह्मनारायण सिंह के दरबार में नौकर थे। ब्रह्मनारायण सिंह, बाबू लक्ष्मी नारायण सिंह के ही परिवार के सदस्य थे। परिवार में सदस्यों की संख्या बढ़ने से एक ही ड्योढ़ी से कई ड्योढ़ियां बन गई थी। मांगन पूर्ण रूप से अशिक्षित थे। अपने पिता के साथ ये भी ब्रह्म नारायण सिंह के दरबार में जाया करते थे। माती और सन्ता नामक दो नटुआ था, जिसे दरबार की ओर से वेतन दिया जाता था। इससे ही शुरू में मांगन ने नाच एवं गाना कुछ दिनों तक सीखा।[22] इस दरबार में एक थियेटर पार्टी भी आती थी। मांगन ने थियेटर में रहकर भी कुछ दिनों तक गायन एवं नृत्य की शिक्षा ली। थियेटर मालिक उमाकान्त को तभी आभास हो गया था कि आगे चलकर मांगन एक अद्वितीय गायक बनेंगे। बाद में मांगन राय बहादुर लक्ष्मी नारायण सिंह के ड्योढ़ी में खबासी करने लगे। इनके दरबार में सुबह-शाम देश के चोटी के कलाकारों द्वारा संगीत कार्यक्रम होता था। मांगन इसको छुप-छुपकर सुनते थे एवं इसको अपने गले में उतारते जाते थे। कहा जाता है कि मांगन एक दिन दरबार का बर्तन मल रहे थे और वे किसी राग के बंदिश को रागानुसार ही एकदम सही ढंग से ताल एवं लय में गाते जा रहे थे। राय बहादुर ने इन्हें सुना तो चकित रह गए, मांगन की अद्‌भुत प्रतिभा देखकर उन्होंने मांगन को बुलाकर पूछा-संगीत सीखोगे? मांगन ने कहा-हां। बस बाबू लक्ष्मी नारायण सिंह इन्हें संगीत की शिक्षा देना शुरू कर दिये। कहा जाता है कि राय बहादुर मांगन के गले में गर्मागर्म हलवा कपड़े में बांधकर लपेट देते थे तब स्वर सधवाते थे। मांगन सुबह-शाम 5-5 घंटा रियाज करते थे। उत्कृष्ट गुरू, रियाज एवं प्राकृतिक देन के आधार पर मांगन कुछ ही दिनों में संगीत के प्रकाण्ड पंडित हो गए। राय बहादुर ने इन्हें ठुमरी एवं ख्याल गायन की शिक्षा दी थी, देश के गुणी कलाकार दरबार में अपना गायन प्रस्तुत करते थे। अगर किसी का गायन इन्हें आकृष्ट करता तो महफिल के बाद उनसे जाकर सीखते। राय बाबू के प्रिय होने के कारण इन्हें कोई मना नहीं करते। इससे इनका गायन और भी निखरा। ख्याल एवं ठुमरी गायन में इन्हें महारत हासिल हो गई। इनकी गले की कशिश, गजब की पेश बन्दियां, जादुई आवाज और कल्पना के लहजे के अंदाज ने इन्हें ठुमरी गायन में और शोहरत दिलाई। शास्त्रीय गायन के अतिरिक्त ये विद्यापति गीत, कजरी, चैती, निर्गुण, होली आदि जैसे लोकगीतों को अपने सुरों में सींचकर और भी विकसित किए। विद्यापति गीत को ठुमरी नुमा बनाकर एक अनोखे ढंग से गाते थे। इनकी ठुमरी गायन में पूरब अंग की शैली झलकती थी। ये मृदंग वादक के संगीत में ध्रुपद एवं धमार भी गाते थे। इनके बारे में गजेन्द्र नारायण सिंह का कहना था "पंचगछिया (सहरसा) के बाबू साहब लक्ष्मी नारायण सिंह के खबास (निजी नौकर) मांगनी गंधर्व पुत्र थे। इनके आवाज की मिठास एवं लोच नैसर्गिक देन थी। कलकत्ता के एक संगीत सम्मेलन में इनकी ठुमरी सुनकर संगीत मार्तण्ड पं. ओंकारनाथ ठाकुर भाव विभोर हो गए थे। इनके प्रसिद्धि को सुनकर नेपाल महाराजाधिराजा इनको आमंत्रित किए थे और बेशकीमती तोहफा देकर सम्मानित किए थे। कहा जाता है कि ये गाने में अद्वितीय थे।[23]

1930 ई. के लगभग लखनऊ में एक संगीत सम्मेलन था। जिसमें बड़े-बड़े गायक आमंत्रित थे। इनमें मांगन का गायन सुनकर फैयाज खां साहब ने इनकी बहुत प्रशंसा की थी। इसके बाद मांगन को देश के विभिन्न भागों से गायन का आमंत्रण मिलने लगा। इनकी प्रसिद्धि एवं शोहरत से राय साहब बहुत प्रसन्न हुए। मांगन जैसे शिष्य पर उन्हें नाज था। कुछ दिनों के बाद मांगन पंचगछिया दरबार छोड़कर दरभंगा दरबार में आ गए। इनकी गायकी सुनकर राजा विशेश्वर सिंह ने इनको अपना दरबारी गायक बना लिया। कहा जाता है कि इस घटना से राय बहादुर बहुत मर्माहत हुए थे एवं जीवनपर्यन्त

तक मांगन का मुख नहीं देखे। इसके बाद ही लक्ष्मी नारायण जी ने रघु झा को संगीत की शिक्षा देना शुरू किया।

दरभंगा दरबार में मांगन के आने से यहां के संगीत क्षेत्र में एक नई लहर चल पड़ी। इन्होंने दरभंगा दरबार की ओर से "ऑल इण्डिया म्युजिक कान्फ्रेन्स में भाग लिया जहां इनके गायन से सभी बेहद प्रभावित हुए। राजा के आदेशानुसार ये दरबार के अलावा कहीं संगीत कार्यक्रम नहीं दे सकते थे, लेकिन ये शिष्यों के आग्रह पर राजा से छुपकर नगर के कार्यक्रमों में भाग लेते थे। बंदिशें एवं अर्थाभाव के कारण ये दरभंगा दरबार में खिन्न रहने लगे। बाबू योगेन्द्र नारायण सिंह के पौत्र पन्ना जी के विवाह अवसर पर पुनः पंचगछिया आ गये और बाबू ब्रह्म नारायण सिंह के निवास स्थान में रहकर शिष्यों को संगीत की शिक्षा देने लगे। चम्पानगर के राजा श्यामानन्द सिंह, पूर्णियां के राजा कृत्यानन्द सिंह, आलम नगर के संगीत कान्फ्रेन्स में भी इन्होंने गायन प्रस्तुत किया था। जहां पर इनके गाये लोकगीत "बाबू दरोगा जी कोने कसूर सँ धयले पियबामोर" को सुनकर अख्तरी बाई बोली थी जिन्दा रहने दोगे या नहीं।[24] अख्तरी बाई बनारस की प्रसिद्ध ठुमरी गायिका थी। कहा जाता है कि ये रायगढ़ के राजा के यहां भी कुछ दिनों तक रहे थे। मांगन ठुमरी गान के साथ-साथ कवित्त भी गाते थे। सर्वप्रथम ये विलम्बित प्रस्तुत करते, फिर मध्यलय, ठुमरी, एवं विद्यापति के पद गाकर गायन समाप्त करते थे। ठुमरी गायन में तिरोभाव आविर्भाव ये खूब दिखाते थे।[25] पं. रामचुर मल्लिक जी ने इनके बारे में कहा था-मांगन एक सरस, सरल एवं मधु कंठ प्राप्त गायक थे। "श्री नरेश" का इनके बारे में कहना था- मांगन शास्त्रीय राग-रागिनी की अदाकारी भी ठुमरीनुमा मिजाज से करते थे। इसी कारण उनके शास्त्रीय गायन में शास्त्र की रूक्षता अथवा नीरसता नहीं रहती थी, बल्कि राग के मर्म तथा बंदिश के भाव का रस ओत-प्रोत रहता था।[26]

नेपाल नरेश महेन्द्र वीर विक्रम शाह देव के राज्याभिषेक के अवसर पर इनके गायन को सुनकर राष्ट्रगायक पं. ओंकार नाथ ठाकुर जी ने कहा था - "तुम्हारे गाने से आह निकलती है और मेरे गाने से वाह।"[27] नेपाल के अतिरिक्त इन्होंने दिल्ली, राजस्थान इत्यादि जगहों पर भी गायन कार्यक्रमों की प्रस्तुति दी। इनकी मृत्यु कार्तिक पूर्णिमा (1944 ई.) के दिन हुई। इनके पुत्र का नाम लड्डूलाल था। मांगन के अनेक शिष्यों में बटुक झा, तिरो झा, शिवनंदन झा (परशमी), बालगोविन्द झा, युगेश्वर झा, माधव झा, रामजी दास, धर्मदेव सिंह, राधो झा, पुरन पोद्दार (बनगांव), सुन्दर पौद्दार, गणेश कान्त ठाकुर, उपेन्द्र प्रसाद यादव, दुर्गादत्त झा, लड्डू लाल (पुत्र) कमला कान्त झा, लक्ष्मी मंडल, बलराम झा, परशुराम झा इत्यादि प्रमुख हुए।[28]

रायबहादुर जी के दूसरे शिष्य रघु झा भी एक उच्च कोटि के कलाकार थे। ये पहले रामलीला में गाते थे। रामलीला में गाये गीतों से प्रभावित होकर ही लक्ष्मी बाबू ने इन्हें संगीत की शिक्षा देनी शुरू की थी। रघु झा को राय बहादुर से सिर्फ पांच वर्षों तक ही संगीत की शिक्षा मिली, क्योंकि उसके बाद राय बहादुर जी की मृत्यु हो गयी थी। लेकिन इन्हीं पांच वर्षों में पंचगछिया घराने की गायकी इनके गले में पूर्ण रूप से उतर चुकी थी। इनकी आवाज वजनदार एवं मिठास से भरी हुई थी। कहा जाता है कि एक बार रामबाबू ने गलत स्वर लगने के कारण खराम से इनकी पिटाई की थी।[29] पंचगछिया घराने की प्रतिष्ठा को इन्होंने और भी बढ़ाया। ये आकाशवाणी पटना के कलाकार हुए। पटना एवं दरभंगा आकाशवाणी से इनका टेप अभी भी कभी-कभी बजाया जाता है। भारत के विभिन्न स्थानों पर इन्होंने अपना गायन कार्यक्रम प्रस्तुत कर पंचगछिया घराने का नाम रौशन किया।

रामेश्वर झा भी पंचगछिया घराने के श्रेष्ठ गायक थे। ये पूर्णिया जिलान्तर्गत शिलानाथ रूपौली गांव के थे। इनके पिता शिलानाथ झा के नाम पर ही इस गांव का नाम पड़ा शिलानाथ रूपौली। ये स्वयं एक स्टेट के मालिक थे। इनके पुत्र श्री इन्द्रनारायण झा भी एक कुशल गायक हुए। इनके शिष्यों में श्री नन्द किशोर साह, श्री कौशल कुमार दूबे, चूनापूर स्टेट के राजा श्री रामनारायण राय की पुत्री कल्याणी चौधरी इत्यादि है।[30]

बाल गोविन्द झा मांगन के परम प्रिय शिष्य थे। ये मधुबनी जिलान्तर्गत बड़ा गांव के रहने वाले

थे। ख्याल अंग के ये गायक थे। जीवन के प्रारंभिक अवस्था में ये नाटक मंडली में थे। नाटक मंडली में ये गायक के साथ-साथ अभिनेता के रूप में काम करते थे। बाद में ये मांगन के शिष्य बने एवं इनसे ख्याल अंग की गायकी सीखखी। आकाशवाणी पटना से भी इनका गायन प्रसारित होने लगा। नाटक मंडली छोड़ने के बाद ये स्वतंत्र रूप से अपना गायन कार्यक्रम प्रस्तुत करने लगे। शास्त्रीय गायन के साथ-साथ ये मिथिला के लोक संगीत भी बेहद भावपूर्ण ढंग से गाते थे। साथ ही विद्यापति संगीत भी प्रभावपूर्ण ढंग से गाते थे। ये राग को शास्त्रीय आधार पर सही स्वरूप में प्रस्तुत करते थे। लोक रंजकता के स्थान पर शास्त्रीय ढंग को ज्यादा महत्व देते थे। इनका एक महत्वपूर्ण काम विद्यापति के कुछ गीतों का स्वरलिपि तैयार करना है जिसे इन्होंने लगभग 1967 ई. में "चेतना समिति" को सौंप दिया था।[31] बटुक झा भी मांगन के प्रिय शिष्य थे। वे अपने घराना के अनुरूप ही अपना गायन प्रस्तुत करते थे एवं वे इस घराने को समृद्ध करने मे संतत् प्रयत्नशील रहे।[32]

उपेन्द्र प्रसाद यादव भी पंचगछिया घराने के एक कुशल गायक हैं। वे मिथिला विभूति मांगन के ही शिष्य हैं। इनका जन्म 1927 ई. में सहरसा जिला के सौर बाजार अंचल के रामपुर गांव में हुआ। शुरू में इन्होंने पहलाम (सहरसा) के अधिक लाल पौद्दार से संगीत शिक्षा प्राप्त की। कहा जाता है कि श्री अधिक लाल पोद्दार न राय बहादुर लक्ष्मीनारायण सिंह जी से ही संगीत शिक्षा प्राप्त की थी। 1941 ई. से उपेन्द्र प्रसाद यादव, मांगन जी से संगीत शिक्षा ग्रहण करने लगे। इनके साथ ये अनेक स्थानों पर संगीत कार्यक्रम में गये। जैसे-बनैली स्टेट, बमामा स्टेट इत्यादि। सन् 1949 ई. से ही ये आकाशवाणी पटना से शास्त्रीय संगीत का कार्यक्रम देने लगे। बाद में आकाशवाणी दरभंगा के कलाकार हो गए। इनका संगीत कार्यक्रम दूरदर्शन पटना से भी प्रसारित हो चुका है। इन्हें ख्याल एवं ठुमरी गायन में महारत हासिल है। इन्होंने "बिहार संगीत नाटक अकादमी पटना" के कार्यकारिणी सदस्य के रूप में कई वर्षो तक काम किया। इन्होंने अपने गुरू के नाम से "मांगन संगीत विद्यालय पसराहा खगड़िया" नामक संगीत विद्यालय 1956 ई. में खोला, जो अभी संचालित हो रहा है। दूसरा विद्यालय सहरसा में खोले हैं जिनका नाम है- "राधाकृष्ण मांगन संगीत विद्यालय सहरसा"। इन्होंने अनेक जगहों पर बड़े-बड़े कलाकारों के समक्ष अपने गायन से प्रशंसा एवं सम्मान प्राप्त की है। ये राजा विशेश्वर सिंह के समक्ष भी अपना गायन कार्यक्रम दिए थे। इन्होंने 1955 ई. में राजेन्द्र प्रसाद यादव की पौत्री के विवाह के शुभ अवसर पर भी अपने गायन की प्रस्तुति दी थी। इनके गायन से भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद बहुत खुश हुए थे। इनके पारिवारिक सदस्य भी संगीत से जुड़े हुए हैं। इनके भाई श्री योगन्द्र नारायण यादव राष्ट्रीय स्तर के तबला वादक हैं। श्री उपेन्द्र प्रसाद के पुत्र अमरेन्द्र प्रसाद यादव भी संगीत प्रेमी हैं एवं संगीत क्षेत्र में है। पुत्र के अलावा इनकी पुत्री मालती, कृष्णा, विभा एवं भतीजा श्री रविरंजन प्रसाद यादव भी संगीत क्षेत्र में हैं उपेन्द्र प्रसाद यादव आज भी पंचगछिया घराने की गायकी को अपने उत्कृष्ट गायन से समृद्ध कर रहे हैं। इनके शिष्यों में विलक्षण यादव, रीता कुमारी, देवकीनंदन सिंह, श्री रामनारायण यादव इत्यादि हैं।[33] इसके अतिरिक्त इस घराने के अन्य कलाकारों में आदित्यनाथ झा, सत्यनारायण झा, अधिक लाल पौद्दार आदि के नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आदित्य नाथ झा की शिष्या डॉ. लावण्यकीर्ति सिंह अपनी गायकी एवं संगीत विद्वता से इस घराना का नाम आज भी रौशन कर रही है।

पंचगछिया घराने की विशेषताएं :-

1. इस घराने की गायकी में ग्वालियर घराने की गायकी का प्रभाव झलकता है।
2. तान, बोलतान, बहलाव, सरगम एवं आकार युक्त गायकी।
3. तीनों सप्तक में समान अधिकार
4. ख्याल, ठुमरी में पूरब अंग का गुण, भजन गायन में सिद्धि प्राप्त।
5. विद्यापति गीत के स्वर लय निर्धारक (मांगन)
6. मिथिला में प्रचलित प्राचीन गीत प्रस्तुति में अद्वितीय

7. मुख्यताल तिलवाड़ा, पंजाबी, त्रिताल एवं तीनताल
8. द्रुतलय में तराना, त्रिवट एवं चतुरंग गायन।

इस प्रकार निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि प्रारंभ से ही मिथिला में शास्त्रीय संगीत की धार प्रवाहित होती रही है, साथ ही लोकसंगीत भी अपना स्थान बनाए हुए हैं। संपूर्ण मिथिला में दोनों ही तरह के लोग होते हैं। समाज के उच्च कोटि के लोग काव्य के मर्म को जानते हैं तो मध्य या निम्न कोटि के लोग प्रायः गीतों का रसास्वादन प्रारंभ से लेकर अद्य पर्यन्त करते आ रहे हैं, इनमें राजा सलहेस, लोरिक, दुलरादयाल, नैका बनिजारा, दीनाभद्री आदि प्रमुख हैं। यह संगीत स्रोत आज भी वैसा ही है जैसा प्राचीन समय में था।

मैथिल जीवन का अभिन्न अंग है- संगीत प्रियता। मिथिला का जनजीवन संगीतमय है। ऐसा कोई अवसर नहीं जबकि संगीत के मधुर लय में मिथिला का जनजीवन मुखरित नहीं होता है। रमानाथ झा मिथिला के जनजीवन में संगीत को उस रूप में पाते हैं, जिसके बिना जीवन की कल्पना करना संभव नहीं है। मिथिला के स्थापत्य एवं चित्रकला के साथ संगीत का भी विकास हुआ।

यहां पर हरेक उल्लासमय अवसरों के लिए मधुर गीतों की नियोजना हुयी। पर्व-त्योहारों एवं आचार-विचार के संपादनार्थ उपयुक्त गीत गाये जाते रहे हैं जैसे बच्चे के जन्म के अवसर पर सोहर, मुण्डन के अवसर पर मुंडन गीत, यज्ञापवीत के प्रत्येक विधि के अवसर पर गीत, विवाह के अवसर पर कुमार गीत, परिछन गीत, ओठंगर गीत, कन्यादान गीत, कोहवर गीत, महुअक गीत, कन्या के द्विरागमन के समय समदाउन गाने की परंपरा आज भी चली आ रही है। मैथिल ललनाओं के कंठ से निकला समदाउन इतना प्रबल आवेगमय होता है, जिसे सुनकर शायद ही ऐसा कोई हो जिसकी आंखें न भर आती हों।

मिथिला के पर्व-त्योहारों के लिए भी अलग-अलग गीत प्रचलित है। प्रत्येक मांगलिक अवसर पर देवी-देवताओं के गीत गाकर सामयिक गीत गाये जाते हैं। मधुश्रावणी मिथिला की नवविवाहितों का प्रमुख त्योहार है। चतुर्दशी के दिन भक्तगण नचारी गाकर विभोर हो जाते है। मिथिला के गीत मानव के प्रत्येक क्रिया और व्यवहार के साथ इस प्रकार सम्पृक्त हो गया है कि इसके बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। गीतों को सुरक्षित रखने का दायित्व इस क्षेत्र की महिलाओं पर अधिक रहा है। मिथिला की अनपढ़ महिलाओं की स्मृति इतनी सशक्त थी कि असंख्य गीतों को अपने कंठ में बसाये रखती थी। यह क्रिया पारंपरिक ढंग से निर्बाध गति से चली आ रही है।

इसके अतिरिक्त चक्की पीसने के समय महिलाएं 'लगनी' गाती है। मेघ को बुलाने के लिए कुमारी कन्याएं समाठ में मेढक बांधकर पानी में कूदते हुए 'जट-जटिन' गाती है। पावस के समय बारहमासा, छौमासा और चौमासा गीतों का प्रचलन है। इस ऋतु में मलार गाने की भी परंपरा है। इस विहर गीत को विशिष्ट शैली में गाया जाता है। किसी प्रिय व्यक्ति के चले जाने पर वातावरण में उदासी व्याप्त हो जाती है। इस भावना की अभिव्यक्ति उदासी गीत में होती है। समधी को भोजन कराते समय अपने अभाव वर्णन करते हुए अनुनय विनय के रूप में जो गीत गाया जाता है उसे 'उचिती' कहते हैं। 'उचिति' के पश्चात् परिहासपूर्ण गालियों की बौछार को 'डहकन' गीत कहा जाता है। दामाद को भोजन कराते समय जो गीत गाया जाता है, उसे 'योग' कहते हैं। मिथिला में 'तिरहुत' और 'बटगमनी' गीत अधिक प्रचलित है। 'तिरहुत' में नायिका के सौन्दर्य और विरह दशा का वर्णन होता है। 'बटगमनी' को महिलायें राह चलते हुए गाती है। कुछ निम्न जाति के लोग में लोरिकायन गीत, सलहेस गीत, बिहुला गीत, कोशी गीत, कमला गीत, गंगा गीत आदि लोकप्रिय हैं।

कुछ गीत जातिगत भी होते हैं। गोदना गुदवाने के समय सूई की पीड़ा को भुलाने के लिए गोदना गोदनेवाली जाति विशेष का नाम 'खेदपाड़नी है। उपनयन, विवाह के सुअवसरों पर 'बखो-बखानी' लोग ईनाम के लिए गीत गाते हैं जिसे बखो बखानी गीत कहा जाता है। वैसे ही बच्चों के जन्म के बाद पमरिया लोग नाचते हुए सोहर तथा पमारा गाते हैं। होली के अवसर पर मिथिला का फागुन गीत बहुत लोकप्रिय है। रास एवं सामा-चकेवा का गीत भी मिथिला में प्रचलित है।

इस तरह मिथिला में प्राचीन काल से संगीत की समृद्ध एवं सशक्त परंपरा रही है। इस सुदीर्घ परंपरा की महता को मात्र कुछ पृठों में समेटना एक असंभव सा लगता है। फिर भी इसके क्रमिक विकास का संकेत मात्र दिग्दर्शन प्रस्तुत अध्याय के माध्यम से कराने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Das Prof. C.L. The Indian Nation, Sunday, 20 June, 1976
2. मिश्र शंभुनाथ, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की घराना परंपरा, पृ. 181
3. मिश्र शंभुनाथ, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की घराना परंपरा, पृ. 182
4. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिलाक संगीत परंपरा, पृ. 135
5. मिश्र शंभुनाथ, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की घराना परंपरा, पृ. 183
6. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिलाक संगीत परंपरा, पृ. 137-138
7. मिश्र शंभुनाथ, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की घराना परंपरा, पृ. 185
8. सिंह गजेन्द्र नारायण, बिहार की संगीत परंपरा, पृ. 80
9. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिलाक संगीत परंपरा, पृ. 140
10. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिलाक संगीत परंपरा, पृ. 141
11. सिंह गजेन्द्र नारायण, बिहार की संगीत परंपरा, पृ. 80
12. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिलाक संगीत परंपरा, पृ. 143-144
13. सिंह गजेन्द्र नारायण, विहार की संगीत परंपरा, पृ. 79
14. सिंह गजेन्द्र नारायण, बिहार की संगीत परंपरा, पृ. 79
15. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिलाक संगीत परंपरा, पृ. 119
16. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिलाक संगीत परंपरा, पृ. 121
17. सिंह गजेन्द्र नारायण, बिहार की संगीत परंपरा, पृ. 80
18. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिलाक संगीत परंपरा, पृ. 123-124
19. पंचगछिया गांव निवासी श्री सच्चिदानंद झा से वार्तालाप के आधार पर (अवकाश प्राप्त सहायक शिक्षक प्रियव्रत उच्च विद्यालय पंचगछिया, सहरसा)
20. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिलाक संगीत परंपरा, पृ. 146
21. श्री सच्चिदानंद झा से प्राप्त जानकारी के आधार पर
22. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिला विभूति मांगन, पृ. 2
23. सिंह गजेन्द्र नारायण, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, पृ. 32
24. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिलाक संगीत परंपरा, पृ. 141
25. उपेन्द्र प्रसाद यादव (मांगन के शिष्य) से प्राप्त जानकारी के आधार पर
26. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिला विभूति मांगन, पृ. 38
27. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिलाक संगीत परंपरा, पृ. 147
28. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिला विभूति मांगन, पृ. 8
29. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिला विभूति मांगन, पृ. 19
30. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिलाक संगीत परंपरा, पृ. 150-151
31. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिलाक संगीत परंपरा, पृ. 148-150 के आधार पर।
32. झा डॉ. चण्डेश्वर, मिथिलाक संगीत परंपरा, पृ. 150
33. उपेन्द्र प्रसाद यादव (पंचगछिया घगना) से प्राप्त जानकारी के आधार पर।

विविध भावों के कुशल गायक 'मुहम्मद रफी'

नवीन कुमार राठौर

'मुहम्मद रफी' एक ऐसा नाम जो आम जनमानस के दिलों पर राज करता है, जिसके आवाज और गायकी की दुनिया दीवानी है। उसकी आवाज में हमें भगवान अल्लाह, रब, गॉड की आवाज का आभास होता है। ऐसी मधुर और सदाबहार आवाज जब गीत, गज़ल, भजन, कव्वाली जैसी विधाओं को अपना साथ दे-ती हैं तो वह अमर बन जाती हैं। रफी साहब ने गायकी का एक ऐसा स्तर कायम किया है कि वर्तमान समय में हर कोई नया गायक उसी को ध्यान में रखकर अपना रियाज़ करता है। चित्रपट संगीत में तो रफी साहब ऐसा काम कर गये हैं जिसे हम एक संस्था या घराने का नाम दे सकते हैं और इस संस्था से संगीत की चाह रखन वाले बहुत कुछ सीख सकते हैं।

हर तरह की स्वर रचना गाने में सक्षम रफी

पार्श्व गायक के रूप में हिन्दी फिल्म जगत पर चार दशकों तक छाये रहने वाले अविस्मरणीय और प्रतिमा सम्पन्न कलाकार के रूप में मुहम्मद रफी अपने में ही एक लीजैंड बन गये थे। तत्कालीन सभी गुणी संगीतकारों ने मुहम्मद रफी की चमत्कारिक आवाज़ को समृद्ध करने के साथ-2 उसका फिल्मों में भरपूर उपयोग भी किया। उनकी दृष्टि में रफी हर तरह के गीत गाते के लिए सदैव उपयुक्त थे। विश्वास था कि कोई ऐसा गीत नहीं हो सकता था जिसे रफी न गा सकते हों। गीत गज़ल, भजननात, कव्वाली, दोहे चौपाई, सुगम-दुरूह, हास्य-करूण मिलन-बिरह, शास्त्रीय-उपशास्त्रीय आदि हर रंग - भंगिमा और हर दृष्टि के विविध प्रकार के गीतों से उन्होंने संगीत भंडार के भरा और स्वरगत सौन्दर्य की एक अतुलनीय सृष्टि का सृजन किया। उनके गले में सोज़ और लोच का अदभुत मिश्रण था। थोड़े समय के लिए वे मनुष्य के मत को दिन-दुनिया से विमुख कर शब्द, स्वर और सौन्दर्य की सुन्दर त्रिवेणी में तैराकर तृप्त कर देते थे। वे आवाज़ के द्वारा अभिनय करते थे। आवाज़ को दबाना, उकसाना, ललचाना, लचकाना, और लहराना कोई रफी से सीखें।"

मुहम्मद रफी ने हर प्रकार के भाव के गीत गाये। उनके इन्ही भावों का संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार है।

करूण रस में रफी

करूण रस की अभिव्यक्ति करने में रफी के आदर्श सहगल ही लगते हैं लेकिन सहगल की आवाज करूण रस में ढल गई थी। उनकी यह खासियत थी। रफी के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। उनकी आवाज़ से अपने आप करूण रस रिसना संभव था। अपनी आवाज में रफी ने करूण रस लाने की कोशिश की और अपने एक अलग अन्दाज का सृजन किया। 'प्यार की जीत' फिल्म के " इस दिल के टुकड़े हजार हुए" 'सेहरा' फिल्म के " तकदीर का फसाना" 'सन ऑफ इन्डिया' के "जिन्दगी आज मुझे" ' नीलकमल' के "बाबुल की दुआयें" ये सारे गाने रफी के अपने अन्दाज़ के उदाहरण हैं। रफी ने करूण रस की अभिव्यक्ति एक और नये अन्दाज में करने का साहस दिखया। आवाज़ को तीसरे सप्तक तक चढ़ाकर उन्होंने और गायकों के विपरीत ढंग से करूण गीत गाकर एक अपना रास्ता अखियार कर लिया। मिसाल के तौर पर 'दीदार' फिल्म में " मेरी कहानी भूलने वाले" और 'हॉ' में

शोध छात्र, संगीत विभाग, एच.पी.विश्वविद्यालय, शिमला (हिमाचल प्रदेश)

"चंदा का दिल टूट गदा" गानों का उल्लेख किया जा सकता है। रफी द्वारा गाये गए करूण गीतों के खास अन्दाज की झलक " मैं जिन्दगी में हरदम" फिल्म 'बरसात' "मैंने चांद और सितारों की तमन्ना" फिल्म 'चन्द्रकांत' "याद न जाये" फिल्म ' दिल एक मन्दिर' साक्षी न कोई मन्जिल" फिल्म 'दिल एक मन्दिर' " साथी न कोई मंजिल फिल्म ' बम्बई का बाबू " बो जब याद आए"

रफी का शास्त्रीय स्वरूप

" वैसे तो मुहम्मद रफी ने जिस गीत को भी अपनी आवाज़ दी, वह लोकप्रिय हुआ, पन्तु कुछ गीत बहुत प्रशंसित हुए और शास्त्रीयता के आधार पर अपना अलग स्थान बनाने में भी सफल हुआ।

यहां पर फिल्म " बैजू बावरा' के गीत " दुनिया के रखवाले" का जिक्र करना समाचीन होगा। यह गीत मुहम्मद रफी के जीवन का सर्वश्रेष्ठ गीत सिद्ध हुआ। इस गीत की शास्त्रीय मान्यता भले ही प्राप्त न हो क्योंकि शास्त्रीय तालो में यह निबंद्ध नहीं है, परन्तु राग तो विशुद्ध शास्त्रीय है। दरबारी की गंभीरता बनाए हुए, उसके कोमलत्तम भावों का सुन्दर प्रयोग इस गीत में रफी ने किया, जो उनकी शास्त्रीयता का घोतक है। फिल्म 'केहिनूर' में मुहम्मद रफी ने " मधुबन में राधिका नाचे रे" पूर्ण शास्त्रीय शैली में गाकर अपने शास्त्रीय ज्ञान व अभ्यास का परिचय दिया। इस गीत की रचना राग हमीर में की ग-ई है। जिसमें लयकारी, नृत्य के बोलों, तराना व तबला तरंग का सुन्दर प्रयोग किया गया है।" [2]

"फिल्म स्वर्ण सुन्दरी' में " कुहू-कुहू बोले कोदलिदा" गीत मे लता मंगेशकर के साथ राग सो-हनी, बहार, जैनपुरी व दमन का प्रयोग सुंदर ढंग से किया है। बसंत का वर्णन सोहने में और वर्षा का

वर्णन बहार में मतमोहकर ढंग से किया है। फिल्म 'कल्पना' में "तू है मेरा प्रेम देवता" मन्नाई के साथ गया अुआ शास्त्रीय शैली का मुहम्मद रफी ने मोहक ढंग से प्रस्तुतिकरण किया है,जो राग ललित पर आ-धारित है। फिल्म।

(1) योगेश यादव, फिल्म संगीत के नवरत्न, पृ. 121-122

(2) पं. श्यामदास मिश्रा, संगीत, मुहम्मद रफी अंक जन. फरवरी, 1991, पृ. 16-17

(3) मैं सुहागन हु' के शास्त्रीय गीत " गोरी तोरे नैन-नैनवा काजर बिन कोर" जिसे रफी ने आशा भोंसले के साथ गया, राग देस पर अधारित है। इस गीत में राग देस बिल्कुल शुद्धवस्दा में है। फिल्म 'सांझ और सवेरा' में " अजहूँ न आए वालमा, सावन बीता जाए" अत्यन्त ही लोकप्रिय हुआ था, जिसे मुहम्मद रफी ने सुमन कल्याणपुर के साथ गया था। इस गीत को राग सिंधु भैरवी में गया है जो आसावरी थाट का राग है। इस गीत में खुलकर खटका, मुर्की व कण का प्रयोग बेहतरीन ढंग से किया है। फिल्म बैजू बावर' में रफी का गीत "मन तड़पत हरि दर्शन को आज" आज भी उतना ही लोकप्रिय है। इस गीत को राग माल कौश में निबद्ध किया गया है। इस गीत में तार-सप्तक के 'सा' से मन्द्र सप्तक के निषाद का मीडंयुक्त प्रयोग बड़ी खूबसूती से रफ़ी साहब ने किया है। " मुहम्मद रफी ने अनेक गीत शास्त्रीय शैली में गाए हैं, जो मर्मस्पर्शी हैं। कई गीत ऐसे हैं जो न ही किसी राग की शुद्धवस्था में हैं, न शास्त्रीय तालों में निबद्ध हैं फिर भी तनके गाते की शैली शास्त्रीयता लिए हुए है।

तुफानी और नटखट गीत

"तुफानी और नटखट गीत गाने में रफी माहिर थे। इस क्षेत्र में उनकी किशोर कुमार के साथ जबरदस्त होड़ होना स्वाभाविक था। तूफानी गीतों की शुरूआत उन्होंने फिल्म 'जुगनू' से की। इस फिल्म में "वह पअनी याद दिलाने को" यह कालेज युवाओं का गाना गाते समय रफी का स्वर काफी खुला हुआ प्रतीत होता है। फिल्म फेयर अवार्ड समारोह में भी रफी गाने खुली आवाज़ में हँसते खेलते करते थे। नौशाद की दास्तान' में सुरैया के साथ रफी ने जो "तररी-तररी" और "हुप्दी" जैसे गीत गाये हैं वे काफी लोकप्रिय सिद्ध हुए। "लाल-लाल गाल" फिल्म 'मिस्टर एक्स' और 8 काली टोपी लाल रूमाल' दिल देके देखो', 'तुमसा नहीं देखा', दिल तेरा दीवाना आदि फिल्मों में रफी के तुफानी गीत हैं जिनकी काफी चर्चा थी। "सर जो तेरा चकराये" यह चंदी

मालिश वाला गीत और 'एप्रिल फूल', 'सिंगापुर' जैसे फिल्मों के गाने यहाँ- वहाँ सुनाई देते थे। 'जंगली का' या ऽऽऽ हू ऽऽऽ'' अथवा 'प्रोफेसर' का ''सूकू-सूकू'' भूल पाना क्या संभव है?''

भक्तिरस में रफ़ी

''अगर हम रफ़ी साहब के भक्तिरस में डूबे भजनों की बात करें तो हमें विश्वास नहीं होगा कि ये भजन किसी मुस्लिम समुदाय से जुड़े व्यक्ति ने गाये हैं। उन्होंने भजनों के ऐसे अन्दाज़ से गाया है कि हिन्दू मुसलमान के बीच का अन्तर ही समाप्त कर दिया।

रफ़ी ने ऐसे भक्तिपूर्ण गीत गाये हैं कि सुनने वाला नास्तिक हो तब भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। बैजू बावरा' के दो गीत 'मन तड़पत हरि दर्शन '' तथा'' ओ दुनिया के रखवाले ''सुनकर भक्तों की आंखों में आँसू आ जाते हैं।''

''इससे भी अधिक असरदार भक्ति भाव अन्य फिल्मों में पाया जाता है। सन् 1954 की ' अमर फिल्म में रफ़ी ने ''इन्साफ का मंदिर है ये भगवान का घर है'' दो भागों में गाकर एक मिसाल कायम कर दी। वित्रगुप्त ने रफ़ी को 'तुलसीदास' में भजनों की माला बहाल कर दी। ''रहूँ कैसे में तुमको निहारे बिना'' ''कहाँ दिये हो राजा राम', ''मुझे अपनी शरण में ले लो राम'' जैसे भक्तिगीत क्या कोई भूला पायेगा? सन् 1955 में रफी ने ' शिवभक्त' के भजन अपने खास शैली में गाकर श्रोताओं की प्रशंसा प्राप्त की। क्या राम, क्या शिव, क्या अल्लाह, ईश्वर को किसी भी नाम से पुकारे। लगता है रफ़ी का भावपूर्ण स्वर उस अंतरंग शक्ति तक जरूर पहुँचता होगा। इसके अलावा रफ़ी इस्लामी भजन भी अच्छी खासी मात्रा में गा चुके हैं।''[2]

बच्चों के गीत

मुहम्मद रफी ने न केवल हर वर्ग, कौम अैर मजहब बल्कि हर आयु वर्ग- बच्चों के लिए भी गीत गाये हैं। एक समय था जब '' चुन-चुन करती आई चिड़िया'' और अब दिल्ली दूर नहीं''जैसे गीत रोजाना रेडियो पर बजते थे। उन दिनों एक अन्य हिट गीत '' नन्हे मुन्ने बच्चे'' था, जिसे रफ़ी ने आशा के साथ 'बूट पॉलिश' में गाया था। रफ़ी ने बच्चों के लिए फिल्म 'ब्रह्मचारी' में खुबसुरत लोरी ''मैं गाउँ तुम सो जाओ'' गाई थी। यह हिंदी फिल्म संगीत की संभवतः सबसे बेहतर लोरी है।

रफ़ी ने 40 के दशक में बच्चों के लिए केवल एक गीत ''तेरा खिलौना टूटा बालक' गाकर लोकप्रियता बटोर ली थी। बच्चों के लिए गाये उनके अन्य गीतों में फिल्म' बेटी बेटी' में आज कल में ढल गया'', 'राम और श्याम' में ''आई हैं बहारें'', 'दू की आवाज़' में आशा भोसले के साथ'' हम भी अगर बच्चे होते'', 'एक फूल दो माली' में '' ओ नन्हे से फरिश्ते'', ब्रह्मचारी' में चक्के में चक्का'', असली नकली' में ''गोरी जरा हंस दे तु'' 'एक नाटी एक ब्रह्मचारी' में ''चिराग किसके घर का'' ' याराना' में ''विशन चाचा'' आदि हैं। बच्चों को सीख देने वाला एक और गीत' जागृती' में है '' हम लाये हैं तूफान से''। फिल्म 'धूल का फूल के गीत '' तू हिंदू बनेगा ना मुसलमान बनेगा'' में कितना महत्वपूर्ण सन्देश है। हालांकि मुहम्मद रफी के अलावा अन्य गायकों ने भी बच्चों के लिए गीत गाये हैं लेकिन ऐसे गीतों की सबसे लम्बी फेहरिस्त रफ़ी के नाम ही है।''

अधिकांश फिल्म गायक सीमाओं में बंधे रहे है। दर्दनाक गीत गाये तो वही, कव्वाली में जमे तो और शैली में नहीं, शास्त्रीय शैली में गाया तो उसी में रम गये या चंचल गीत अथवा तेज लयात्मक गीत में नाम कमाया, परन्तु मुहम्मद रफ़ी हर तरह की शैली को बड़ी सहजता सरलता से गाया और सुनने वालों को कहीं से भी किसी शैली की कमी का अनुभव नहीं होने दिया।

संदर्भ सूची :-

1. धनराज शामसुखा संगीत मुहम्मद रफी अंक जनकारी फरवरी, 199,पृ. 25-26
2. फिल्म' पारसमणि' और ''क्या से क्या हो गया'' फिल्म 'गाईड' इन गीतों में मिल जाते है। दे सभी गीत संदमित सुरों में करूण रस का प्रदर्शन करते हैं और यें सभी गीत ऊँचे दर्जे के हैं।''
3. विनोद विप्लव, मेरी आवाज सुनो पृ. 42, 44
4. योगेश यादब, फिल्म संगीत के नवरत्न, पृ0 124
5. वही पृ0 124
6. विश्वनाथ गुप्त , नवभातर टाइम्स, 31 जुलाई, 1995
7. योगेश यादब, फिल्म संगीत के नवरत्न, पृ0 118

विश्वविख्यात बाँसुरी वादक पं. रोनू मजूमदार

डॉ. लीला मणी (दीपक)

भारतीय संगीत का इतिहास अत्यन्त समृद्ध है। आज विभिन्न आयु एवं वर्ग के जिज्ञासुओं की रूचि और प्रेरणा का स्त्रोत बना हुआ है। भारतीय संगीत हमारी संस्कृति का गौरव है। जो वैज्ञानिक शास्त्र पर आधारित है। इसके शास्त्रीय एवं प्रायोगिक लक्ष्य एवं लक्षण के पीछे एक गौरव पूर्ण इतिहास रहा है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि उसके इतिहास पर भी दृष्टि डाली जाए। ''संगीत के इतिहास पर दृष्टि डालने या समझने के प्रयास के पीछे मुख्य उद्देश्य यह है- उस काल को और अधिक समझने के समझने का प्रयास''। भारत की शस्य श्यामला और पवित्र भूमि पर समय-समय पर गुणवान महानुरूपों का जन्म होता रहा है। अमूल्य रत्नों से परिपूर्ण जाज्वल्यमान भारत वसुन्धरा का आँचल कितना पवित्र, कितना अनोखा और कितना सौभाग्यशाली है। यह किसी से छिपा नहीं है। इस जगत जननी माँ धरती ने ना जाने कितने असंख्य कलाकारों और संगीतज्ञों को इस धरती पर अवतरित किया, जिनका नाम संगीत जगत् में सार्थक सिद्ध हुआ है। ऐसे असाधारण कलाकार संगीत की दुनियाँ में अपनी एक अमित छाप छोड़ जाते है और सदैव ही संसार ऐसे महान कलाकारों के गुण गाता है तया सदैव ही गाता रहेगा। संगीत जगत इन- दिव्य रत्नों को कभी नहीं भूला सकता तथा इन अनमोल हीरों को शिखर तक पहुँचाने में घरानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

'' परम्पराओं का पालन करने व नई सौन्दर्य-दृष्टि अपनाने से ही कला की नीव सुदृढ़ होती है तथा विकास कर यह कहा जा सकता है कि घरानों के रूप में ही परम्परा को प्रधानता देते हुए प्राचीन संगीत का स्वरूप तथा विशिष्ट लक्षण कुछ सीमा तक सुरक्षित रह सके और शास्त्रीय संगीत की धारा अनवरत रूप से चलती रहे।'' संगीत तो एक ऐसी कला है, जिसका क्रियात्मक रूप बिना ''जीवित कला'' के सुरक्षित नहीं रह सकता है। इस गुरू शिष्य परम्परा के माध्यम से ही प्राचीन संगीत की झलक हम तक पहुँचती है। अतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तानी संगीत के उच्चता प्राप्त करने विकसित हो जाने अथवा समृद्ध बनाने में इन महान कलाकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। किसी भी संगीतज्ञ के सम्पूर्ण रचना कार्य का विधिवत परिचय पाने के लिए उनके जीवन- वृत का ज्ञान एक अति अनिवार्य पहलू है। संगीतज्ञ का जीवन दर्शन, उनकी साधना एवं आस्था विभिन्न परिस्थितियों के उत्तार-चढ़ाव के अन्तर किस प्रकार निर्मित होती है तथा उनकी चेतना किस प्रकार उर्ध्वतर होती है। इन सभी आवश्यक तत्वों का ज्ञान सम्वधित व्यक्ति के जीवन या जीवन परिचय द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। जीवन वृत सम्बन्धित सभी अपेक्षित सूचनाओं का आंकन ही उनकी संगीतात्मकता के उचित दर्शन एवं मूल्यांकन में अन्तर्निहित हो सकता है।

आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के प्रतिष्ठित एवं असाधारण प्रतिभा सम्पन्न कलाकारों में विश्व विख्यात् वाँसुरी वादक पं. रोनू मजूमदार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पं. रोनू मजूमदार संगीत जगत् के प्रसिद्ध मूर्धन्य मनीषियों एवं संगीत विद्वानों में से जिन्होंने कला साधना के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष किया और अपनी सृजनात्मक प्रतिभा, कलात्मक क्षमता, अटूट लगन एवँ समर्पण की भावना से भारतीय संगीत के क्षेत्र को विस्तृत एवं व्यापक बनाने में अपना सक्रिय योगदान दे रहे है।

पं. रोनू मजूमदार का जीवन परिचय एक संक्षिप्त विवरणः

आधुनिक युग में मैहर घराने से सम्बध रखने वाले विश्व विख्यात बाँसुरी वादक पं. मजूमदार का नाम संगीत जगत् में सदा आदर व सम्मान के साथ लिया जाएगा। पं. रोनू मजूमदार ने अपने पिता डा. भानू मजूमदार से बाँसुरी वाद्य को धरोहर के रूप में प्राप्त किया, उसे सम्भाला तथा अपने शिष्यों को उसी प्रकार ये विद्या प्रदान कर रहे हैं। पं. रोनू मजूमदार ने बाँसुरी वादन की सभी विशेषताओं को ज्यों का त्यों अपनाया तथा संगीत जगत मे मैहर घराने की वादन शैली को अपने आप में बद्ध कर अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया है। संगीत की दुनियाँ के जगमगाते सितारे, प्रतिष्ठित बाँसुरी वादक और स्वाप्निल परिकल्पनाओं से युक्त संगीत निर्देशक पं. रोनू मजूमदार (रनेन्द्र नाथ मजूमदार) किसी परिचय के मोहताज नहीं है क्योंकि इनकी बाँसुरी आज लगभग सभी प्रतिष्ठित राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर गूँज रही है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी पं. रोनू जहाँ एक ओर अपने एकल कार्यक्रमों में भारतीय शास्त्रीय संगीत की परम्परा का निर्वाहन करते है, वही पाश्चात्य देशों में वहाँ के संगीतकोश, संगीतज्ञों के साथ पाश्चात्य संगीत संलयन कार्यक्रमों में अपनी स्वनिल कल्पनाशीलता का भी बेहतरीन उदाहरण पेश करते है। मनमोहक चित्ताकर्षक, जादुई बाँसुरी वादन और संगीत संरचनाओं से दुनियाँ भर के करोड़ों हदयों में कभी आशा और विश्वास की ज्योति जगाने वाले तथा कभी उन्हें उमंग, उत्साह और हर्षोल्लास से भर देने वाले तो कभी करूणा के सागर में आकंठ डुबों देने वाले विश्व संगीत और भारतीय संगीत की अन्यतम विभूति और दुनियाँ के सर्वश्रेष्ठ बाँसुरी वादक पं. रोनू मजूमदार का जन्म पिता डा. भानू मजूमदार तथा माता रेखा मजूमदार के मंगलमय गृह अवधगर्मी " सोनापुरा" बनारस में तिथि 22 जून, शनिवार दोपहर तद्समयानुसार 12:30 बजे सन् 1963 को हुआ। पं. रोनू मजूमदार का वास्तविक नाम रणेन्द्र नाथ मजूमदार है। रणेन्द्र शब्द का तात्पर्य हिन्दी व्याकरणानुसार रण + इन्द्र = रणेन्द्र अर्थात रण में इन्द्र के समान इस प्रकार इनका नाम रणेन्द्र नाथ मजूमदार है जिस प्रकार नाम है उसी प्रकार इन्होने नाम के अनुसार अपने आप को सावित भी किया है। " पं. रोनू मजूमदार का उपनाम रोनू है जो इनके दादा गुरू पं. रवि शंकर जी द्वारा इन्हें अपनी अद्वि-तीय प्रतिभा की मानद प्रदान की गई है। पं. रविशंकर जी इनको रोनू कह कर पुकारते थे और पं. रणेन्द्र नाथ मजूमजदार तद् उपरांत रोनू मजूमदार के ही नाम से विश्व विख्यात हो गए है।[3] पं. रवि शंकर जी ने जब इन्हें अपने आरकेस्ट्रा ग्रुप में शामिल किया तो उन्होंने इनकी योग्यता ग्रहण शक्ति जिज्ञासु स्वभाव, नाम करने की लालसा को पहचान कर इन्हें हमेशा अपने प्रिय शिष्यों में अपने साथ रखा और पं. रवि शंकर इन्हें रोनू कह कर पुकारते थे। जिसके फलस्वरूप पं. रोनू मजूमदार ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा से यह सिद्ध कर दिखाया और विश्व संगीत में अपनी अनूठी मिसाल कायम की है। हर समय सांगीतिक चर्चा सुनते रहने के कारण पं. रोनू मजूमदार पर बचपन से ही सांगीतिक वातावरण व संस्कारो का गहरा प्रभाव रहा है। इस सन्दर्भ में पं. दुर्गा प्रसाद मजूमदार का कहना है कि " हमारे परिवार में सबसे ज्यादा संगीत का शौक रोनू को रहा है। रोनू बाल्यकाल से ही संगीत की बात करता रहता था संगीत के विषय में ही चिंतन करता रहता था। पं. दुर्गा प्रसाद ने इस बात को एक उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि रोनू अगर किसी की मय्यत में भी जाएगा। तो थोड़ी देर वहाँ पर रोएगा और अन्त में घूम फिर कर वापिस उसी संगीत में राग रागिनियों की चर्चा करेगा। अमुक उस्ताद कैसे गाता है तथा किस उस्ताद की क्या विशेषता है- कौन कितने सुन्दर- ढ़ंग से गाता बजाता है। प्रत्येक गायक या वादक के गायक-वादन का विश्लषेण करता था। जिस कारण रोनू का बाल्य काल से ही ज्ञान रहा है।"[4] एक अन्य मतानुसार पं. रोनू मजूमदार के बाल्यकाल के सन्दर्भ में इनके गुरू पं. विजय राव का कहना है कि, जब रोनू मुझसे संगीत सीखने प्रथम बार मेरे घर पर आया तो रोनू ने मुझे राग मियाँ मल्हार की बांदिश " वर्षा की ऋतु

आई-आई वर्षा की रितु आई'' सुनायी तो में स्तब्ध रह गया कि यह बालक इस छोटी सी उम्र में इतना जबरदस्त बजाता है, जब यह बड़ा होगा तो ये कितना उम्दा कलाकार बनेगा। ''उनका कहना था कि रोनू में वाल्य काल से ही अद्‌भूत प्रतिभा व ग्रहण शक्ति समाहित थी। जब मैं रोनू को सीखाता था तो रोनू उस सबक को बजाने में एक व्यवसायिक कलाकार की तरह निपुण या। इस प्रकार मुझे हमेशा अपने प्रिय शिष्य रोनू पर गर्व रहा है। साथ ही पं. विजय राघव राव का कहना है कि ''मैने रोनू के इस विकसित हुनर को देख परख कर उसे बाँसुरी की विधिवत तालीम प्रदान की।

उपरोक्त सभी कथनानुसार पं. रोनू मजूमदार की प्रतिभा वाल्यकाल से ही बड़ी उत्तम उत्कृष्ट विशिष्ट कलाकार की रही है। इस प्रकार पं. रोनू मजूमदार का सांगीतिक सफर चलता रहा है। इनका कहना है कि ''संगीत में मेरे प्रथम गुरु स्वयं मेरे पिता जी रहे हैं। मेरी संगीत की शिक्षा मेरे पिता स्वर्गीय डा. थानू मजूमदार द्वारा मेरे घर से ही शुरू हुई। साथ ही इनका कहना है कि जब हम बनारस में रहते थे तब वे अपनी बड़ी बहन वीणा मजूमदार के साथ रामापुरा में पं. महादेव प्रसाद मिश्र के पास गायन सीखने जाता था। मेरी बहन महादेव प्रसाद मिश्र से गायन सीखती थी और में बैठ कर सुनता था। इस प्रकार ठुमरी सम्राट महादेव प्रसाद मिश्र के गायन को सुनकर मेरे कर्ण भी परिपक्व हो गए। वही इस सम्बंध में इनके शिष्य विपुल बोहरा का कहना है कि ''गुरू जी एक भव्य व्यक्तित्व के

स्वामी है तथा पूरे धर्मात्मा है, सचाई और ईमानदारी इनके व्यक्तित्व के प्रमुख तत्व होने के साथ वे सभी मनुष्यों से बहुत प्यार और स्नेह रखते हैं।'' कुछ महान व्यक्तित्व ऐसे होते है जिनकी भव्यता को देखने समझने के लिए बहुत देर तक उनके साथ रहने अथवा बहुत दिनों तक उन्हें परखने की आवश्यकता नहीं होती। पं. रोनू मजूमदार ऐसे ही व्यक्तित्व के मालिक हैं जैसे कोई व्यक्ति चाहें वह संगीत से जुड़ा हो या नहीं इनके सानिध्य में आते ही प्रभावित हुए बगैर नहीं रह सकता हैं।'' पं. रोनू मजूमदार ने भारतीय शास्त्रीय संगीत की बुलंदी के शिखर को पार किया है लेकिन किसी भी संगीतकार या आम श्रोताओं से यह सवाल पूछा जाए की पं. रोनू मजूमदार के वादन और इनकी इन्सानियत में कौन सा पहलू बड़ा है तो उन्हें जानने वाले लोग इनके व्यक्तित्व को इनके वादन से भी बड़ा बताने में कोई संकोच नहीं करेगें।

''पं. रोनू मजूमदार ने भारतीय शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ अनेकों हिन्दी चित्रपट संगीत में भी अपना बाँसुरी वादन किया है। जिनमें असंख्य फिल्में है जैसेः- लव स्टोरी 1942, पिघलता आसमान जमीन आसमान, अगर तुम ना होते, तेरी मेहरबानियाँ, जाग उठा इन्सान, माचिस, चतुरन जैसी प्रमुख हिन्दी फिल्मों में बाँसुरी बजाया है। पं. रोनू मजूमदार ने भारतीय शास्त्रीय संगीत में अनेक कलाकारों में साथ अपनी जुगलबन्दी की प्रस्तुतियाँ दी है जिनमें कादरी गोपाल नाथ, डा. वाल मुरली कृष्ण, पं. विश्व मोहन भट्‌ट, उस्ताद शाहिद परवेज खाँ, पं. उल्लास बाप्पड़ इत्यादि अनेक महान कलाकार शामिल है। पं. रोनू मजूमदार हिन्दी चित्रपट संगीत में भी काम करना प्रसन्नता दायक मानते हें। पं. रोनू मजूमदार ने पहली कलाई मैक्स हिन्दी फिल्म '' माई स्टीक इंडिया'' को लिए संगीत रचना की है। इन्होने पश्चिमी संगीत को भारतीय संगीत में साम्मिलित किया है। पं. रोनू मजूमदार चहुँमुखी प्रतिभा के धनी है और न केवल ख्याल बल्कि ठुमरी एवँ गजल में भी महारत हासिल है। ''ऑल इण्डिया रेडियो'' द्वारा पं. रोनू मजूमदार को उच्च श्रेणी का कलाकारी माना जाता है। ये ए. आई. आर. से टॉप ग्रेड़ कलाकार हैं। आज पं. रोनू मजूमदार ने देश तथा विदेशों में कार्यक्रमों द्वारा अपनी सर्वोच्चता का प्रमाण सिद्ध किया है।

पं. रोनू मजूमदार की कठोर साधना के स्वरों से इनकी ख्याति का सौरभ दूर-दूर तक महक फैला रहे हैं। पं. रोनू एक अनूठे बेजोड़ और अतिविशिष्ट संगीतज्ञ हैं और ऐसा प्रमाणित करने की आवश्यकता

इन्होंने कभी महसूस नहीं की प्रत्येक संगीत सम्मेलन व कार्यक्रम इनकी महानता का प्रमाण है। पं. रोनू आधुनिक युग में बाँसुरी वादन द्वारा सूरज की तरह संगीत प्रेमियों को प्रकाशित कर रहे है। इन्हें हिन्दुस्तान ही नहीं अपितु समूचे विश्व भर के हर प्रत्येक प्रान्त या क्षेत्र आमंत्रित किया जाता है। संगीत का कोई भी छोटा या बड़ा कार्यक्रम इनके बगैर पूर्ण नहीं माना जाता है। पं. रोनू म-जूमदार को असंख्य राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान मिले हैं तथा इन्हें अनेक पुरस्कार एवँ उपाधियों से सम्मानित किया गया है।

सम्मान व पुरस्कार :-

1. पं. रोनू के स्वयं साक्षात्कार की जानकारी से प्राप्त अपनी कला का श्रेष्टतम् प्रदर्शन करके भारतीय संगीत की उज्ज्वलता एवं उत्कृष्टता को स्वर्ण अक्षरों में अंकित किया है। पं. रोनू को राज्य सरकारे या संस्थाओं द्वारा सम्मान व पुरस्कारों से सुशोभित किया जाता है। इस प्रकार पं. रोनू मजूमदार के सभी सम्मानों व पुरस्कारों का विवरण देना असम्भव है लेकिन इनमें से प्रमुख सम्मानों व पुरस्कारों का उल्लेख इस प्रकार है।

(1) पं. रोनू मजूमदार को सर्वप्रथम ऑल इंडिया रेडिया "सम्मान, ए. आई. आर 1981 कें मिला। (2) 1999 में पं. रोनू को संगीत समर्पण के लिए "आदित्य बिक्रम विरला अवाई" मिला।

(3) पं. रोनू को अपने पूरे विश्व में श्रेष्ठ बाँसुरी वादन के लिए 1997 में ग्रैमी अवार्ड के लिए नामांकित किया गया।

(4) ज्योति दिवस के अवसर पर " सहारा इंडिया परिवार" की ओर से 2001 में " लाईफ टाईम एंची-वमैंट सम्मान" दिया गया।

(5) मध्यप्रदेश सरकार द्वारा 2005-2006 में " राष्ट्रीय कुमार गन्धर्व सम्मान दिया गया।

(6) पं. जसराज गौरव पुरस्कार से 2008 में इन्हें सम्मानित किया गया

(7) महाराष्ट्र सरकार द्वारा "राज्य गौरव पुरस्कार" दिया गया।

(8) "मधुरित सांरग सम्मान" 2011 में पुणे में मिला।"

इस प्रकार विदेशों में भारतीय संगीत का प्रसार करने के लिए उत्तम शिक्षक व गुरू सम्मान" से अमेरिका सरकार द्वारा इन्हें सम्मानित किया। "राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान व पुरस्कार विभिन्न क्षेत्रों में किसी भी विशिष्ट योगदान के लिए विभिन्न व्यक्तियों को प्रदान किए जाते हैं। इस प्रकार अथक परिश्रम एवं अपने अस्तित्व तक वाले व्यक्ति के लिए समाज या सरकार से पुरस्कार अथवा ईनाम पाना लक्ष्य नहीं होता वह तो केवल अपने कार्यो के लिए जीवित रहता है तथा उसी कार्य को करते करते अपने प्राण त्याग देता है।" संगीत के क्षेत्र में पं. रोनू मजूमदार जैसे विख्यात बाँसुरी वादक अपनी कला के विकास के लिए हमेशा समर्पित हैं।

संगीत और नारी : पर्याय एवं पूरक

डॉ. सीमा वर्मा

संगीत, साधकों के रूप में उपासना एवं आध्यात्मिक साधना है और परम सत्य शिव एवं सुन्दर का मेल भी। यह मात्र मनोरंजन की कला नहीं वरन् परम मंगल की विधायक, विकास एवं जीवन संस्कार का अनुपम स्रोत भी है।

संगीत का प्राणतत्व है- माधुर्य
संगीत का शिवतत्व है - सौन्दर्य
सुन्दर परमानंदतत्व है - रस यानि भाव।

ये तीनों ही सौन्दर्य, माधुर्य और रसतत्व का आदिस्रोत है 'नारी'। संगीत की प्रेरणा है 'नारी' कहीं-कहीं अनेक विद्वान् एवं संगीतज्ञों ने संगीत के जन्म का कारण भी माना है-'नारी'।

संगीत के तीन अंग हैं- गायन, वादन तथा नृत्य। इन तीनों ही अंगों में माधुर्य का महत्वपूर्ण स्थान है। माधुर्य जिसका अर्थ है- मिठास, लावण्य और सहज सुंदरता। इसके बिना संगीत की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

व्यावहारिक जगत में मृदुभाषी व्यक्ति अधिक लोकप्रिय होता है, षट्रसों में मधुर रस, जिसे तुरन्त ग्रहण लेने वाला बालक अनभिज्ञ होते हुए भी सहज रूप से ग्रहण कर लेता है। ऐसे ही मधुर कंठध्वनि सहजता से किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। सृष्टि माधुर्य तत्व का ही परिणाम है। ऐसे अनेक प्रमाण हैं जिनसे प्रमाणित है कि संगीत में इस प्राणतत्व 'माधुर्य' की स्थापना का श्रेय भगवती सती को ही है। माँ सरस्वती संगीत की अधिष्ठात्री देवी हैं, जो वीणा धारिणी हैं और वीणा समग्र माधुर्य का प्रतीक है। वीणा के रूप में भगवती का समग्र माधुर्य अभिव्यक्त हुआ है। वीणा की माधुरी में उत्कण्ठा, कोमलता और ओज का अद्भुत समन्वय है। इसकी मधुर झंकार में प्रकृति की प्रत्येक कला, ताल के साथ नृत्य करती हैं। ज्ञान, ध्यान, आनन्द की अधिष्ठात्री भगवती सरस्वती अरू स्थान पर बैठकर अंगुलियों से इसके तन्तुओं को बजाती है।

संगीत का स्वरशास्त्र वीणा से ही प्रारम्भ होता है। संगीत के शास्त्र और क्रिया दोनों पक्षों का प्रतीक 'वीणा' है। माँ सरस्वती से ही वीणावादन की परम्परा चली और इस माधुरी का अनुसरण कर गायकों ने कंठ साधना में भी उसका अनुकरण किया। संगीत के सुरीलेपन एवं निर्दोष ध्वनि उत्पादन के संदर्भ में भी वीणा का उदाहरण उपादेय माना गया है। 22 श्रुति व्यवस्था एवं 7 स्वर वीणा पर ही सिद्ध किये गये हैं। अतः यह कहना सार्थक है कि संगीत में माधुर्य की अधिष्ठात्री वीणावादिनी माँ सरस्वती ही है जिनकी हम नारी तत्व के चरमोत्कर्ष के प्रतीक रूप में आराधना करते हैं संसार की सृष्टि माधुर्याधिष्ठात्री शक्ति के बिना सम्भव नहीं हो सकती। माधुर्य एक ऐसा तत्व है जिसके माध्यम से स्नेह के वशीभूत होकर दो भिन्न तत्व क्रमशः निकट आते जाते हैं और अंत में एक हो जाते हैं। द्वैत की समाप्ति और अद्वैत की अनुभूति ही माधुर्य की चरण परिणति है। इसलिए यह माधुर्य शक्ति जहाँ-जहाँ आकर्षण है वहाँ अनिवार्य रूप से रहती है। यही कारण है कि इसमें लौकिकता भी है और आध्यात्मिकता भी।

भारतीय कलाओं का तो निर्माण ही इसीलिए हुआ कि इनके माध्यम से उस आनन्दानुभूति के पश्चात् वे परमानन्द की खोज के लिए लालायित हो। इसी दृष्टि से रसास्वाद को 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कह सकते हैं। इसीलिए माधुर्य जो भगवती शक्ति

सहायक प्रोफेसर, संगीत गायन विभाग, कन्या महाविद्यालय कमच्छा, वाराणसी

हैं, अनिवार्य तत्व के रूप में संगीत साहित्यादि सभी ललित कलाओं में विद्यमान है और उसकी उपलब्धि नारी शक्ति के माध्यम से ही होती है।

संगीत में प्रेरणारूप में भी नारी रही है। सामगान के साथ वीणावादन का उल्लेख वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर मिलता है, जिसमें वीणा-वादन नारियों द्वारा ही किये जाने का उल्लेख है। इस काल में संगीत का प्रचार- प्रसार तो था ही अपितु संगीत की विशेष शिक्षा का भी प्रबंध था। संगीत के आधार ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में भी अनेक प्रसंग में ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे इस बात की पुष्टि होती है कि नाट्य एवं संगीत में सौन्दर्य और माधुर्य की अभिवृद्धि में नारियों का महत्वपूर्ण योगदान है। उनके सहयोग बिना संगीत एवं नाट्य को सर्वांगपूर्ण बनाया ही नहीं जा सकता। आचार्य भरत ने भी 'नाट्यशास्त्र' के तैंतीसवें अध्याय में गायन के संदर्भ में स्त्रियों के कंठ को ही उपयुक्त एवं स्वभावतः मधुर माना है। नारी कंठ के सहज गान, माधुर्य की प्रशंसा पुनः भरत ने छब्बीसवें अध्याय में भी की है।

'संगीत कम परिक्लेशो नित्यं प्रमदाजनस्य गुण एव' ।। 27। 9।।

स्वभाव में कोमलता, अंगों में सुकुमारता नारी की स्वभाविकता है। इसी के अनुकूल मधुर कंठ भी ईश्वर ने उन्हें प्रदान किया है जिससे संगीत में सर्वदा से माधुर्य में अभिवृद्धि होती रही है।

नृत्य के संदर्भ में द्रष्टव्य है कि -नाट्य में भारती, सात्वती और आरभरी वृत्तियों का प्रयोग भरत द्वारा किये जाने पर पितामह ब्रह्मा ने कौशिकी वृत्ति को पुरूषों के द्वारा किया जाना असम्भव बताया। भरत ने कहा कि भगवान शंकर के नृत्य में श्रृंगार रस को प्रकट करने वाली उज्जवल वेशात्मक और अत्यन्त सुन्दर सुकुमार अंगों द्वारा रसभाव जागृत करने वाली कौशिकी वृत्ति को भगवती उमा ही प्रस्तुत कर सकती हैं, ऐसा मैंने स्वयं देखा है। इसी श्रृंगारिक असमर्थता के कारण पितामह ब्रह्मा ने मंजुकेशी, सुकेशी, मिश्रकेशी, सुलोचना आदि अप्सराओं का निर्माण मनः संकल्प से किया और आचार्य भरत ने उन्हें प्रशिक्षित किया। अतः भगवती उमा ही कौशिकी वृत्ति की रचयिता हैं और ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न अप्सरायें इसकी प्रथम प्रयोक्ता। माँ पार्वती ने नारी प्रकृति के आधार पर 'लास्य' नृत्य को जन्म दिया।

संगीत शास्त्रों में स्पष्ट बताया है कि जो गान स्त्री-पुरूष की श्रृंगार विषयक वार्ताओं से सम्बन्धित हो, उन्हें देवी पार्वती के सुकुमार अंग हाथों द्वारा ही प्रकट किया जाय।

इस प्रकार भगवती रसस्वती व उमा का संबंध संगीत की तीनों विधाओं गायन, वादन व नृत्य से है। वह आदिस्त्रोत भी है और प्रेरणा भी। यह भारतीय संस्कृति में ही नहीं अपितु पाश्चात्य संस्कृति भी मानती है। प्रेरक शक्ति के रूप में नारियों की अन्य भी महत्वूपर्ण भूमिका रही। श्रीकृष्ण की बांसुरी, राधिका व गोपांगनाओं के लिये बजी। 'गीत गोविंद' के गायक महाकवि जयदेव की कोमलकांत पदावली उनकी पत्नी पद्मावती के स्नेहजन्य से सिंचित है। भगवान जगन्नाथ के मन्दिर में जयदेव गीत गाते थे और पत्नी पद्मावती उन्हीं गीतों पर नृत्य किया करती थी। विशेष उल्लेखनीय है कि गीत गोविंद के विशेष चर्चित पद 'प्रिये चारूशीले' में स्वयं भगवान ने जयदेव की अनुपस्थिति में 'देहिपदपल्लवमुदारम्' जोड़कर पद पूर्ति कर उनकी पत्नी पद्मावती के प्रति सनेह मिश्रित आदर दिया था। नारी ही संगीत की प्रेरणा थी जिसे ईश्वर ने भी यह माना। अनेक मध्यकालीन प्रधान संगीतज्ञों जैसे गुरू स्वामी हरिदास, श्रीकृष्ण की उपासना सखी भाव से करते थे, इन्हें ललिता सखी का अवतार माना जाता है। इनके संगीतमय साहित्य में जो माधुर्य है वह बिना सखी भाव के ह्रदयंगम किये नहीं मिल सकता। वैसे ही श्रीरामभक्ति शाखा के कवि की कविता संगीत से पुष्ट नहीं होता, यदि रत्नावली का विछोह उनकी प्रेरणा न हुई होती।

नारी पृथ्वी की आदि शक्ति हैं। अति प्राचीन काल से नारियाँ, संगीत, साहित्य, प्रेम एवं भक्ति में आबद्ध रही है। महाश्वेता एवं बसंत सेना संस्कृत साहित्य की विदुषी थी, बुद्धकालीन उज्जयिनी के महाराजा चंद्रपद्योत महासेन की सुपुत्री वासवदत्ता ने उदयन से वीणावादन सीखकर संगीत को समृद्धि प्रदान की थी। रानी रूपमती भी संगीत कला में निष्णात् थी। मगधराज की कामिनी भी संगीत शास्त्र में निपुण एवं वीणावादन में कुशल थी। वैशाली की नगरवधू आम्रपाली संगीत एवं नृत्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति थी। संगीत कला नारी-जीवन का विशेष अंग रहा है। यही कारण था कि भैरवी, आसावरी,

वागीश्वरी, रागेश्वरी, घनाश्री मालश्री, मधुवंती जैसे विभिन्न रागिनियों का संबंध स्वर रचना का आधार नारी कल्पना से रहा है। आदि ग्रन्थों में जहाँ संगीत का वर्णन मिलता है वहाँ नारी-गायन और नृत्य की भी चर्चा मिलती है।

संगीत में विधाओं, शैलियों के सन्दर्भ में भी देखें तो समाज में सदियों से पुरुषों का वर्चस्व रहा है किन्तु वे जाने-अनजाने नारी से प्रेरित होते आये हैं। संगीत में गायन प्रमुख है, गायन में शब्दों का अपना महत्व है। अधिकतर गीत के प्रकारों में शृंगार रस में नारी की भावनाओं का ही चित्रण होता है। ख्याल, ध्रुपद, ठुमरी, टप्पा, कजरी, चैती आदि अनेक गीतों में नारी की भावनाओं का ही चित्रण हुआ है। जबकि इन गीत प्रकारों के रचयिता अधिकतर पुरुष रहे हैं। यह सही है अपना आधिपत्य रहने के कारण, नारी से हुई प्रेरणा तथा शिक्षा को पुरुष उन्मुक्त रूप से स्वीकार नहीं करता, फिर भी संगीत के क्षेत्र में इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि पुरुष की भावनाओं की भूमि में नारी ही वह प्रेरणा है, जिससे संगीत मुखरित है।

रस नौ माने गये हैं किन्तु संगीत में नौ रसों का समावेश मुख्य तीन रसों में ही कर लिया गया है- करुण, वीर तथा श्रृंगार रस में। सभी रसों में नारी अपना अस्तित्व रखती है, किन्तु रसराज श्रृंगार की तो आधारशिला ही नारी है। नारी और संगीत प्रकृति एवं स्वभाव से भी एक-दूसरे के निकट हैं। नारी की सुकुमारता, मधुरता, सरलता, भावुकता संगीत की मृदुलता एवं रसान्वित के अनुरूप हैं। नारी कंठ का माधुर्य, उसके पद चालन की अदाकारी, हावभाव प्रदर्शन की कला संगीतांग गायन, वादन और नृत्य के लिए उपयोगी है। इस प्रकार अनादि काल से संगीत और नारी एक-दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं। दो विभिन्न नहीं एक रूप समझे जाने लगे और नारी में संगीत का होना स्वाभाविक हो गया।

देवांगनाओं और अप्सराओं में संगीत की सिद्धहस्तता संगीत के क्षेत्र में नारी की अनोखी भूमिका का संकेत देती है। प्राचीनकाल में नारी की सांस्कृतिक उन्नति का आधार, विकास की कल्पना संगीत शिक्षा ही थी। ऋग्वेद में नारी के गायन और नृत्य की चर्चा की गई है-

समुचा धीभिरस्वरन्हिन्वतीः सप्त जामयः
विप्रमाजा विवस्वतः। (म.9/66/8)

पुरुष शक्ति धीरता, गम्भीरता वीरता गुणों की प्रकाशक हैं। परन्तु कोमलता, माधुर्य, सौन्दर्य आदि गुण नारी शक्ति के अधीन है जिसके बिना संसार का संवर्धन नहीं हो सकता।

यही कारण है कि संगीत ने कतिपय के हरकाल क्रम में स्त्रियों को जोड़े रखा। पुरुष स्त्री विभेद, जातीयता, साम्प्रदायिकता, हिंसा, मान-अपमान, कुत्सित विचारों से बहुत आगे संघर्ष करते हुए भी महिलाओं ने इसे अपने जीवन में सर्वाधिक महत्व दिया। अखण्ड, अनंत और आनंदस्वरूप समझते हुए इस कला को अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया। शोषण निःसंदेह कभी शारीरिक भी रहा, मानसिक भी। बारह घण्टे के रियाज का क्रम हो या ग्यारह मील पैदल चलने का संघर्ष हो या रात में गंगा पार करके जाना हो, इतिहास के ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं जिसमें साधना और तपस्या के बल पर नारियों ने संगीत में उच्च आदर्श स्थान प्राप्त किया। कलाकारों ने युगों से जो कुछ पाया, अपनी कला में सद्गुण पिरोकर समाज को दिया है।

सौंदर्य, माधुर्य, सहजता, सरलता नारियों के नैसर्गिक गुण हैं जो उनकी विविध सांगीतिक रचनाओं में प्रकाशित होकर जीवन को संजीवनी प्रदान करते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी देखें तो संगीत कला के दो मुख्य घटक हैं- पहला ध्वनि, दूसरा गति। ये दोनों ही प्रतीक प्राणियों को निसर्ग से आंशिक रूप में प्राप्त हुए हैं- कहीं अधिक और कहीं कम। यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि मादा में आवाज और नर में गति का प्रमाण अधिक मात्रा में पाया जाता है, सिर्फ मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षियों के संदर्भ में भी यही विधान है।

संगीत का संबंध ध्वनि एवं गति से है और ये दोनों ही शब्द स्त्रीलिंग हैं। इसी प्रकार स्वर अवश्य सात हैं परन्तु श्रुतियाँ 22 हैं और ग्रामों में भी नारी स्वर की व्यवस्था की गई है।

सृष्टि के प्रारम्भ से आजतक नारी, सुर, नर, मुनि का माता, पत्नी, गुरू, शिष्य आदि रूपों में प्रेरित करती आई हैं। उसका प्रत्येक क्रियाकलाप संगीतमय है, उसके भावों की अभिव्यक्ति ही संगीत है, सुरों का गीत है। दोनों एक-दूसरे के पर्याय एवं पूरक हैं।

'नारी ही संगीत है जाके हैं दो रूप
एक रूप तो गीत है, दूजा नृत्य स्वरूप।'

मानव जीवन पर संगीत चिकित्सा का प्रभाव

कुमारी प्रीति

संगीत हम सभी के जीवन का अभिन्न हिस्सा है। चाहे सुनने वाला हो या सुनाने वाला, संगीत सभी के लिए प्रभावकारी है। संगीत एक ऐसी विधा है जो मानव-चित्त पर विशेष और अमिट छाप छोड़ती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत को विश्व के अन्य देशों के संगीतों से श्रेष्ठ माना गया है। भारतीय शास्त्रीय संगीत का जन्म वैदिक युग में हुआ। भारतीय शास्त्रीय संगीत की विशेषता राग पद्धति है जो किसी कलाकार की व्यक्तिगत प्रतिभा को सामने लाती है। स्वर तथा ताल किसी न किसी रूप में विश्व के सभी संगीतों में विद्यमान हैं, लेकिन राग पद्धति केवल भारतीय शास्त्री संगीत की विशेषता है।

संगीत का हमारे शरीर में स्थित सप्त चक्रों पर प्रभाव- भारतीय शास्त्रीय संगीत केवल जन मनोरंजन का ही साधन नहीं है, इसका संबंध प्रकृति व मानव शरीर से भी रहा है। भारत के प्राचीन वेदों में भारतीय संस्कृति व जीवन के तौर-तरीकों का वर्णन किया गया है। उसी में संगीत को सबसे बेहतर माना गया है। भारतीय शास्त्रीय संगीत का मानव स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। संगीत के सात सुर ''सा, रे, ग, म, प, ध, नि' का शरीर पर विशेष प्रभाव पड़ता है। वेदों में शरीर के सात चक्रों का वर्णन किया गया है जो मानव शरीर के विभिन्न भागों का संचालन करते हैं। संगीत के सात सुरों का इन सात चक्रों पर विभिन्न प्रभाव पड़ता है। 'सा' 'मूलाधार', 'रे' 'स्वाधिष्ठान', 'ग' 'मणिपुर, 'म' 'अनाहत', 'प' 'विशुद्ध', 'ध' 'आज्ञा' और 'नि' 'सहस्त्र' चक्र को सुचारू रखने में मदद करते हैं।

वेदों में संगीत को योग माना गया है जिससे मानव शरीर स्वस्थ रहता है। शरीर रचना विज्ञान के अनुसार सभी बीमारियां वात, पित्त व कफ दोषों के कारण होती हैं। इन दोषों के निवारण में राग विशेष भूमिका निभाते हैं। रागों से आत्मिक सुख की अनुभूति होती है जिसके कारण इनको रोग निवारण में उपयुक्त माना गया है। त्रिदोष का प्रकृतिस्थ रहना ही आरोग्य है यथा-

दोषाः पुनस्त्रयो वातपित्तशूलेष्माणः
ते प्रकृतिभूताः शरीरोपकारका भवन्ति।
विकृतिमापन्नास्तु खलु
नानाविधैविकारेः शरीरभूतापयन्ति।।

रागों से चिकित्सा को लेकर कुछ प्रयोग भी हुए हैं। 20वीं सदी में पं. ओंकारनाथ ठाकुर ने राग 'पूरिया' के चमत्कारिक गायन से इटली के शासक मुसोलिनी को अनिद्रा रोग से मुक्ति दिलाई थी। राग को अल्जाइमर के इलाज में भी लाभकारी माना गया है। अल्जाइमर रोग भूलने की बीमारी से संबंधित है जो गंभीर अवस्था में रोगी के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। प्रसिद्ध न्यूरोलॉजिस्ट डां. आलिवर स्मिथ के अनुसार 'राग शिवरंजनी' सुनने से स्मरण शक्ति बढ़ाई जा सकती है। वर्तमान में वैज्ञानिकों और चिकित्सकों ने प्रमाणित किया है कि 80 फीसदी बीमारियां मानसिक कारणों जैसे तनाव, चिंता, अवसाद आदि से होती है और संगीत एक ऐसी विधा है जिससे मानसिक संतुलन बना रहता है। रागों द्वारा चिकित्सा 'संगीत चिकित्सा' कहलाती है। आज संगीत चिकित्सा पर शोध हो रहे हैं और इसके सकारात्मक

स्नातकोत्तर, संगीत विभाग, ति.मां. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

संगीत चिकित्सा सामने आए हैं। रागों को सुनने के लिए विशेष समय निर्धारित किए गए हैं। यूं तो संगीत किसी भी समय सुना जा सकता है लेकिन लाभ लेने के लिए इसको समयानुसार सुनना चाहिए। आयुर्वेद के अनुसार रात, दिन और कम दोष दिन के 24 घंटों के दौरान सक्रीय रूप से कार्य करते है। सभी राग अलग-अलग मनोवृत्ति से जुड़े हुए है जिसके कारण रागों का स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। समयानुसार रागों को सुनकर रागों पर निर्भरता बनाये बिना लाभ उठाया जा सकता है। यहां कुछ रागों के नाम, उनसे ठीक होने वाले रोग व रागों के समय की जानकारी दी जा रही है।

1. राग-हिंडोल- राग से लाभ-उच्च रक्तचाप व चिंता रोग में लाभ, राग का समय-वसंत ऋतु की सुबह, राग की विशेषता-सकारात्मक मनोदशा।

2. राग-कल्याणी- राग से लाभ-तनाव व डर को दूर कर आत्मविश्वास बढ़ाता है, राग का समय-रात्रि का पहला पहर, राग की विशेषता-साहस और प्रेम।

3. राग-दरबारी- राग से लाभ-तनाव व उदासी को दूर करता है, राग का समय-सुबह व रात्रि का पहला पहर राग की विशेषता-आनंद, आशा और आत्मविश्वास को बढ़ाता है।

4. राग-दीपक- राग से लाभ-एसिडिटी, अपच-पेट संबंधी बीमारियों में कारगर, राग का समय-गर्मियों की संध्या, राग की विशेषता-क्रोध और नकारात्मक भावनाओं को कम करता है।

5. राग-मेघ- राग से लाभ-जुकाम, अस्थमा राग का समय-वर्षाऋतु, राग की विशेषता-सकारात्मक सोच।

6. राग-श्रीरंजन- राग से लाभ- माइग्रेन व चिंता में आराम दायक, राग का समय-रात्रि का प्रथम पहर, राग की विशेषता-साहस, दृढ़ता, दयालुता व प्रेम।

7. राग-दरबारी- राग से लाभ-अनिद्रा और नींद संबंध विकारों में कारगर, राग का समय-निद्रावस्था में सुने, राग की विशेषता-प्रेम अनुकूलन व रचनात्मकता।

8. राग-मेघमल्हार- राग से लाभ-महिलाओं व मासिकधर्म से संबंधित रोगों में लाभ, राग का समय-बरसात में किसी भी समय, राग की विशेषता-आनंद व शांति।

9. राग-मालकौंस, राग से लाभ-मधुमेह, उच्च रक्तचाप व हृदय संबंधी रोग, राग का समय-अर्धरात्रि (10 से 2 बजे), राग की विशेषता-आत्मिक एवं मानसिक शांति।

10. राग-शिवरंजनी, राग से लाभ-अल्सर, मानसिक विकार में लाभकारी व स्मृतिवर्धक, राग का समय- अर्धरात्रि (10 से 2 बजे), राग की विशेषता-प्रोत्साहन। इसके अलावा राग 'भारवा' और 'भूपाली' सुनने से अति मजबूत होती है। यही मोबाइल, घातिक व हानिकारक प्रभावित होने के कारण विश्व में नपुंसकता के रोग बढ़ गए है। राग 'दरबारी' नपुंसकता को दूर भगाते है। 'आसावरी', 'मेघमी' व 'सुहानी' रागों को सुनने से मानसिक संबंध रोगों व सिरदर्द से छुटकारा पाया जा सकता है। इन रागों को सुनकर रोगों का उपचार किया जा सकता है।

तुर्की-फारसी मनोवैज्ञानिक तथा संगीत सैद्धांतिक अल-फराबी (872-950) ने, जिन्हें यूरोप में 'एलफाराबियस' के नाम से जाना जाता है, अपने निबंध 'मीनिंग ऑफ द इंटेलक्ट' में संगीत चिकित्सा का वर्णन किया है, जहां उन्होंने आत्मा पर संगीत के उपचारात्मक प्रभाव की चर्चा की है। रॉबर्ट ने अपनी 17वीं सदी की उत्कृष्ट कृति द एनॉटोमी ऑफ मेलैन्कोली में लिखा है कि संगीत तथा नृत्य मानसिक रोगों के उपचार के लिए काफी महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से विषाद-रोग में इसे एक सार्थक उपचार का माना जाता है।

'नाद' और गति संगीत के ये दो मुख्य तत्व हमें प्रकृति से ही प्राप्त हुए हैं। विशेषता यह है कि प्रकृति में समाविष्ट नाद और गति को मानव ने अपनी बुद्धि से परिष्कृत किया तथा उसे परिमार्जित रूप प्रदान किया। नाद तथा गति के ही परिमार्जित रूप स्वर और लय के रूप में प्रस्फुटित हुये। इस विशिष्ट विशिष्टता के कारण ही ललित कलाओं में संगीत अपना एक अनूठा, चमत्कारिक और सम्मानपूर्ण स्थान बनाये हुए हैं। मनुष्य के साथ-साथ जीव-जंतु भी संगीत के जादुई प्रभाव से वंचित नहीं है। बीन की धुन पर सर्प का झूमना इसी प्रभाव को स्पष्ट करती है। नाद की प्रशंसा में वृहद्देशी में उल्लिखित है कि

"नाद रूपः सृमृतो ब्रहमा नाद रूपो जनार्दनः
नाद रूपा पराशक्तिनाद रूपों महेश्वरः"।

वहीं संगीत की प्रशंसा में संगीत रत्नाकर में इस प्रकार उल्लेख मिलता है।-

"सामगीतिरतो ब्रहमा, वीणासक्ता सरस्वती।
किमन्ये यक्षगन्धर्व देव दानव मानवाः।।
तस्य गीतस्य महात्मृयंके के प्रशंसितुमीशते।
धर्मार्थिकाममोक्षाणामिदमेवैक साधनम्।।

संगीत के चिकित्सकीय प्रयोग का उल्लेख ताम्र युग में भी मिलता है। ऐतिहासिक ग्रंथों से यह प्रमाण मिलता है कि-"उस काल में जब कोई बीमार पड़ जाता था तो यह लोग उसे दवा नहीं देते थे, बल्कि संगीत द्वारा उसका उपचार करते थे और इस संगीतिक उपचार से अनेक व्यक्ति स्वस्थ और सुन्दर बन जाते थे"। इसी प्रकार द्रविड़ो को भी संगीत के वैज्ञानिक रूप का पता था और उन्होने इसक प्रयोग चिकित्सा के रूप में किया इसका उल्लेख 'डास्कीयोली ने अपनी पुस्तक में किया है। वेदो में सामवेद की गरिमा "वेदानांसामवेदास्मि" से ही स्पष्ट हो जाती है। अभिव्यक्ति के तीन माध्यमों गद्य, पद्य एवं गान में, गायन को भावविद्या में सबसे अग्रणी देखकर उसे विशेष महत्व दिया गया। भावतरंगों के रहस्यमय दिव्य प्रयोगों को सम्पन्न करने वाले गान के मंत्रों को अपेक्षाकृत कहीं अधिक महत्वपूर्ण माना गया। विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के लिए साम गायन का प्रयोग विविध तरीकों से किया जाता था। कामनाओं में मनुष्य की सबसे बड़ी कामना" आयुष्य की होती है। कुछ सामों के समुदाय को "अरिस्ट" संज्ञा दी गयी। इस अरिस्ट वर्ग के एक या अनेक सामों का गान करने से मनुष्य सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता हें 'पिबा सोमं' (साम 398) से उत्पन्न दो सामों का गान करने से मनुष्य दीर्घायु होता है।

इसी प्रकार अश्विनी कुमारी के 'भैषज मंत्र' में हर रोग के लिये चार भैषज कहे गये है। पावनौकष, जलौकष, बनौकष और शाब्दिक। क्रौंचमुनि के ग्रन्थ 'कुर्णक प्रभा' के प्रथम प्रकरण में शब्द की व्युत्पत्ति, शब्द और शरीर का संबंध, शब्द समय में राग मान और शब्द विकृति के प्रकार दिये गये हैं। 'शब्द-कौतुहल' में चार हजार श्लोकों को तीस प्रकरणों के अन्तर्गत विभाजित किया गया है। पहले प्रकरण में रोगों के शब्द से निदान शाब्दिक औषधि-वीणा तंत्री, प्रणव, शंख, भेरी, मृदंग, मजीरा, बंशी आदि वाद्य भेषज से ही बनाने और उसे सुनाकर रोगाहरण का विवरण है। हर रोग के लिये पृथक-पृथक वाद्यों के शब्द और कौन किसके लिये प्रधान है, तथा तीसरे प्रकरण में अमुक प्रकार के श्रवण-मनन और कीर्तन से रोग हरण का विवरण है।

'सिद्व योग'-में अनाहतनाद के नौ गुण बताये गये हैं। जिनमें सबसे पहले 'घोषात्मक' नाद प्रगट होता है, जो आत्म शुद्धि का उत्कृष्ट साधन है। वह उत्तम नाद सब रोगों को हर लेने वाला तथा मन को वशीभूत करके अपनी ओर खींचने वाला है।

गायत्री महामंत्र की महाशक्ति से हमारे पूर्वज भली भांति परिचित थे। गायत्री महामंत्र के चौबीस चमत्कारिक महत्व, प्रभाव, बताये गये हैं। जिसमें पन्द्रहवें प्रभाव में यह वर्णित हैं कि गायत्री मंत्रो के सस्वर जाप से कायिक कष्टों से मुक्ति, निवृति मिलती हैं। गायत्री साधना से असाध्य रोग के रोगी को मौत के मुंह से वापस लौटते देखा गया हैं। मंत्र एक ऐसी रामबाण औषधि हैं, जिसके सामने चिकित्सा शास्त्र मूक प्रतीत होता है।

बीसवीं सदी जो विज्ञान के साथ आरम्भ हुआ तो फिर से संगीत पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार किया जाने लगा। इस क्षेत्र में संगीत के चिकित्सकीय प्रभाव को सिद्ध करने का महत्वपूर्ण कार्य संगीत मार्तण्ड पं. ओंकार नाथ ठाकुर ने किया। इटली के शासक जो अनिद्रा रोग से पीड़ित थे, पं. जी ने अपने गायन से इस रोग को दूर किया। इसी तरह अपने गायन से खूखांर शेर को शांत कर वश में किया।

पं. जसराज जी ने भी अपने गायन से संगीत चिकित्सा द्वारा विभिन्न रोगों को दूर कर रोगियों को आराम एवं स्वास्थ्य लाभ प्रदान किया।

विदित है कि मथुरा निवासी राजा लक्ष्मण प्रसाद सिंह के सामने यदि कोई पीलू गाता था तो वे तुरन्त रोने लगते थे और उनका आत्म नियंत्रण समाप्त जाता था।

मैसूर के गणपति सच्चिदानंद जी ने नाद-चिकित्सा का उद्घाटन किया था। संगीत मार्तण्ड उस्ताद चाँद खाँ, संगीत चिकित्सा का लाभ स्वयं अपने गायन से प्राप्त करते थे, जैसे पाचन शक्ति में कमी हो तो कुछ विशेष प्रकार के गमक की तान, जुकाम से नाक बन्द हो जाये तो मुंह बन्द तान (ग्रंथों में उल्लेखित मुद्रित गमक के स्वरूप) आदि का अभ्यास करते थे।

स्वामी शिवानंद महाराज ने, जो वीणा वादक भी थे, अध्यात्म के साथ संगीत को जोड़कर विविध प्रयोग किया। इस प्रकार अनेक संगीतज्ञों ने अपने गायन से स्वास्थ्य लाभ के लिये संगीत चिकित्सा का प्रयोग किया। भारत में जो सफल प्रयोग किये गये उसका प्रमाण हमें डॉ. जैक्सन पाल की पुस्तक 'संगीत चिकित्सा' में मिलता है। जो सन् 1938 में लाहौर में प्रकाशित हुयी थी।

अन्य देशों के सन्दर्भ में यदि हम संगीत चिकित्सा की बात करें तो पाते हैं कि संगीत के रागशमक रूप का विवरण पन्द्रह सौ ईसा पूर्व में लिखे गये मिश्र के मेडिकल पेपेरी में मिलता हैं। इसकी खोज पेट्री नामक वैज्ञानिक ने 1899 में की थी। इस ग्रंथ में संगीत का प्रभाव स्त्रियों पर उनकी प्रजनन क्षमता बढ़ाने के रूप में किये होने का विवरण लिपिबद्व है। इस प्रकार के वर्णन युनानी गाथाओं में भी मिलते हैं। मिश्र और यूनान में ढोल और घंटियों बजाकर रोगियों के उपचार का विधान हैं।

बाईबिल में भी यह विवरण मिलता है कि डेविड ने रजा सिओल के सामने संगीत का प्रदर्शन किया जिससे राजा को स्वस्थता और शान्ति का अनुभव हुआ। सिकन्दर महान, जब अपनी चेतना शक्ति खो दिया था तब 'लायर' नामक वाद्य सुनने से उसकी अचेतावस्था दूर हो गई।

यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि संगीत सदैव से रोगोपचार का सशक्त माध्यम रहा हैं। अपने अलौकिक गुणों के कारण मानव जीवन के लिये सदैव कल्याणकारी रहा है।

यद्यपि संगीत-चिकित्सा का मूल भारतीय संगीत में प्राचीनकाल से मिलता है परन्तु बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जितना व्यापक अनुसंधान, शोध, प्रयोग, श्रवण, एवं मनन, चिन्तन, पाश्चात्य देशों में हुआ उतना अपेक्षित कार्य हमारे देश में भी नहीं हुआ। पाश्चात्य देश भी भारतीय प्रेरणा से ही अनुप्राणित थे। अरस्तू, प्लेटो, पायथागोरस आदि सभी संगीत चिकित्सा के व्यापक प्रभाव से परिचित थे। अरस्तू का कहना कि-बांसुरी की तानों में भावनाओं को पुष्ट करनें की अद्भुत क्षमता है। पायथागोरस के अनुसार संगीत में आश्चर्यजनक हीलींग विशेषता विद्यमान है।

बीसवीं सदी में यूरोप में यह चिकित्सा प्रतिष्ठित हो चुकी थी। उन दिनों डिप्रेशन आदि मनोविकारों को दूर करने के लिये इस चिकित्सा की सहायता ली जाती थी।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डॉ. सैयद इब्राहिम रिजवी ने शोध में यह पाया कि संगीत में उत्साहित करने, उत्तेजित करने और मनोरंजन करने जैसी संवेगात्मक क्षमता के साथ ही 'इंडोरफिन' बढ़ानें 'टेस्टोस्टेरान' को कम करने की क्षमता होती है।

इंडोरफिन शरीर में पैदा होने वाला पेनकिलर है जो शरीर को तनावमुक्त बनाये रखने में मदद करता है। जबकि टोस्टेस्टोरौन कम होने से क्रोध में कमी आती है। संगीत शरीर में पाये जाने वाले स्टेरायड हार्मोन 'कार्टीसोल' को भी कम करता है। तनाव इसी हार्मोन की देन है।

मद्रास के मशहूर कर्नाटक संगीतकार डॉ. एम. बालामूरा कृष्ण ने संगीत विज्ञान से मनोदैहिक रोगों जैसे उच्च रक्त चाप, मधुमेह, सिरदर्द आदि पर शोधकार्य किये। इन्होंने अनेक रागों और सिंथेटिक साउण्ड कैप्सूल के माध्यम से रोगियों का इलाज किया। मद्रास में विपंची नामक केन्द्र की स्थापना कर इस दिशा में कार्यरत हैं। संतीतोषध अनुसंधान केन्द्र ने कई शोध किये। इस केन्द्र पर एड्स जैसी घातक बीमारियों पर भी शोध कार्य जारी है। इनका मानना है कि बिना किसी दर्द निवारक औषधि का प्रयोग किये, संगीत के सहारे दर्द से निजात दिलाया जा सकता है।

डॉ. हरिशर्मा और क्रॉफ मैन एलन ने एक शोध कार्य में पाया कि (ओहियो विश्वविद्यालय) रॉक

संगीत हृदय व कैंसर संबंधी असाध्य व पीड़ादायक बीमारियों को भड़काता है जबकि सामवेद की ऋचाओं के पारम्परिक गायन से आंत, फेफड़े , त्वचा व स्तन के कैंसर कोशिकाओं में 25 प्रतिशत की कमी आई।

ध्रुपद गायक अमीनुद्दीन डांगुर का कहना है कि टी.बी., लकवा, बीमारियों का इलाज राग के स्वर-समूहों द्वारा किया जा सकता है।

इस प्रकार अनेक विद्वान चिकित्सक संगीत चिकित्सा को लेकर अनुसंधान एवं प्रयोग कर रहे हैं। विभिन्न शहरों के विभिन्न अस्पतालों में इस प्रयोग को लागू किया जा रहा है एवं उसका सार्थक, लाभकारी परिणाम भी सामने आ रहा है।

अंत में यही कहना सार्थक होगा कि भारत प्राचीन काल से एक समृद्ध संस्कृति व सभ्यता का देश रहा है। सभ्यता, संस्कृति व वेदों का पाठ भारत ने पूरी दुनिया को पढ़ाया है। धर्म, संस्कृति व विश्व-बन्धुत्व का परिचायक भारत ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की भावना से अभिप्रेत है। संगीत चिकित्सा के माध्यम से मानव को स्वस्थ, व्याधि मुक्त, निरोग, रखने की कल्याणकारी भावना भारतीय संगीत में वेदों से आज तक सतत् प्रवाहित है।

कथक नृत्य में सौंदर्य तत्व

डॉ. जूली एच. आनादकत

"सौंदर्य शब्द" बहुत निजी है व्यक्तिपरक है और विवादास्पद है क्योंकि यह व्यक्ति की सोच पर निर्भर करता है, कोई वस्तु किसी को सौंदर्य से परिपूर्ण लगती है तो किसी को नहीं। कोई उस सौंदर्य का रसास्वादन करना चाहता है तो कोई उस ओर देखता भी नहीं। यह शब्द जितना सुख देता है उतना ही विरोधाभास भी उत्पन्न करता है। कथक नृत्य की रचनाओं में सौंदर्य बिखरा पड़ा है।

1. सम -

स्थिर ठहर कर रह गई, वाह क्या बात है, क्या अंदाज है थाट का, थाट यानि खड़े होने का अंदाज। लखनऊ घराने में थाट में बारीक काम होता है, छोटे-छोटे 2/3 बोल लेते हुए हस्तकों के साथ सम पर आते है, विभिन्न खूबसूरत चालें दिखाने का भी रिवाज है किन्तु जयपुर घराने में चल थाट नाचने का रिवाज है तथा तेजी के साथ सम दिखाने का अन्दाज़। छोटी-छोटी उठाने बरतने का भी विशिष्ट अंदाज है।

2. दृष्टि का सम -

दृष्टि के आठ भेद हैं और हर दृष्टि का अपना सौंदर्य होता है, सम दिखाने के अंदाज होते है तो यह भी सच है कि दृष्टि का भी अपना सम होता है। यह नृत्य में सौंदर्य को द्विगुणित करता है।

3. अंगो का खिलना -

जैसे गायन में आलाप होता है, आरोह अवरोह के साथ स्वर खिलते जाते हैं वैसे ही नृत्य में भी विलंबित/मध्य/द्रुत तीनों लयों में बोलों का काम खिलता जाता है, अंगों का खिलना इसी को कहते हैं। कसक-मसक, गर्दन का डोर, कटाक्ष, अंदाज, हस्तक इत्यादि का लय के साथ धीरे-धीरे बढ़ते जाना ही अंगों का खिलना है तथा कथक नृत्य की बंदिशों में भी इनके प्रयोग से सौंदय खिलता जाता है।

4. धा तक थुं गा -

धा तक थुं गा बोलों में सभी घरानों के गुरूओं ने अपनी-अपनी कल्पना शक्ति और सौन्दर्यात्मकता के साथ काम किया है जैसे - शिवपरन, होली, राधा कृष्ण की छेड़ छाड़, मदन-दहन, माखन चोरी, कालिया दमन, पंचदेव स्तुति इत्यादि। नृत्यकार आज भी उसमें कुछ नया जोड़ने की कशिश करते रहते है।

5. बोलों की करवट बदलकर निकल जाना-

जयपुर घराने में कहते हैं जितने बोल उतने ही पैर, लखनऊ घराने में पैरों के काम में बोलों को पलटने का/काट कर/ निकल कर जाने की प्रथा है। लयकारी की बारीकियाँ बगैर पैर पटक के दिखाने का सौन्दर्य।

6. बोलों का धर्म और मिज़ाज -

जैसा बोल हो उसे उसी मिज़ाज के साथ निभाना ही नर्तक का धर्म है, त्रम को हाथ पाँव के साथ वैसे ही करना, थुडगं /दिगदिग/थर्र/घिलांग आदि नृत्य बोलों को सान्दर्य की दृष्टि एवं धर्म के साथ निभाना ही वस्तुतः नृत्य है।

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, कत्थक विभाग, श्री अर्जुनलाल हिरानी कॉलेज, राजकोट

7. हस्तक, निगाह, गर्दन - सब जा रहे हैं पैरों के बोलों के साथ -

हमारे शास्त्रों में लिखा है जिधर हाथ जाएँ उधर दृष्टि, जिधर दृष्टि जाए उधर मन। इसी प्रकार नर्तक दर्शकों को मन के भावों तक ले जाता है। सिर से नख तक बोलों को बरते हुए जाना ही सौन्दर्य में वृद्धि करता है। रचनाएँ खिलकर आती है विशेष रूप से मीड़ की बंदिश, फरमाईशी बढ़यैश, नवहक्का आदि।

8. दायाँ-बायाँ दोनों की तैयारी -

हमारे शरीर में भी दो आँखें/दो कान/दो हाथ/दो पैर हैं। तब भी दाँया-बाँया है ठीक वैसे ही यदि दाहिना पैर तैयार हो और बाँया नहीं तो भी नृत्य के सौन्दर्य भी कमी दिखती है नृत्य के सौन्दर्य में इसका भी बहुत बड़ा तैयारी योगदान है।

9. ध्यान लगाना -

यह बहुत ही सुन्दर बात है, नर्तक नृत्य ही नहीं करता बल्कि ध्यान लगाता है और ध्यान लगवाता भी हैं। दर्शक भी ध्यान में चले जाते है। उन्हें समय/स्थान का ध्यान हीं नहीं रहता है लय-ताल के साथ एक-एक मात्रा पर चिंतन करते हुए, आनंद लेते हुए रस वृष्टि करते हुए काम करना ही ध्यान लगाना है।

10. पलटना -

यहाँ पलटना का अर्थ बात से पलटना नहीं है वरन नृत्य में पलटना शब्द सौन्दर्यात्मक महत्व रखता है। "वाह क्या पलट है- दर्शक या गुरू कई बार ऐसा कहते हैं क्योंकि नृत्यकार की रचनात्मक क्षमता पलट में बखूबी निखर कर आती है। गत में पल्टे, तत्कार के पल्टे आदि जयपुर घराने में गत उठाने से पहले अनेक प्रकार से पल्टे लेने का रिवाज है। पात्र पलटने में भी पल्टे लेना अनिवार्य है। तोड़े-टुकड़े में भी पलट के अंग है जो बहुत सुदंर लगते हैं और नृत्य के सौन्दर्य में चार चाँद लगाते हैं। पल्टों का सर्वंय नर्तक की साधना तथा रियाज़ से बहुत गहरा जुड़ा हुआ है।

11. रंग भरना -

किसी भी बंदिश में सकारात्मक कल्पना शक्ति के अनुसार दर्शकों के हृदय को स्पर्श का केवल, सतुष्टि करना, साधारणीकरण होना ही रंग भरना है जिसका जैसे अपने रंगों द्वारा किसी काल्पनिक कृति को हूबहू दर्शकों के लिए उकेर देता है ठीक वैसे ही बंदिशों में रंग भरते जाना नृत्यकार का निजी सौन्दर्य बुध होता है।

12. मिज़ाज -

मिज़ाज से करना अर्थात नर्तक की हर चीज पर पकड़ होना। लय-ताल-दृष्टि-पद संचालन-अन्तर-सूझबूझ-दर्शकों का रूझान, यह छोटी-छोटी बातें मिलकर मिज़ाज बनाती हैं और नर्तक दर्शकों की वाह-वाही लूटता है।

13. तालीम -

रचनाओं का सौंदर्य तभी पूर्ण रूप से विकसित होता है जब अच्छे गुरूओं से साधक ने तालीम पाई हो। ईमानदारी/निष्ठा/रियाज़ - तालीम की आवश्यक पहलू हैं जो बंदिशों के सौन्दर्य में बढ़ोत्तरी करते है।

14. चीज सिद्ध करना -

सिद्ध करने का अर्थ है सौंदर्य की पराकाष्ठा हो जाना। बंदिश/रचना में कोई भी त्रुटि करना होन अति सुंदर ढंग से बरतते हुए सम तक पहुँचना। इस सम्बन्ध में यह भी उक्ति है कि 40 दिनों तक किसी भी बंदिश को बेगाना रियाज़ करना या चित्त बाँधना साधना की सिद्धि में सहायक होती है।

15. रियाज़ -

कहते हैं कि वक्त और अनुभव ही सबसे बड़ा शिक्षक है। नर्तक द्वारा की गई साधना समय आने पर लोगों को यह कहने पर मजबूर करवा ही देता है कि "रियाज़ दिखता है"।

संस्कृत नाटक एवं संगीत

डॉ. निधि शर्मा

संगीत सृष्टि के आरम्भ से ही विद्यमान रहा है। इसलिए नाद को सृष्टि रचना का आधार माना गया है। मानव अपनी भावनाओं की संगीत के माध्यम से ही प्रकट करता आया है। प्रागैतिहासिक युग, वैदिककाल, पौराणिक काल में संगीत का महत्व मानव-जीवन में दृष्टिपात हो चुका था। भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' को पांचवें वेद की संज्ञा प्रदान कर नाटक तथा संगीत का प्रथम आदिग्रन्थ माने जाने का प्रमुख कारण यह है कि पहली बार नाट्यशास्त्र में संगीत के विभिन्न पक्षों सूक्ष्म दृष्टि से प्रकाश डाला गया। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रथम बार नाट्यशास्त्र में ही संगीत के शास्त्रीय पक्ष पर विस्तृत रूप से चर्चा की। संस्कृत नाटककारों ने भी भरत के इसी मत का समर्थन करके अपने नाटकों में यत्र-तत्र संगीत को स्थान दिया है।

मानव के जीवन में अनेक प्रकार के कार्य आते रहते हैं। निजी जीवन के विभिन्न कार्यों से थककर वह कला की शरण में आता है, जहां उसके मन में दिये भावों को अभिव्यक्ति मिलती है तथा वह समाज के समक्ष एक प्रतिबिम्ब प्रस्तुत कर नए जैसे-हास्य, व्यंग्य, सेवा इत्यादि को दर्शाने के लिए निजी अनुभवों के आधार पर अनुकरणात्मक शैली का अभाव लेकर जो कुछ प्रस्तुत किया जाता है, वह नाटक है। नाट्यकला अत्यधिक प्राचीन कला मानी जाती है। विभिन्न कलाओं का मिश्रण होने के कारण नाटक को मिश्रित कला कहा जाता है।

नाटक शब्द की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा-

नाटक शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वान एक मत नहीं कुछ विद्वानों के अनुसार नट् धातु से तथा कुछ नृत्त धातु से नाटक को उत्पन्न मानते हैं। परन्तु सायण ने दोनों का अर्थ स्पष्ट करते हुए 'नट्' धातु का अर्थ-व्याप्नोति तथा 'नृत्' का अर्थ गात्र् विक्षेपण (अंग संचालन) बताया है।[2] वहीं आचार्य धनंजय ने नृत्त, नृत्य तथा नाट्य तीनों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है-

'अन्यद्भावाश्रयं नृत्यम्' (अर्थात् नृत्य भावाश्रित है)

'नृत्तं तालल्याश्रयम्' (अर्थात् नृत्त ताल-लय आश्रित है)

'रूपकं तत्समारोपात् दशधैव रसाश्रयम्' (अर्थात् नाट्य रसाश्रित है)

इस प्रकार नृत्त, नृत्य तथा नाट्य तीनों भिन्न-भिन्न शब्द हैं तथा नाट्य में नृत्य तथा नृत्य दोनों का समावेश हैं। यथा-

नाट्य	नृत्य	नृत्य
नाट्य दृश्य, श्रव्य विद्या है, जिसमें विशेष संदर्भ तथा अर्थ महत्वपूर्ण है। यह रसाश्रित है नाट्य करने वाले नट नहीं कहलाते हैं	नृत्य मुख्यतः दृश्य विद्या हैं, जिसमें गीत के अर्थो का भाव प्रदीप्त होता है इसे भावाश्रित की संज्ञा दी गई है तथा नृत्य कला विशादर को नर्तक करते हैं	नृत्य मात्र शोभा उत्पन्न करने के लिए विक्षेप है। यह तालल्य आश्रित है।[3]

अतः स्पष्ट है कि नृत्य तथा नृत्य दोनों नाटक में समाहित हैं। इसलिए नाट्य को एक संयुक्त काला माना जाता है, जिसमें सभी कलाओं का योग है। भरत के नाट्यशास्त्र को नाटक का प्रथम आदिग्रन्थ कहा है। इसी ग्रन्थ में भरतमुनि ने नाटक शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ के रूप में इस प्रकार किया है-

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संगीत विभाग, श्री हरकिशन सिंह खालसा पी.जी. कॉलेज, पन्जोखरा साहिब, अम्बाला, हरियाणा

'न तदज्ञानं न तच्छिल्प न सा विद्या, न सा कला।
नासौ योगो, न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।'

अर्थात् कोई ऐसा ज्ञान, शिल्प विद्या, कला योग नहीं, जो नाटक में न आते हों।[4] नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्धों में विद्वानों के मतानुसार नाटक की परम्परा हमारे देश में बहुत पुरानी है, जिस दिन किसी बच्चे ने बड़े व्यक्ति का अनुसरण किया होगा, तभी से नाटक का जन्म हो गया होगा। इस बात को सिद्ध करने के लिए भिन्न-भिन्न तर्क दिये गये, जैसे यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता के प्रसंग से ज्ञात होता है कि शैलूय जाति के लोग व्यावसायिक रूप से नाटकों का प्रदर्शन कर जीविका प्राप्त करते थे। ऋग्वेद के पुरुखा-उर्वशी, यम-यमी, इन्द्र-इन्द्राणी, वृष-कपि, सरमा-पविस आदि सवांग प्रसंगों में नाटक कला की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। 'कात्यायन' 'श्रोतश्रुत' से सोमपान के अवसर पर लघु-अभिनव (नाटिका) का भी प्रसंग है।[5] नाटक की परिभाषा करते हुए विद्वानों ने कहा है-

'योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखसमन्वितम्।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्याभिधीयते।।'[6]

अर्थात् नाटक जीवन के सुख-दुःख के संयुक्त जीवन का दृश्य है। भारतेन्दु के अनुसार नाटक शब्द का अर्थ है- नट लोगों की क्रिया।[7]

"According to Nicol –

Drama is the art of expressing ideas about life is such manner as to render the expression capable in interpretation by section and likely to witness an audience assembled to hear the words and intness the actor"[8]

अर्थात् नाटक जीवन के विभिन्न भावों को प्रदर्शित करने की कला है, जिसमें अभिनेता दर्शकों की रूचि के अनुरूप विभिन्न कार्यों द्वारा अपने भावों को प्रस्तुत करता है।

नाटक के भेद एवं तत्त्व-

भरत मुनि तथा भारतीय संस्कृत आचार्यों ने नाट्य के दो भेद स्वीकार किये हैं- (1) रूपक[9] (2) उपरूपक[10]। रूपक में रस की प्रधानता है, जबकि उपरूपक में नृत्य-नृत्य आदि प्रमुख रहते हैं। वस्तु तत्व शब्द का अर्थ है- 'वास्तविक विषय', जैसे घड़ा बनाने के लिए मिट्टी तथा पानी अनिवार्य तत्व है, वैसे ही नाटक के अनिवार्य तत्वों में उन सभी तत्वों का समावेश है, जिनसे नाटक की रचना होती है। संस्कृत के आचार्यों ने नाटक के तीन तत्व माने हैं- (1) वस्तु (2) नेता (3) रस।[11]

इस प्रकार नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत नाटकों के विभिन्न पक्षों का विस्तृत अध्ययन मिलता है, जिसे नाटक का प्रथम आदिग्रन्थ माना जाता है। यद्यपि नाट्यशास्त्र वैसे तो नाट्य के लिए प्रसिद्ध है। परन्तु इसमें संगीत से सम्बन्धित 6 अध्याय हैं, जो पूर्णतः संगीत पर दृष्टिपात करते हैं। 'नाट्यशास्त्र में संगीत के आधारभूति पहलुओं पर प्रथम बार विस्तृत अध्ययन किया गया, ऐसा कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। संगीत का सूक्ष्म शास्त्रीय विवेचन, भरतमुनि की संगीत जगत को महान् देन कही जा सकती है।

प्राचीन काल में संगीत को नाटक का एक आवश्यक अंग माना जाता था। इसलिए नाट्यशास्त्र में संगीत के विभिन्न विषयों की विस्तृत व्याख्या की गई है। "नाट्य के शिलान्यास पर वीणा, दुन्दुभि, मृदंग, पणव आदि समस्त तूर्यों का वादन किया जाना चाहिए, ऐसा नाट्यशास्त्र का आदेश है। नाटक की आरम्भिक अवस्था से लेकर अन्त तक संगीत का प्रयोग बराबर होता रहा है।[12] डा. शरच्चन्द्रबीर परांजपे के अनुसार-

भारत का नाट्यशास्त्र भारतीय साहित्य तथा संगीत का वृहद कोष है तथा दोनों के सम्बन्ध में प्राचीन एवं प्रमाणिक सामग्री प्रस्तुत करता है।[13] भारतीय साहित्य के अन्तर्गत संस्कृत साहित्य में नाटकों में संगीत का एक विशेष महत्व है, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

संस्कृत नाटकों में संगीत-

संस्कृत नाटकों के शिरोमणि कालिदास ने अपने नाटकों में भिन्न-भिन्न अवसरों जैसे- पूर्व भावाभिव्यक्ति इत्यादि में संगीत को नाटक का

सूत्रधार के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने स्थान-स्थान पर संगीत के माध्यम से कथा को आगे बढ़ाते हुए संगीत का प्रयोगिक पक्ष प्रस्तुत किया है। संगीत कुशल पात्रों के माध्यम से गायन, वादन तथा नृत्य तीनों पक्षों पर समान रूप से प्रकाश डालता है। कालिदास द्वारा बहुत सुन्दर तरह से नाटकों में संगीत का प्रयोग, उनकी सांगीतिक कुशलता का परिचायक है।

संस्कृत नाटकों में संगीत का प्रमुख स्थान है ये नाटक कवित्वपूर्ण शैली प्रतीकात्मक एवं आदर्श मूलक है। अभिनय पक्ष में नृत्य तथा अभिन्य को नृत्य कर पाना कठिन है। ये नाटक नैतिक, आध्यात्मिक तथा सौन्दर्यपरक मूल्यों की ओर संकेत करते हैं। इसलिए इन नाटकों में त्रासदी को प्रमुखता न देकर आनन्द प्राप्ति करना मुख्य उद्देश्य रहता है। संघर्ष, निराशा के पश्चात् विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त कर सुख की ओर अग्रसर होता है।

इसके साथ-साथ प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर भी ध्यान आकृष्ट करवाना, संस्कृत नाटकों की मुख्य विशेषता मानी गई है। संस्कृत के नाटकों में विशेष रूप से छह नाटककारों का योगदान सराहनीय माना गया है।

1. भास-

भास की उत्कृष्ट रचना 'स्वप्नवासवादत्तम्' मानी गई है। उस समय यह (भास) राजा के अधिकाधिक निकटवर्तियों में से माना जाता था।

2. कालिदास-

कालिदास को संस्कृत नाटककारों में सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया। उनका 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक अत्यधिक प्रसिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त उनके 'मालविकाग्निमित्रम्' तथा 'विक्रमोवर्शीयम्' नाटक भी प्रसिद्ध रहे।

3. हर्ष-

राजा हर्ष जिनका कालिदास सातवीं शताब्दी माना गया है, इन्होंने तीन संस्कृत नाटक लिखे, जिनमें से 'रत्नावली' नाटक अत्यधिक प्रसिद्ध हुआ।

4. विशाखादत्त-

इनका 'मुद्राराक्षस' नाटक अत्यधिक लोकप्रिय हुआ।

5. भवभूति-

भवभूति के तीन नाटक 'उत्तररामचरितम्', 'महावीरचरितम्' तथा 'मालतीमाधव' अत्यधिक लोकप्रिय रहे।

6. शूद्रक-

शूद्रक का नाटक 'मृच्छकटिकम्' अर्थात् मिट्टी की गाड़ी अत्यधिक सुप्रसिद्ध नाटक है।

संस्कृत नाटककारों में से कालिदास के नाटकों में संगीत का व्यापक रूप से प्रयोग देखने को मिलता है। जो निम्नवत् हैं-

कालिदास के नाटकों में संगीत योजना-

कालिदास का युग ललित कलाओं की दृष्टि से चरमोन्नति का युग रहा है। इस युग में नाट्य, संगीत तथा नृत्य के प्रदर्शन हेतु प्रेक्षागृहों का निर्माण किया जाता था। नाट्य का प्रारम्भ वाद्यों के वृन्दवादन में होता था। दूसरे शब्दों में कहें तो नाट्यशास्त्र की तरह नाटक के पूर्वरंग संगीत की बहुलता से परिपूर्ण होता था। सम्पूर्ण नाटक में संगीत के दो रूप होते- प्रथम तो तब जब कोई पात्र स्वयं किसी पद्य को गीत रूप में प्रस्तुत करे। द्वितीय नाटक की प्रस्तुति के साथ-साथ लगातार संगीत चलता रहता था। जैसा आज कल चलचित्रें (Background Music) में देखने को मिलता है।[11]

कालिदास के नाटकों में पूर्वरंग का विधान-

नाट्य प्रस्तुति से पूर्व जो वाद्यवृन्द प्रस्तुत किया जाता था उसे कालिदास ने 'संगीत रचना' की संज्ञा दी है।[15] पूर्वरंग से तात्पर्य मंगलाचरण, देवाराधना से है जो नाटक प्रारम्भ होने से पूर्व की जाती है।[16] 'मालविकाग्निमित्रम्' में विदूषक गौतम का कथन है कि दोनों वर्ग प्रेक्षागृह में अपनी-अपनी संगीत रचना पूरी करके हमारे पास दूत भेज दे अथवा मृदंग का स्वर स्वयं बता देगा कि संगीत की तैयारी पूरी हो गयी है-

'तेन हि द्ववि वर्गो प्रेक्षागृहे संगीतरचनां कृत्वात्रभवतो दूतं प्रेषयतिम् अथवा मृदंग शब्द एव न उत्यापयिष्यति।[17]

नाट्य के प्रारम्भ में गीत एवं संगीत दर्शकों की चित्रवृत्ति को नाट्य की कथावस्तु की ओर पूर्णतः केन्द्रित करने के उद्देश्य से प्रयुक्त किया जाता था।

कालिदास के नाटकों में पूर्वरंग का विधान स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। अभिज्ञान शाकुन्तलम्[18], मालविकाग्निमित्रम्[19], तथा विक्रमोर्वशीयम्[20] में पूर्वरंग के अंगों का उल्लेख प्राप्त होता है। कालिदास में भी भरतमुनि का ही अनुसरण कर पूर्वरंग को अपने नाटकों में मान्यता दी है। उन्होंने अपने नाटकों में रंगद्वार, चारी, प्ररोचना आदि का स्पष्ट रूप से प्रयोग प्रस्तुत किया है।

कालिदास के नाटकों में संगीत-

भरत कृत नाट्यशास्त्र में नाटक में संगीत में विभिन्न पक्षों पर विवरण दिया गया, जबकि संस्कृत नाटकों में 'नाटक में किस-किस प्रकार से तथा कहां-कहां संगीत प्रयोग हो सकता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। विशेषकर कालिदास के नाटकों में स्वर, गीति, तान, ग्राम, मूर्च्छना आदि के विषय में स्थान-स्थान पर वर्णन मिलता है। कालिदास के पात्रों को संगीत का प्रचुर ज्ञान था। नाटक में पात्रों के माध्यम से कालिदास ने संगीत का प्रयोग किया है।

कालिदास के नाटकों में वर्ण, ग्राम तथा मूर्च्छनाओं का वर्णन

अभिज्ञानशाकुन्तलम् के पंचम अंक में हंसपादिका नामक पात्र को संगीत में कुशल बताया गया है। हंसपादिका का संगीताभ्यास का वर्णन करते हुए कालिदास कहते हैं-

"भो वयत्य संगीतशालाऽभ्यन्तरेऽवधानं देहि
कलविशुद्धाया गीतेः स्वरसंयोगश्रूयते
जाने तत्रभवती हंसपादिका वर्ण परिचयं करोतीति।"[21]

इस प्रकार नाटक मालीवकाग्निमित्रम् में मध्यम ग्राम का उल्लेख किया गया है-

'निहीदिन्युपाहितमध्यमस्वरोत्या मायूरी मदयति मार्जनांमनांजि।"[22]

वहीं कुमारसम्भव में तथा उत्तरमेघदूतम्[23] में मूर्च्छनाओं का वर्णन प्राप्त होता है-

"स व्यबुध्यतबुधस्तवोचितः शातकुम्भकलाकरैः समम्।

मूर्च्छनापरिगृहीतकैशिकैः किन्नरैरूशसि गीत मंगलः।"[24]

स्पष्ट है कि कालिदास ने ग्राम, मूर्च्छनाओं, वर्णों व स्वरों का प्रयोग अपने नाटकों में किया है।

कालिदास के नाटकों में रागों का वर्णन-

कालिदास के नाटकों में रागों का वर्णन मिलता है। विशेष रूप से सारंग, ललित व कैशिक रागों का उल्लेख स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है-

राग सारंग- हिरण के संदर्भ में राग सारंग का वर्णन मिलता है-

"तवास्मि गीतरागेवा हरिणा प्रसर्भ हतः।
एशः राजवे दुष्यन्तः सारगेणातिरहन्सा।"[25]

राग ललित-

"तै सन्धिशु व्यंजिततवृत्तिभदं रसान्तरेशु प्रतिबद्धरागम्
अपश्यतामप्सरसां मूर्तं प्रयोगमाद्यं ललितांगहारम्।"[26]

राग कैशिक-

"स व्यबुध्यत बुधस्तवोचितः शातकुम्भकमलाकरैसमम्
मूर्च्छनापरिगष्हीत कैशिकेः किनरै गीतमंगलः।"[27]

रागों के उल्लेख के साथ-साथ कालिदास ने उनके समयानुसार गायन का भी महत्व दर्शाया है।

"आर्थे साधु गीतम्! अहो रागावबद्धचित वृतिरालिखित इव सर्वतो रंग।"[28]

कालिदास के नाटकों में वाद्यों का प्रयोग-

महाकवि कालिदास ने चार प्रकार के वाद्य यन्त्रों तत्, सुषिर, अवनद्ध, धन का प्रयोग किया है। तत् वाद्य यंत्रों में वीणा, वल्लकी, तंत्री का प्रयोग किया है तो दूसरी ओर वीणा की दो दशाओं-सुतंत्री तथा वितंत्री के साथ-साथ वीणा वादकों को भी दो श्रेणियों में बांटा है- वीणिन्, प्रवीण।[29] कालिदास ने अपनी

कृतियों में नायक के साथ-साथ नायिका को भी वीणावादक के रूप में प्रस्तुत किया है। मेघदूत की नायिका वाहिनी कुशल वीणावादक के रूप में प्रस्तुत की गई है।

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य, निक्षिप्य वीणाम्
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद्
भूयोभूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती।।[80]

अर्थात् यक्ष अपनी पत्नी के विषय में कहता है- हे! प्रियदर्शन् मेघ, मेरी विरहिणी प्रिया इस वियोग काल में धूसरित वस्त्र पहनकर मेरे नाम से युक्त गीत गाने की इच्छा कर रही होगी। आँसुओं के गिरने से वीणा के तार भीग रहे होंगे। फिर वह आंसू पोंछकर तारों को मिलाकर जैसे ही गाने को तत्पर होगी तो उसी समय विरह के कारण स्वनिर्मित मूर्च्छनाओं को बार-बार भूल जाती होगी।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि वीणा वादन तथा उसके मिलान की विधि से यक्ष पत्नी भली भाँति परिचित थी। वीणावादन के साथ-साथ गायन की ओर भी कालिदास ने प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त कालिदास ने अनुशासन गीत, घोषणा गीत, आश्वासन गीत, उत्सार गीत, विरहगीत, क्षमा-प्रार्थना गीत, सौन्दर्य गीत, आनन्द गीत आदि का सुन्दर वर्णन किया है। कालिदास ने गीतों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति पर बल दिया है।

अतः आदिकाल से ही नाटकों में संगीत का प्रयोग होता आ रहा है। नाट्यशास्त्र में नाटककला के लिए संगीत को प्रमुख सहायक मानकर शास्त्रीय पक्ष की व्याख्या की गयी, तो वहीं संस्कृत नाटकों में संगीत मानवीय जीवन से जुड़कर नाटक की कथावस्तु में ही समाहित-सा प्रतीत होता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखने पर ज्ञात होता है कि हिन्दी फिल्मी संगीत का उद्देश्य विशेष परिस्थिति या घटना के भावों को ऐसे ढंग से प्रस्तुत करना है, ताकि दर्शकों पर भावाभिव्यक्ति के माध्यम से प्रभाव डाला जा सके। इसी उद्देश्य से कालिदास ने संगीत के माध्यम से भिन्न-भिन्न परिस्थितियों तथा घटनाओं को दर्शकों के समक्ष उजागर कर रस प्रदान करने का प्रयत्न किया है।

स्पष्ट है कि नाटक में संगीत का प्रयोग जहां एक ओर दर्शकों पर सार्थक प्रभाव डालता है, वहीं दूसरी तरफ नाटक की प्रस्तुति में भी चार चांद लगा देता है।

संदर्भ

1. जयदयाल-नाट्यशास्त्र और अभिनय कला, पृ. 151
2. मलिक बलजीत सिंह, भगवती वर्मा के नाटक: संरचनात्मक विश्लेषण, पृ. 29
3. (क) दीक्षित डा. दुर्गा, नाटक और शैलियां, पृ. 38
   (ख) लक्ष्मीनारायण- देखना और जागना, पृ. 21
   (ग) सीताराम झा श्याम- नाटक और रंगमंच, पृ. 17
4. डा. बच्चन सिंह-भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन, (नाट्यशास्त्र से उद्धृत), पृ. 306
5. पालीवान डा. रीतारानी, रंगमंच नया परिदृश्य, पृ. 109
6. नाट्यशास्त्र, प्रथम अध्याय, श्लोक 119
7. भारतेन्दु हरिशचन्द्र, भारतेन्दु नाटकावली, भाग-2, पृ. 421
8. Nicol – the theory of drama, page 35
9. डा. सोमनाथ गुप्ता, हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, पृ. 1
10. सुरेशचन्द्र शुक्ल, कु. नीलम मसन्द, हिन्दी नाटक और नाटककार, पृ. 9-11
11. 'वस्तु नेता रसस्तेशा'- धनंजय कृत दषरूपकम्, व्याख्याकार, भोलाशंकर व्यास, पृ. 7
12. डा. पूनम मिश्रा, प्राचीन भारत में संगीत, पृ. 94
13. डा. शरच्चन्द्रश्रीधर परांजवे, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. 282
14. कुलश्रेष्ठ डा. सुषमा, कालिदास साहित्य एवं संगीत कला, पृ. 270
15. कालिदास, मालविकाग्निमित्रम्, पृ. 30, 34
16. डा. रामसागर त्रिपाठी, भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच, पृ. 69
17. कालिदास मालविकाग्निमित्रम्, पृ. 30
18. "आपरितोषदिषं न साधु मान्ये प्रयोगविज्ञानम्

बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतं ।।
रंगद्वार का उल्लेख कालिदास-अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/2

19. "अभिहितोऽस्मि विद्वत्परिवदा कालिदासग्रयितवस्तु मालविकाग्निमित्रं।
नाम नाटकमस्मिन्वसन्तोत्सवे प्रयोक्तव्यमिति! तदारम्यतां सङ्गीतकार।"
प्ररोचना, कालिदास, मालविकाग्निमित्रं, पृ. 2

20. "वेदान्तेशु यमाहुरेकपुरूषं निःश्रेयसायास्तुवैः।"
रंगद्वार, विक्रममोर्वशीयम्, कालिदास, 1/1

21. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 5, पृ. 79
22. कालिदास, मालविकाग्निमित्रम्, 1/21
23. कालिदास, उत्तरमेघदूत, 26
24. कालिदास, कुमारसंभव, 8/85
25. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 1, पृ. 5
26. कालिदास, कुमारसंभव, 7/91
27. कालिदास, कुमारसंभव, 8/85
28. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 1, पृ. 42
29. कालिदास, कुमारसंभव, 7/48
30. कालिदास, मेघदूत, 2/25

गुरू गोविन्द सिंह रचित 'चण्डी दी वार' वीर रसी गाथा : गेय विधा की उत्तम संरचना

(पटना में मनाए जाने वाले गुरू गोबिन्द सिंह के 350 वर्ष के प्रकाश पर्व के उपलक्ष्य में विशेष)

डा. सोनदीप मोंगा

साहित्य कला के काव्य स्वरूप में संगीतमयी संम्भावनाएं अतिअधिक प्रबल रहती हैं। संगीत मन का आकर्षण हैं जो रस के बोध के कारन, श्रोतागणों के हृदय तक आसानी से पहुंच पाता है। मध्यकालीन युग में राजनैतिक फेर बदल का समय था तो तब संगीत में वीर रस की प्रधानता थी। जिसका उद्देश्य जन चेतना प्रवाहित करना होता था। मानव जीवन का सच्चा अनुभव बतलाता है कि मानव जीवन केवल विलासता ही नहीं एक साधना है, एक संग्राम है चाहे फिर वह किसी भी रूप में हो। इसलिए वीर रस भी जीवन में प्रधानता रखता है। स्थाई और अस्थाई प्रभाव दोनों ही इस रस की उत्पत्री में सहायक माने जा सकते हैं। जिसमें सर्वजनक भाषा में मन को प्रेरित करने वाले शक्तिशाली शब्दों का प्रयोग हो, वहीं वीर रस उत्पन्न होता है।

युगकालीन परिस्थितियां निर्धारित करती हैं कि समाज को किस तरह की वीरता की आवश्यकता है। पंजाब को भारत की 'खड़ग भुजा' कहा जाता है क्योंकि आदि काल से ही यहां पर धाड़वीयों और वैरियों ने हमले किये और पंजाब के युद्धवीरों ने उनका जम कर मुकाबला किया। इन्हीं तलवारों की खनक में पंजाब की वीर गाथाओं की संरचना हुई। गुरू गोविन्द सिंह ने भी सिक्ख धार्मिक परम्परा में नारी की वीरता को दर्शाने के लिए एक पौराणिक कथा के विषय से जन मानस को संगीतमयी वीर रस युक्त गेय विधा 'वार' प्रदान की जो उस समय एक सामाजिक नव क्रान्ति की तरह लोगों में प्रचलित हुई। जैसे कारलाईल (Carlyle) लिखते हैः

'Let Nature send a Hero Soul, in no age is it other than possible that he may be shaped in to a poet.'[1]

'चण्डी दी वार' नायक और खलनायक जैसे महाकालिक, दोनों रूपों को निर्पक्ष रूप में पेश करती है वह निश्चित रूप में प्रेरणा स्वरूप है। जीवन के महान संघर्ष रूपी पथ पर काटों की सेज़ पर मुस्कुराना और आन्नद का अनुभव करना जीवन का उच्च शिखर माना जाता है। सिक्खों के दशम गुरूः गुरू गोविन्द सिंह भी ऐसे ही जीवन संग्राम के सुरमा शहंशाह थे जो अपने पूरे परिवार का बलिदान देकर गायन कर सकते थे जैसे किः

मित्र प्यारे नू हाल मुरीदां दा कहणा

यही जीवन विजय का रहस्य है इसी 'चड़दी कला' एवम जीवन आशा से वीर रस प्रवाहित हुआ जो उनके काव्य में वीर रस बन कर छलका। उनका मैनीफैस्ट (Manifest) भी यही अभिव्यक्ति कर रहा है किः

देहि शिवा वर मोहे इह
शुभ करमन ते कबहूं न टरूं

सहायक आचार्य, सरकारी कॉलेज, रूपनगर, पंजाब

न डरों अर सिऊं जब जाए लरों
निश्चय कर अपनी जीत करूं।

इस लिए उन्होने शास्त्र और शस्त्र दोनों के ज्ञान को अनिवार्य माना। यही महाशक्ति ने उनकी काव्य अनुभूति में वीर रस को प्रतिपादित किया। उनके द्वारा रचित काव्य, शमशीरों और तीरों के वेग के साथ चलती हुई, ताल छन्द और शब्द को प्रवाहित करती जैसे जीवन रक्त में साहस भरती है और आत्मिक प्रकाश को प्रज्वलित करती है। इसी लिए उन्होंने प्रमात्म शक्ति की वीरता में अनुभूति करके अराधना की या यूं भी कहा जा सकता है कि उन्होने अपने काव्य में भगवान को इसी स्वरूप में दर्शाया और वैसे ही शब्द प्रयोग किए :

The Tenth Guru invented new names for God Akal (The immortal), Sarbloh (All Steel), Mahaloh (Greet Steel), Sabkal (All Death), Mahakal (Great Death)'.[2]

लेकिन इसमें भी उनकी विलक्षणता यह भी है कि उन्होने नारी को परमात्म शक्ति स्वरूप नायका लिखा। गुरू परम्परा में पहली बार भारतीय नारी को सबल बताया गया था, यह बहुत बड़ा सामाजिक परिवर्तन था जिसे काव्य और संगीतमयी ढंग से इस 'चण्डी दी वार' में प्रस्तुत किया गया। जिससे वीर रस का प्रतिपादन होता है। कविजन मानते हैं कि इस वार की प्रत्येक पंक्ति संगीत लय युक्त और गये लक्षणों से भरपूर है।

सिक्खों के दशम गुरूः गुरू गोविन्द सिंह जी एक उत्तम कवि और संगीतक सूझ बूझ रखने वाले महापुरूष थे। उनके दरबार में 52 कविजन हर समय मौजूद रहते थे। उन्होनें 'चण्डी दी वार' को जैसे रचा, उससे उनकी काव्य कला और संगीत कौशल प्रस्तुत होता है। इसकी शब्द सरंचना में जैसे शब्द प्रयोग किये गये हैं वह इसको संगीतमय लय में बांधते हैं। जैसे देखा जा सकता है कि हर पंक्ति का अंतिम शब्द अलंकृत रूप में संगीत लय पेश कर रहा है की जैसेः

बीर परोते बरछी ऐं, जण डालि चमूटे आवले
इक बढ़े तेगी तड़फीअन, मद पीते लोटन बावले
इक चूण चूण झाडों कढ़ीअन रेत बिचों सोईना डावले
गदा, त्रिसूला, बर्छियां तीर वगन खरे उतावले
जण इसे भुजंगम सावले, मर जावन बीर मलावले।

यह संपूर्ण काव्य छन्द युक्त एवम संगीतमयी है, जैसे टी. एस इलियट (T.S. Eliot) का मत है:

The Music of verse is not a line by line matter but a Questions of the whole poem."[4]

क्योंकि छन्द ही काव्य रचना को संगीतक बन्दिश का अनुशासन प्रदान करता है। इसका आधार शब्द ध्वनि ही रहता है। संगीत अपने आप में शब्द-ध्वनि का ही सहज धर्म है। शब्दों की संगीतक व्यवस्था से ही लैय उत्पन्न होती है इसी का स्वरूप है छन्द।

गुरू साहिब ने 'चण्डी दी वार' को ऐसे ही छन्द विधान के साथ रचा जिसको लोक गायन रूप 'वार' में प्रस्तुत किया गया। इस वार में 'पऊड़ी' सिरखण्डी छन्द को तीन रूपों में प्रयोग किया गया। जिनमें विभिन्न मात्राओं का प्रयोग मिलता है जैसे कि पहली प्रकार के रूप के अनुसार प्रथम विश्राम 12 मात्र पर आता है और दूसरा 1 मात्रा पर, दोनों के अंत में गुरू का प्रयोग मिलता है जैसे :

चोट दमामे पाई, दलां मुकाबला
देवी दसत नचाई, सीहण सार दी।

सिरखण्डी छन्द के दूसरे रूप में प्रथम विश्राम 12 मात्रा पर और दूसरा 10 मात्रा पर आता है और अंत में गुरू और मध्य में अनुप्रास का संयोग बनाया गया है इसमें कुल मिला कर 22 मात्रा का प्रयोग किया गया है जैसेः

सटट पठ्ठी जमधाणी, दलां मुकाबला
धूह लई कृपाणी, दुर्गा म्यान ते
चण्डी राखश खाणी, वाही दैंत नो
कोपर चूर चुवाणी, लथ्थी कर्ग लै
रण विचच घतती घाणी, लहु मिझ दी।
चारे युग कहाणी, चलग तेग दी।
बिधण खेत विहाणी, महखे दैंत नो।[5]

सिरखण्डी छन्द का एक तीसरा रूप भी 'चण्डी दी वार' में प्रयोग हुआ, जिसमें 24 मात्रा प्रयोग की गई है। प्रथम विश्राम 14 मात्रा पर और दूसरा विश्राम 10 मात्रा पर किया गया। जैसेः

देवी आप चलाईयां, तक तक दानवां
लहु नाल डुबाईयां, तेगां नंगीयां
सारसती जण नाईयां, मिल कै देवीयां
सभे मार गिराईयां, अन्दर खेत दै
तिदुं फेर सवाईयां होईयां सुरतां।"

इस वार के छन्द गायन के समय सारंगी और मृदंग साजों का प्रयोग करने की परम्परा मानी गई है। इसके गायन के उपलक्ष में यह देखा गया है कि मात्राओं की गणना का कम-ज्यादा होना इसकी भाव अभिव्यक्ति पर निर्भर करता है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि मात्राओं के अनुशासन की पालना संगीत लय के अनुसार ही की गई ना कि किसी विशेष नियम के अर्न्तगत रखकर। लेकिन फिर भी इसकी गायन शैली में वीर रस अनुकूल रूप में प्रस्तुत होता है। इसमें अनुभव (Feeling), भाव (Emotion), आवेग (Passion), इन्द्रीयत (Sensousness) सर्म्पूण दृश्य बिम्ब, झलकते है, जो इसे सजीव गाथा के रूप में पेश करने में सहायक है।

संदर्भ :-

1. Thomas Carlyle, On Heroes, Hero – Worship and the Heroic in History, P. 311-312.
2. Max Author Macculiffe The Sikh Religion', Vol V, 1909, Ed.
3. चण्डी दी वार, पऊड़ी आठवीं
4. T.S. Eliot, The Music of Poetry, On Poetry and Poets, P. 36
5. चण्डी दी वार, पउड़ी दसवीं
6. वही -, पऊड़ी उनीसवीं
7. वही -, पऊड़ी चालीसीवीं

तबला वादन में विभिन्न रचनाओं के गणीतीय स्वरूप

डॉ. विवेक फड़नीस

भारतीय संगीत जगत में वाद्यों का प्रयोग अति प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। आदि ग्रंथ सामवेद में सामगान के साथ प्रयुक्त भूमिदुन्दुभि, वेणु, वाण, वीणा, अघाट, अघाटी, वनस्पति इत्यादि वाद्यों का प्रयोग इसका प्रमाण है। सभ्यता के पूर्व जब भाषा का विकास न हुआ था, कंठ संगीत का जन्म तक न हुआ था, वाद्यों का जन्म हो चुका था। संगीत का सबसे प्राचीन एवं प्रमाण ग्रंथ **भरत मुनि** का **''नाट्यशास्त्र''** है। जिसमें भरतमुनि ने 28वें '(आतोद्य विधान) में सर्वप्रथम वाद्यों का वर्गीकरण कर वाद्यों को तत्, सुषिर, घन व अवनद्ध चार प्रकार का बताया है। ''तर्तचैवावनद्धंच घनं सुशिरमेव च। चतुर्विधंतु त्रिज्ञैरातोद्यं लक्षणान्वितम्।''

''नाट्यशास्त्र'' का 33वां अध्याय ''अवनद्धातोद्य विधान है''। इसमें अवनद्ध वाद्य की उत्पत्ति, लक्षण, उपयोगिता, वाद्यों का स्वरूप , पाटाक्षर आदि का सविस्तार वर्णन किया है। भरत ने अपने ग्रंथ ''नाट्यशास्त्र'' में जिन वाद्यों का उल्लेख एवं वर्णन किया है वह इस प्रकार है- पुश्कर, मर्दल, मृदंग, पणव, दर्दुर, भूमि, दुंदुभी, झल्लरी, पटह। इसी श्रृंखला में 13वीं सदी के **शारंगदेव** कृत ''संगीत रत्नाकर'' ग्रंथ मध्य युगीन संगीत का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना जाता है। इस ग्रंथ का 6वां अध्याय वाद्याध्याय है, इसमें भी शारंगदेव जी ने वाद्यों को चार भागों तत, सुषिर, घन व अनवद्ध में विभाजित किया है।

''वाद्य तन्त्री ततं वाद्यं सुषिर मतम्।?
चर्माविद्धवदनवनद्धं तु वाद्यतू।।
घनामूर्तिः साऽशभयाताद्यधर्ते-यंत्र तद्घनम्।।''

शारंगदेव जी ने अपने ग्रंथ ''संगीत रत्नाकर'' में जिन अवनद्ध वाद्यों का वर्णन किया है वे इस प्रकार है- पटह, मर्दल, मृदंग, हुडुक्का, करटा, घट, दवस, डक्का, कुडुवा, घडस, रुंजा, डमरुक, पेंडिक्का, डक्कुली, सेल्लुका, झल्लरी, भाण, त्रिवली, दुंदुभी, भेरी निस्साण, तुम्बकी।

वर्तमान काल में उत्तर भारतीय संगीत में प्रयुक्त होने वाले अवनद्ध वाद्यों में प्रमुख स्थान ''तबले'' को प्राप्त है, इसके पूर्व यही स्थान पखावज या मृदंग को प्राप्त था। उत्तर भारत के पूर्व मध्य युग में ध्रुवपद-धमार जैसी गंभीर गायन शैली का प्रचार था। जिसके साथ पखावज का प्रयोग किया जाता था।

यह तबला मुख्यतः गायन, वादन तथा नृत्य की संगति में प्रयुक्त होता है। आज कल तबले का प्रयोग स्वतंत्र वादन में भी किया जाने लगा है।

''तबला वाद्य'' की उत्पत्ति कब हुई? किसने की? तथा कैसे इसके शास्त्र व क्रियात्मक पक्ष का विकास हुआ? इस सन्दर्भ में कोई विश्वसनीय जानकारी प्राप्त नहीं हो पायी है। जो जानकारी है उस सन्दर्भ में सभी संगीत शास्त्री का एक मत नहीं है।

तबला वादन को आधुनिक रूप देने का श्रेय दिल्ली के प्रसिद्ध **''उस्ताद सिद्धार खाँ ढाड़ी''** को है जिन्होंने पखावज के बोलों को तबले के योग्य बनाया तथा उसके रूप में सुधार लाकर आधुनिक तबले का रूप देकर इसका प्रचार किया और सर्वप्रथम दिल्ली के प्रसिद्ध घराने **''दिल्ली घराने''** की नींव डाली और इसी श्रृंखला में तबले कि विकास के

प्रवक्ता, प्रवर श्रेणी, व्यावसायिक कला विभाग, कला संकाय, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय वि.वि. चित्रकूट

साथ-साथ वंश परम्परा एवं शिष्य परम्परा ने भारत में तबले का प्रचार किया और विभिन्न घरानों **अजराड़ा घराना, लखनऊ घराना, फरुखाबाद घराना, बनारस घराना एवं पंजाब घराने** की नींव पड़ी।

जिस प्रकार प्रत्येक भाषा में कुछ अक्षर होते हैं जिन्हें 'वर्ण' कहा जाता है, उसी प्रकार तबले में जिन अक्षरों का प्रयोग किया जाता है, उन्हें वर्ण कहते हैं। कुछ लोग इन्हें सात और अधिकांश लोग दस मानते हैं। इन वर्णों को अलग-अलग संयुक्त करके बोलों का निर्माण किया जाता है और इन बोलों को हम तबले पर बजाते हैं, जिससे तबले की भाषा का जन्म होता है। जब हम इन बोलों को सुन्दर ढंग से शास्त्रों में बताये गये ताल सिद्धान्त के अनुसार एक सूत्र में पिरोते हैं तो उनसे रचनायें बनती है, इन्हें रचनाओं ने तबले के विकास एवं व्यापकता को इतने उच्च शिखर तक पहुंचा दिया है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

आज विभिन्न प्रकार की रचनाएं तबले के कलाकारों द्वारा प्रस्तुत की जाती है जिसे एक विशेष नाम दे दिया जाता है। वर्तमान समय में तबला वादन में प्रयुक्त रचनाओं के साहित्य का विकास इतना अधिक हो चुका है कि उसे पूर्ण रूप से समझना, सीखना तथा उसके गणतीय स्वरूप की विवेचना कर पाना अत्यन्त कठिन है। तबले के जन्म के साथ-साथ धीरे-धीरे उसकी रचना में निरन्तर वृद्धि होती गयी और तबले के पूर्वजों, विद्धानों व कलाकारों ने रचनाओं का एक ऐसा संग्रह एकत्रित कर लिया, वास्तव में रचनाओं का शास्त्रोत्तर रूप से एवं क्रियात्मक रूप से जो विकास हुआ है उसका गणीतीय स्वरूप है।

तबले के स्वतंत्र वादन में विभिन्न रचनाएं प्रस्तुत की जाती है जिसे बंदिशों के नाम से जाना जाता है। जैसे-पेशकार, कायदा, रेला, गत, टुकड़ा, परन, चक्करदार परन, फरमाईशी, कमाली परन, तिहाइयां आदि। हमारे पूर्वजों ने यह जो रचनाएं की हैं वह नाट्यशास्त्र, संगीत रत्नाकर आदि ग्रंथों में दिये गये **"ताल-लय"** नियम चक्र के आधार पर की है और इस बात को हम प्रमाण से कह सकते हैं कि यह सिद्धान्त गणित पर आधारित है। निश्चित रूप से इन रचनाओं का एक गणीतीय शास्त्र आवश्यक है जिससे हम रचनाओं के गणीतीय स्वरूप को पहचानकर उसको अमुख नाम से प्रदान कर दें जैसे- पेशकार, कायदा, रेला, गत, टुकड़ा, परन, तिहाई आदि। जिस प्रकार "संगीत चिन्तामणि" ग्रंथ में तिहाईयों का चक्र उसके रचना सिद्धान्त को बड़े ही सुन्दर ढंग से गणित के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। तबले के कलाकारों एवं पूर्वजों ने इतने सुन्दर ढंग से रचनाओं को गणतीय सूत्र में पिरोया है।

आधुनिक युग में उत्तर भारतीय संगीत के अवनद्ध वाद्यों में तबले का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। तबले की सफलता का राज हमें उसकी बंदिशों के विपुल भंडार में दिखायी देता है। बंदिशें भी ऐसी जो परम्परा और गुणवत्ता की दृष्टि से पूर्वज वाद्य पखावज से सम्बद्ध और समृद्ध हैं, साथ ही उन बंदिशों में विस्तार की भी अपूर्व संभावनायें हैं। तबले की विस्तारशील बंदिशों में कायदे को सबसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

अब प्रश्न यह उठता है कि कायदे में ऐसी कौन सी विशेशता है जिसके कारण इसने तबले को अवनद्ध वाद्यों में प्रथम स्थान दिलाया है। वस्तुतः तबले के कुछ वर्णों को चुनकर तथा इन्हें एक विशेष नियमबद्ध तरीके से पिरोकर ताल की ताली खाली मात्र संख्या एवं विभागीकरण को ध्यान में रखते हुए कायदा नामक रचना का प्रतिभावान कलाकारों द्वारा निर्माण किया गया है।

हमारे पूर्वजों, विद्वानों ने कायदे की जिन बंदिशों का निर्माण किया है उस सभी बंदिशों का सम्बन्ध मुख्य रूप से त्रिताल से रहा है, पुराने कलाकारों ने सोलो क लिये अन्य तालों का प्रयोग बहुत कम किया है। इन तालों में कुछ कलाकारों द्वारा बजाये गये कायदों का स्वरूप वैसा नहीं है, जैसा कि त्रिताल में पाया जाता है। त्रिताल में तो 16 मात्राओं का समान दो भागों में विभाजित करके कायदे को

8-8 मात्रा के दो खण्डों में विभाजित किया जाता है। परन्तु अन्य तालों में इस तरह का सामान्य विभाजन कभी-कभी दिखाई नहीं देता। बल्कि कुल मात्रायें किसी भी प्रकार पूरी कर ली जाती है अथवा एक दो आवर्तनों के बाद भी एक-दो मात्राओं को समायोजित कर लिया जाता है।

किसी भी ताल में कायदा निर्माण करने के लिये यदि उसकी विस्तार विधि पर ध्यान दें तो हम त्रिताल के आधार पर भी सोंच सकते हैं। चाहे कोई भी ताल कितनी भी मात्रा का क्यों न हो क्योंकि त्रिताल सोलह मात्रओं का होता है। सोलह मात्राओं का आधा आठ होता है और इसके बाद आठ को जब दो भागों में बाँटते हैं तो चार-चार मात्राओं के बराबर-बराबर दो भाग प्राप्त होते हैं। ठीक इसी प्रकार का विभाजन अन्य तालों पर भी लागू किया जा सकता है।

तिहाई भारतीय संगीत की एक महत्वपूर्ण क्रिया है। जिसका तीसरा या सम का 'धा' नियति स्थान पर आते ही आनन्द की अनुभूति होती है। संगीत में तिहाई की रचना कब किसके द्वारा किस आधार पर और क्यों की गयी, अभी तक स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। भारत के शास्त्रीय, सुगम और लोकसंगीत में चाहे वह किसी भी क्षेत्र का क्यों न हो, तिहाई का प्रयोग अवष्य होता है।

अगर हम सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो तिहाई किसी ताल की नहीं होती, अपितु मात्रों की होती है, चाहे मात्राओं संख्या कुछ भी हो। इस तरह मात्राओं की तिहाई बनाकर उसे किसी भी ताल में बांधा जा सकता है।

सीधी या सरल तिहाई बनाने का नियम यह है कि, जितनी मात्रा, कालखण्ड या जितने वर्णों की तिहाई बनाना है, उस संख्या में तीन से उतनी ही बार भाग देना चाहिए।

सामान्य तिहाई मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है। दमदार और बेदम। तिहाई के मुखड़े में प्रयुक्त वर्णों की अपेक्षा 'धा' का कालमान जब ज्यादा होता है तो उसे दमदार तिहाई कहते हैं। इसके विपरीत यदि 'धा' का कालमान मुखड़े के वर्णों के बराबर या उनसे कम होता है तो उसे बेदम की तिहाई कहते हैं।

तिहाई किसी ताल की नहीं बनती अपितु मात्राओं, कालखण्डों या वर्णों की बनती है। उक्त नियम के अनुसार हम चाहें जितनी मात्राओं या वर्णों की तिहाई बना सकते हैं तथा उसे किसी भी ताल में और किसी भी गुन में बजा सकते हैं।

अतः गणित के आधार पर हमें तिहाई बनाने की विधि तो प्राप्त हो जाती है। पर इस विधि से बनने वाली हर तिहाई सुन्दर लगे या सरलता से बजायी जा सके, यह आवष्यक नहीं है इसके लिए बोलों के संयोजन, छन्द और लय का भी ध्यान विद्वानों ने रखा है।

वर्तमान समय में अपूर्ण मात्राओं या भिन्नांक की तिहाईयों का प्रचलन भी पाया जाता है। जैसे सवा सात (7() साढ़े सात (7)), पौने आठ (7=) आदि ऐसी संख्याओं को वास्तव में पूर्णांक में परिवर्तित करने की आवश्यकता होती है जैसे 7(, और 7= को पूर्णांक में परिवर्तित करने के लिए 4 गुणा किया गया है। अतः 29 और 31 मात्रा या वर्णों की तिहाई चौगुना में बजाने पर क्रमशः 7(और 7= मात्रा में बैठायी जा सकेगी। इसी प्रकार अन्य अपूर्ण मात्राओं की तिहाई भी बनाई जा सकती है।

हम जानते हैं कि टुकड़ा और परन के अन्त में प्रायः तिहाई का उपयोग होता ही है। बहुत सी गतें भी ऐसी पायी जाती हैं, जिनके अन्त में तिहाई का उपयोग होता है। अतः तिहाई युक्त ऐसे टुकड़े-परन अथवा गत को जब तीन बार बजाया जाता है तो इन्हें क्रमशः चक्करदार टुकड़ा, चक्करदार परन और चक्करदार गत कहा जाता है।

फरमाईशी चक्करदार ताल के 5, 7 या इसके अधिक कितने भी आवर्तनों का बनाया जा सकता है। बोल की लंबाई ताल के एक आवर्तन से छोटी रखते हुए, मूल रूप से साधारणतया 5, 7 या 9 आवर्तनों की फरमाइशी चक्करदार बनाये जा सकते हैं। इन्हीं फरमाइशी चक्करदार की लंबाई इच्छानुसार बढ़ाई जा सकती है।

कमाली चक्करदार, फरमाइशी चक्करदार का ही एक प्रकार कहा जा सकता है, जिसके प्रत्येक पल्ले में नौ 'धा' होते हैं। पहले पल्ले का पहला 'धा' दूसरे पल्ले का पांचवा 'धा' और तीसरे पल्ले का नौवां 'धा' ताल के सम पर अथवा किसी अन्य निर्धारित मात्र पर आता है।

तबला वादन क्रम में अनेकानेक बंदिशें हैं। घराने भी अनेक हैं। वादन शैली का अपना अन्दाज भी है और इसी अन्दाज की वजह से शैली का विशिष्ट्य भी है।

कलाओं के संबंध में धारणा है कि किसी भी कला को पूर्ण रुपेण लिखना एवं लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता यह विषय अत्याधिक विस्तृत है। एवं शोध का विषय है। आत्माभिव्यक्ति के कारण कला अन्य सभी विषयों के अध्ययन, अध्यापन से भिन्न होती है। रचनाओं के नियम, सिद्धान्त एवं गणितीय स्वरुप होने के साथ ही ऐसे भी रचना प्रयोग मिल जायेंगें जो उक्त नियमों में बांधे नहीं जा सकते फिर भी सौन्दर्य पूर्ण हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय संगीत का इतिहास - जोशी श्री उमेश
2. तबले का उद्गम, विकास और वादन शैली - शुक्ल डॉ. श्रीमती योगमाया
3. संगीत में लिहाइयां - शर्मा भगवत.रण
4. भारतीय संगीत वाद्य - मिश्र डॉ. लालमणि
5. तालशास्त्र - शर्मा भगवत.रण
6. तबले पर दिल्ली और पूरब - वशिष्ठ पं. सत्य नरायण
7. ताल-वाद्य शास्त्र- मराठे डॉ. मनोहर भालचन्द्र राव
8. तबले की बंदिशें और विस्तार विधि ' पटेल डॉ. जमुना प्रसाद

भक्ति और संगीत

डॉ. रत्नाम्बरा शर्मा

भक्ति संगीत का क्षेत्र -

भक्ति-संगीत का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। वर्त्तमान समय में भक्त कवियों के गीतों को सरल तालों और धुनों में निबद्ध करके गानों को ही भक्ति संगीत कहा जाता है। परन्तु भक्ति संगीत का क्षेत्र इतना संकुचित नहीं-अपितु बहुत विस्तृत है।

भक्ति और संगीत इन दो शब्दों के मेल से 'भक्ति-संगीत' बना है। इसलिए इन दोनों शब्दों के भावार्थ व परिभाषा को ठीक से समझने की सर्वप्रथम आवश्यकता है।

भक्ति आर्य-संस्कृति का मूल है। वैदिक काल से लेकर आज तक इस पर विस्तृत रूप से विचार हुआ है। यह कभी साहित्यिक और कभी आध्यात्मिक दृष्टि से विद्वानों की आलोचना-प्रत्यालोचना का विषय रही है। साहित्यिक क्षेत्र में तो भक्ति से सम्बन्धित मत-मतान्तर हैं, परन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में इसकी श्रेष्ठता और महत्ता निर्विवाद है। आध्यात्मिक क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण उपब्धियाँ ही साहित्यिकों के लिए भी आकर्षण-केन्द्र बनी और अन्त में रस शास्त्र में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ।

आथातो भक्ति व्याख्या स्यामः।
सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा।।
अर्थात् - भक्ति परम प्रेम रूप है।
आथातो भक्ति जिज्ञासा।
सा परानुरक्तिरीश्वर।।

अर्थात्-ईश्वर में अनुरक्ति ही भक्ति है। इन दोनों भक्ति सूत्रों के अनुसार ईश्वर में प्रेम और अनुरक्ति ही भक्ति है।

रस शास्त्रों में भक्ति का स्थाई भाव रति माना है। श्रृंगार का भी स्थाई भाव रति है। परन्तु इन दोनों में अन्तर इतना ही है कि जहाँ कान्ता-विषयक रति श्रृंगार की जननी होती है वहाँ भगवद्विषयक रति भक्ति के लिए स्थाई भाव बन जाता है। संक्षेप में इसे भक्ति मर्मज्ञों ने कहा है कि स्त्री, पुत्र, धन आदि में जिस प्रकार आसक्ति-मोह, ममता होती है वही यदि भगवान में हो जाये तो भक्ति बन जाती है। इसी दृष्टि से भक्त शिरोमणि प्रातः स्मरणीय गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरित मानस के समापन में कहते हैं-

"कामहि नारि पियारि जिमि,
लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निन्तर,
प्रिय लागहु मोहि राम।।

भक्ति के भेद :-

भक्ति के 'वैधी' और 'रागानुगा', दो भेद हैं। वैधी भक्ति वह है, जो शास्त्रानुमोदित रीति से की जाती है। रागानुगा भक्ति में राग की प्रधानता होती है। भगवान के प्रति गहरी आसक्ति, उत्कट मोह और विशेष आकर्षण रागानुगा भक्ति के अन्तर्गत आते हैं। गोपियों की भक्ति रागानुगा थी और नारद, विदुर, भीष्म आदि भक्तों की वैधी थी।

अन्य उपासना की तुलना में भक्ति मनोविज्ञान के अधिक अनुकूल है। प्रायः राग, आसक्ति एवं मोह की भावना प्राणियों में स्वाभाविक रूप से होती है। वैराग्य उतना स्वाभाविक और व्यापक नहीं है जितना कि आसक्ति। अच्छी वस्तुओं के लिए मोह अथवा आकर्षण होना प्राणियों का सहज स्वभाव है। इस प्रकार मानव मन का सहज प्रवाह भक्ति के मूल राग की ओर दिखता है। परिवर्त्तन केवल इतना ही करना पड़ता है कि राग सांसारिक वस्तुओं के लिए न हो कर भगवान के लिए ही हो - यही भक्ति है।

सहायक प्रोफेसर संगीत, ग्लोरियस डिग्री महाविद्यालय, फतेहपुर पूर्वी, बरेली

संगीत प्रवीण व्यक्ति में संगीत के माध्यम से भगवान को प्रसन्न करने के लिए जो गीत गाये या वाद्य बजाये जाते हैं वह भक्ति संगीत है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि केवल गाय वादन को भक्ति संगीत कैसे कहा जा सकता है? इसके लिए यह समझना है कि प्रत्येक गीतों के गायन/वादन जिस प्रकार गायक के मन में अपनी कला को समर्पित करने की भावना होती तथा बजाया जाए तो उसे भक्ति संगीत कहना उचित हो सकता है। सामाजिक रास अथवा आसक्ति ही जिस प्रकार भागवत प्रेम के रूप में परिवर्तित होकर भक्ति कहलाती है, उसी प्रकार भगवान समर्पितभावी गायन हो तो वह भक्ति संगीत होगा।

इसी भाव को याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है-

वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति॥

अर्थात्-वीणावादन के तत्त्व का ज्ञाता, श्रुतियों तथा जातियों का मर्मज्ञ और ताल के स्वरूप का ज्ञाता पुरुष स्वरों में अनुविद्ध ब्रह्म की उपासना द्वारा थोड़े परिश्रम से ही मोक्षमार्ग को प्राप्त होता है।

गीतज्ञो यदि योगे न परमेति पदं परम्।
रुद्रस्यानुचरो भूत्वा ते मोदसहयोदते॥

अर्थात्-यदि गीत का ज्ञाता किसी प्रकार से योग के द्वारा परम् पद को प्राप्त न हो तो अगले जन्म में रुद्र का अनुचर होकर रुद्र के संग क्रीड़ा करता है।

इस उद्धरण में गीत-वाद्य और नृत्य का सम्मान कल गाया गया है। वीणा वादन से वादन, 'श्रुतिजातिविशारद' से ज्ञान कुशल और ताल से नृत्यज्ञ का तात्पर्य प्रतीत होता है। यदि विस्तृत रूप से विचार किया जाए तो भगवत प्रीति की भावना से किए गए नृत्य भी भक्ति संगीत के अन्तर्गत आ जाते हैं। गीत वादित नृत्य में गीत के भावों को विभिन्न मुद्राओं अंगिक चेष्टाओं द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। भक्तिमय पदों को नृत्य की भाव-भंगिमाओं द्वारा अभिव्यक्त करते हुए भगवान समर्पित भावना से किए गये नृत्य अवश्य भक्ति संगीत से भिन्न नहीं है। इस दृष्टि से संगीत रत्नाकार की संगीत परिभाषा को भी सार्थकता हो जाती है। विचारणीय यह है कि भगवत प्रेम से किए गये गान-वादन और नर्तन के सभी प्रकार भक्ति संगीत के अन्तर्गत आ जाते हैं। भक्ति संगीत इतना व्यापक है कि उसका

संगीत ग्रन्थों में संगीत के लक्षण पर अनेकों ग्रन्थ का प्रयोग मिलता है। सामवेदीय ऐतरेयब्राह्मण में ब्राह्मण ग्रन्थ के लिए 'गान्धर्व' शब्द का प्रयोग हुआ है जो गीत और वाद्य के लिए है। भरत मुनि ने गान्धर्व शब्द का प्रयोग गीत और वाद्य के लिये किया है। आज भी संगीत शब्द का प्रयोग गीत और वाद्य के लिए ही होता है। 'भारतीय ध्वनि' में गान्धर्व शब्द का अर्थ दिया है :-

ध्वनेः गन्धर्व विदुः प्रयोगातीतस्वरूपतः।
ध्वनेः सप्तस्वर संस्कार गान्धर्वमंग विशेषतयेति॥

अर्थात् 'गान्धर्व' शब्द में 'ग' गेय का द्योतक है, 'ध' वाद्य का द्योतक है और 'व' वाद्ययन्त्रों का द्योतक है।

अब यदि किसी सम्मेलन में गीत, वाद्य और नृत्य के कार्यक्रम होते हैं, तो उन्हें संगीत और नृत्य सम्मेलन कहा जाता है। स्पष्ट है कि संगीत से तात्पर्य गीत, वाद्य और नृत्य से है। 'संगीत' की जो जो परिभाषा अलोच्य पुस्तिका में प्रचलित है, वह 'संगीत-रत्नाकर' के 'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते' इस उद्धरण से अधिक प्रचलित हुई है। संगीत रत्नाकर के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों 'संगीत दर्पण', 'संगीत चन्द्रोदय', 'संगीत चन्द्रिका' आदि 'रत्नाकर' से प्रभावित परिभाषायें ही उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ -

श्रीमहादेवमुखात् त्रयं संगीत मुच्यते।
तस्मादत्र प्रधानत्वात्तल्लक्षणमिदमिष्यते॥
गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते।
तदेव ह्रस्वं प्रायेण चतुरभ्यदुपलभ्यते॥

उपर्युक्त प्रमाणों को देखने से पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि संगीत की सीमा में गान वाद्य और नृत्य तीनों को मानने के पश्चात् भी प्रायः संगीत शब्द का प्रयोग गान और वाद्य तक ही सीमित रहा। इसका कारण यह भी हो सकता है कि गीत और वाद्य के कार्यक्रम आयोजित करने में नृत्य के कार्यक्रम की अपेक्षा अधिक सरलता होती है और इस लिए नृत्य की अपेक्षा गीत तथा वाद्य के कार्यक्रम अधिक होते हैं। फलस्वरूप संगीत का अभिप्राय तात्पर्य गान और वादन से ही है।

भक्ति संगीत :-

भगवत प्रेम की प्राप्ति के लिए या भगवान के साक्षात्कार के द्वारा अपने पार्थिव विकारों को

व्यापक शास्त्रीय संगीत। लोक संगीत, नाट्य संगीत आदि कोई संगीत नहीं है।

भक्ति संगीत की भारतीय परम्परा :-

भारत में भक्ति संगीत की परम्परा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। वैदिक युग में यज्ञादिक, धार्मिक अनुष्ठनों के समय विभिन्न देवी-देवताओं के लिए जो सस्वर मंत्र गाये थे वे भक्ति संगीत का प्राचीन रूप है। ऋग्वेद के मंत्र ही जब सस्वर गाये गए तब उन्हें सामवेद कहा गया। सामवेद संगीतमय और भक्तिमय है।

पुराणों में प्राप्त अनेक स्तोत्र भक्ति संगीत के ही रूप हैं। स्तोत्रों को सस्वर गाने की विधि भी परम्परा प्राप्त है। मासिक जप उत्तम माना गया है और स्तोत्र का सस्वर गान करने के नियम बनाये गए है। भगवतपाद शंकराचार्य द्वारा रचे हुए अनेक स्तोत्रों में संगीत के पर्याप्त तत्त्व प्राप्त होते हैं जिनके सस्वर गाने से मानसिक शांति मिलती है। रावण द्वारा रचित 'शिव तांडव स्तोत्र' गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित 'विनय पत्रिका' व 'रामचरित मानस' के स्तोत्र संगीतात्मक हैं। 'शिवमहिम्न स्तोत्र' को सस्वर गान करने की परिपाटी आज भी अत्यन्त प्रचलित है।

'सामवेद' के समान जातिगान भी बहुत पवित्र माना जाता था। 'संगीत रत्नाकर' में जाति के सम्बन्ध में कहा गया है -

अपि ब्रह्महणं पापाज्जातयः प्रपुन्त्यमूः।
ऋचो यजूषि सामानि क्रियन्ते नान्यथा यथा।
तथा सामसुद्भूता जायतो वेद सम्मिताः।।

अर्थात्-जातियाँ ब्रह्म हत्या के पातक से भी मुक्ति दिलाने वाली है, जिस प्रकार ऋक, यजुः, साम में परिवर्त्तन नहीं किया जा सकता उसी प्रकार साम से उद्भूत जातियों में भी परिवर्त्तन नहीं किया जा सकता।

जातिगान द्वारा भगवत्सतुति की जाती थी। भक्ति संगीत भगवान को विशेष प्रिय हैं-

नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदय न च।
मद्भवक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।
मत्पुराणकथाश्रुत्वा मद्भक्तानां च गायनम्।
न्दिन्ति ये नरा मूढ़ास्ते मद्द्वेष्या भवन्ति हि।।

भगवान विष्णु कहते हैं कि - हे नारद न तो मै बैकुण्ठ में रहता हूँ और न योगियों के हृदय में, मेरे भक्त जहाँ गान करते हैं वहीं मैं निवास करता हूँ, जो मूढ़ मानव मेरी प्राणकथा और मेरे भक्तों का गान सुन कर निन्दा करते हैं वे मेरे द्वेष का पात्र होते हैं।

किसी देश या समाज की संस्कृति के प्रधान परिचायक उसका साहित्य ही होता है, क्योंकि साहित्य से सम्बन्धित व्यक्तियों के रहन-सहन, आहिर-बिहार तथा आचार-व्यवहारों का हमें ज्ञान होता है।

वेद सम्पूर्ण संसार का प्राचीनतम् भारतीय साहित्य हे। सबसे पहले रचे हुए ऋग्वेद का अधिक तम भाग विभिन्न देवों के स्तुति गानों से ही भरा हुआ है। वेदोचार करने वालों को उद्गाता अर्थात् उच्च स्वर से गाने वाला कहते हैं। वेद इस प्रकार अधिकतर भक्तिगान की ही वस्तुएँ हैं और चूँकि हमारे वेदों को अनादि माना गया है। इसलिए भक्तिगान या भक्ति संगीत की स्तुति अनादिकाल से सिद्ध हो जाती है। यो भी संगीत शास्त्र सामवेद में अन्तर्भूत हैं।

अतः इस प्रकार भी उसकी अनादिता प्रमाणित होती है।

'सोऽयं वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते भावस्वभावनित्यत्वातः'

अर्थात् - भाव ओर स्वभाव के नित्य होने के कारण उनका ज्ञान भी नित्य शाश्वत है। अभिप्राय यह है कि भारत में भक्ति संगीत की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है।

सन्दर्भ सूची :-

1. 'नारदीय भक्ति सूत्र' - भक्ति योग
2. 'शांडिल्य भक्ति सूत्र' - भक्ति योग
3. रामचरित मानस - उत्तराकाण्ड
4. संगीत दर्पण - पृ. 1-3
5. संगीत पारिजात
6. संगीत मकरंद, प्रथम पाद
7. याज्ञवल्क्य स्मृति - यति धर्म प्रकरण
8. याज्ञवल्क्य स्मृति - यति धर्म प्रकरण
9. 'संगीत रत्नाकर' - अड्यार संस्करण, स्वराध्याय
10. पद्मपुराण उ. 94/21-2522, संगीत रत्नाकर- अड्यार संस्करण, स्वाराध्याय।

अपने देश में पहचान तलाशती - संगीत चिकित्सा पद्धति

संजय कुमार

आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा ने अपने एक ललित निबन्ध में लिखा है -

अति परिचय ते होत है अति ही अनादर भाय,
मलय गिरी की भीलनी चन्दन देत जराय।

संगीत के परिप्रेक्ष्य में ये पंक्तियां बिलकुल सटीक बैठती हैं। अपने उद्‌भव काल से ही आत्मरंजन से लोक रंजन के द्वारा ईश्वर रंजन की अलौकिक एवं अद्‌भुत शक्ति सहेजे, संगीत रंजकता से इतर भी कई दिव्य गुणों का भंडार है। किन्तु संगीत को महज कला या ललित कला के रूप में मनोरंजन का साधन मात्र समझे जाने के कारण इसमें अंतर्निहित वैज्ञानिक व चिकित्सकिय गुणों की सदैव उपेक्षा होती रही है। इसकी एक खास वजह तमाम वैज्ञानिक विशेषताओं के बावजूद संगीत को कला मात्र समझने की परम्परा एवं इसके गुणों को उद्‌घाटित करने योग्य सरल साहित्य की न्यून उपलब्धता भी है। बावजूद इसके संगीत के बहुआयामी उपयोगिताओं को लेकर निरंतर शोध व प्रयोग हो रहे हैं जिससे संगीत की विविध दिव्य व चमत्कारिक शक्तियाँ पुनः उद्‌घाटित हो रही है वह बेहद सुखद है। संगीत की चिकित्सकीय क्षमता उन्हीं दिव्य शक्तियों में से एक है। संगीत चिकित्सा के दो प्रकार हैं-

1) ध्वनि चिकित्सा
2) नृत्य चिकित्सा

1) ध्वनि चिकित्सा - संगीत चिकित्सा पद्धति मूल रूप से ध्वनि चिकित्सा पर ही अधारित है। अवसाद, मानसिक थकान, तनाव, अनिद्रा आदि रोगों से मुक्ति दिलाने में मनोरंजन के सक्षम व सर्वथा उपयुक्त साधन के रूप में संगीत आज भी सर्व स्वीकार्यता की हद तक लोकप्रिय है, यह ध्वनि चिकित्सा का एक जीवन्त उदाहरण है। संभवतः इसी से अभिप्रेत हैं इस दिशा में होने वाले शोध व प्रयोग। राग द्वारा रोग निवारण ध्वनि चिकित्सा का विकसित स्वरूप है। हालाकि एक बड़ी आबादी के लिए यह आज भी कौतूहल का विषय है। आम आदमी आज भी संगीत चिकित्सा के प्रति विश्वसनीयता की हद तक आश्वस्त नहीं है। जबकि विदेशों को छोड़ भी दें तो भी सिर्फ अपने देश में ही कम से कम 18 से 20 संस्थान व केन्द्र ऐसे हैं जहाँ संगीत चिकित्सा पद्धति से राग द्वारा रोग निवारण जैसे कार्य हो रहे हैं।

<u>सिद्धान्त</u> एवं पद्धति - वास्तव में कफ, वात जनित रोगों, में संगीत चिकित्सा पद्धति 12 स्वरो मे से न्यूनतम 5 स्वरों से निर्मित राग पर आधारित है। इन स्वरों में कुछ स्वर शीत प्रभाव वाले हैं, तो कुछ उष्ण प्रभाव वाले वहीं कुछ समशीतोष्ण प्रभाव वाले स्वर हैं। प्रयोग के दौरान आयुर्वेदिक रसायनो की भाँति विभिन्न प्रभाव वाले स्वरों से निर्मित राग के स्वरों से अल्ट्रा वायलेट रेज की तरह अलग-अलग प्रकार की प्रभाव वाली किरणें/तरंगें निकलती हैं। ये किरणें/तरंगे समेकित रूप से रोगी पर एक साथ प्रभाव डालते है। यह ठीक उसी प्रकार होता है जिस प्रकार की टॉर्च से निकलने वाला प्रकाशपुंज एक साथ समान रुप से संपूर्ण शरीर पर पड़ता है। एक तरफ संगीत की 300 हर्टज की मधुर स्वर लहरी से उत्पन्न होने वाली तरंगे सुषुम्ना तंत्र के माध्यम से मस्तिष्क में स्थित कॉर्टेक्स को उर्जावान बनाती है जिससे न सिर्फ शरीर में रोग रोधक क्षमता में वृद्धि

शोध छात्र, विश्वविद्यालय संगीत विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

होती है, अपितु रोगी में रोग से लड़ने की इच्छाशक्ति भी बढ़ती है। वही दूसरी तरफ संगीत चयापचय (मेटाबॉलिज्म) को तेज करता है, इसका सकारात्मक प्रभाव कोशिका विभाजन व कोशिका निर्माण की गति पर पड़ता है और जिससे मांसपेशियो को मिलने वाली उर्जा बढ़ जाती है। इसी प्रकार शरीर में स्थित विभिन्न चक्रों व ग्रन्थियों में भी उर्जा का संचार हो जाता है। जिससे उन चक्रों व ग्रन्थियों से सम्बन्धित शिथिल पड़ी नस-नाड़ियो, धमनी-शिराओं पर चमत्कारिक प्रभाव पड़ता है, और धीरे-धीरे ये नाड़ियां गतिमान व स्वस्थ होकर पूर्ववत कार्य करने लगती हैं। जिसके फलस्वरूप व्यक्ति यथेष्ठ उपचार का अपेक्षित लाभ ले पाता है।

२) नृत्य चिकित्सा - सदियों से अभिव्यक्ति या कहें भाव भंगिमाओं व मुद्राओं के माध्यम से, भाव-रसानुकूल प्रभाव उत्पन्न करने की क्रिया अर्थात नृत्य सम्पूर्ण मनोरंजन का अपेक्षाकृत सशक्कत माध्यम या साधन रहा है। यह विडम्बना ही है कि, संगीत की तरह प्रत्यक्ष रूप में नृत्य का प्रयोग, थकान एवं अवसाद जैसी स्थिति में मनोरंजन के द्वारा भावनात्मक एवं मानसिक स्वास्थ्य लाभ के सफल साधन के रूप में किया जाता रहा है किन्तु, इसे चिकित्सा पद्धति के रूप में सर्वस्वीकार्य सिद्ध किया जाना अभी शेष है। इसकी खास वजह रही नृत्य एवं योग को अलग-अलग प्रचारित किया जाना। इससे संगीत के विभिन्न क्रियाओं को रंजकता के दायरे में सीमित करने की प्रवृति को भी बल मिला और संगीत की तरह नृत्य की चिकित्सकीय क्षमता की भी अनदेखी होती चली गयी। यदि योग एवं भारतीय अथवा पाश्चात्य नृत्य की क्रियाओं पर एक नजर डालें तो इन दोनों की अंतरंगता स्पष्ट हो जाती है। फिर अतीत में कब एवं किस आधार पर इन्हें अलग किया गया होगा यह समझ से परे है, और इसका उल्लेख ग्रन्थों में भी उपलब्ध नही है। गौरतलब है कि यदि नृत्य से संगीत को निकाल कर देखें तो नृत्य की समस्त क्रियाओं एवं योग के नाम पर की जाने वाली क्रियाओं में साम्य प्रकट हो जायगा। इन दिनों धीमें संगीत के साथ योग का प्रचलन है, जो धीमी गति का नृत्य स्पष्ट प्रतीत होता है, किन्तु इसे एरोबिक के नाम से प्रचारित किया गया है।

सिद्धान्त एवं पद्धति - यह चिकित्सा पद्धति रोग निवारण की अन्य पद्धतियों से बिल्कुल अलग है। इसका कारण है कि, इस पद्धति में मनुष्य के सृजनात्मक अभिव्यक्ति कौशल का उपयोग किया जाता है। यह पद्धति मनुष्य के आत्मा, मन, और शरीर के एकात्मक स्वरूप को स्वीकार करता है। तात्पर्यतः आत्मा और मन को शरीर से अलग करना नामुमकिन है, वास्तव में नृत्य चिकित्सा पद्धति इसी मूलभूत सिद्धान्त से उत्पन्न अवधारणाओं पर केन्द्रित है। यथा, जीवात्मा का शरीर और मन निरंतर एक दूसरे के साथ संपर्क में रहते हैं। मन चंचल है अर्थात स्वतः परिवर्तनशील या कहें सतत गतिशील है। मन की इसी परिवर्तनशीलता या गतिशीलता के कारण शरीर की भाव-भंगिमा या मुद्रा में परिवर्तन परिलक्षित होता है। जबकि शरीर के अंदर सूक्ष्म रूप में स्थित आत्मा मन को नियंत्रित करने के लिये सदैव सचेष्ट रहती है। यह सर्वविदित है कि मानसिक परिवर्तन का प्रभाव हमारी कार्यकुशलता, हमारे प्रयासों के परिणाम एवं उसकी गुणवत्ता पर सापेक्ष रूप में दिखाई पड़ता है। चार चरणों पर आधारित नृत्य चिकित्सा में प्रथमतः इसी तथ्य को उद्घाटित कर व्यक्ति में पूर्णता की भावना उत्पन्न की जाती हे।

नृत्य के दौरान प्रयुक्त मधुर संगीत प्रभावोत्पादक सहयोगी की भूमिका निभाता है और रोगी को अपेक्षाकृत शीघ्र यथेष्ट लाभ मिल पाता है। दुर्घटना जन्य विकलांगता को छोड़ कर पार्किन्सन, लकवा, पोलियों आदि के मरीजों पर इसका उत्साहवर्धक प्रभाव देखने को मिला है। ये गौरतलब है कि नृत्य चिकित्सा अपने देश से ज्यादा विदेशों में प्रचलित है।

उपसंहार - संगीत चिकित्सा की दोनों शाखायें **ध्वनि चिकित्सा एवं नृत्य चिकित्सा** समान रूप से ही आत्मविश्वास विकसित करने का भी सरल माध्यम है। यह मन में ताजगी और जीवन में नई उर्जा का संचार करता है तथा रचनात्मक प्रवृति को बढावा देते हैं। सारांशतः चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में संगीत की व्यापक भूमिका को लोग स्वीकार नहीं करते जबकि जाने अनजाने सभी इसका उपयोग करते हैं, सिर्फ इसे स्वीकार करने की आवश्यकता है। इसके लिये संगीत को महज मनोरंजन का साधन समझने

की मानसिकता से निकल कर संगीत को एक पूर्ण विज्ञान के रूप में स्वीकार किये जाने की आवश्यकता है। क्योंकि आम जनमानस में यह सिर्फ कला, ललित कला या मनोरंजन का साधन के रूप में स्थापित है।

संदर्भ ग्रन्थ एवं श्रोत -

1. संगीत एवं योग साधना द्वारा आत्मसाक्षात्कार - सिन्हा पं. राजकिशोर प्रसाद प्रकाशक- आलोक भारती प्रकाशन, पटना
2. संगीत रचना रत्नाकर - सिन्हा पं. राजकिशोर प्रसाद प्रकाशक- आलोक भारती प्रकाशन, पटना
3. संगीत विशारद - बसंत, प्रकाशक- संगीत कार्यालय, हाथरस,
4. मुद्रा चिकित्सा - आचार्य रजनीश, प्रकाशक- ओशो धारा, सोनीपत
5. योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य - आचार्य रामदेव, प्रकाशक - पतंजलि प्रकाशन
6. अखण्ड ज्योति - गायत्री परिवार द्वारा प्रकाशित मासिक
7. संगीत मासिक - संगीत कार्यालय, हाथरस, द्वारा प्रकाशित मासिक
8. ध्वनि - पुस्तक महल द्वारा प्रकाशित
9. वेबसाईट - http://hi.m.wikipedia.org

मीराबाई की भक्ति में नृत्य

डॉ. स्मृति वाघेला

भक्ति सदियों से गहन चर्चा का विषय रहा है। कभी अध्यात्मिक तो कभी साहित्यक दृष्टिकोण से इस पर विस्तृत विचार हुए हैं। ऋग्वेद से प्रवाहित भक्ति की पावन धारा को कई ग्रंथों से पुष्टि मिलती है।

अहैतुकी अव्यवहिता या भक्तिः पुरूषोत्तमे।
अर्थात्ः भगवान में हेतु रहित, निष्काम, एकनिष्ठा युक्त अनवरत प्रेम होना हि भक्ति।

(श्रीमद्भगवद्गीता)

अथातो भक्ति व्याख्या स्यामः
सा त्वास्मिन् परमप्रेमरूपा।
अर्थात् : भक्ति परम प्रेम रूप है।

(नारदीय भक्ति सूत्र)

नवधा भक्ति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है मीराबाई।
श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।

श्रवण, कीर्तन, समरण, पाद सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य तथा आत्म निवेदन- इस नवधा भक्ति से मीरा ने कृष्ण को प्राप्त किया। नृत्य मीरा की भक्ति का अभिन्न अंग रहा है ऐसा उनकी रचनाओं से स्पष्ट होता है।

संगीत और नृत्य आध्यात्म से ही जन्मे हैं और ईश्वर उपासना के मार्ग रहे हैं। नृत्य मनोभावों की अभिव्यक्ति का उत्तम मार्ग है और किसी भी सजीव के जीवन का अभिन्न अंग है। ब्रहमाण्ड, पशु-पक्षी, पेड-पौधे, मनुष्य के नर्तन को कई कवियों ने अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। संगीत वैदिक काल से ही भक्तिमय अधिक रहा है। इसके उपरांत सूत्र साहित्य में भी संगीत का महत्त्व बताया गया है। इस युग में यज्ञों के अवसर पर साम-गायन होता था। नृत्य के साथ गायन करने के उल्लेख भी सूत्रों में पाए जाते हैं। रामायण और महाभारत में नृत्य का प्रचुर मात्रा में उल्लेख पाया जाता है। कहते हैं कि आत्मा ज्योत स्वरूप है और नाचती हुई नीचे आती है और मीरा ने तो कृष्ण को अपना पति माना था कृष्ण तो स्वयं ही 'नटवर' हैं।

कृष्ण भक्तिमयी मीरा ने कृष्ण को नृत्य के माध्यम से पाया है। उनके बारे में ध्रुवदास ने लिखा है-

नृत्यत नूपुर बांध के, गावत लैकरतार।
विमल हियो भक्तनि मिली, तृनसम गन्यो संसार।।

बचपन से ही मीरा को धार्मिक संस्कारों के साथ संगीत, नृत्य की शिक्षा मेड़ता में प्राप्त हो गई थी। उनके यहाँ साधु संतों का आना-जाना लगा रहता था जिससे उनको भक्ति परक संगीत की शिक्षा भी मिली और उसी को मीरा ने अपने जीवन का लक्ष्य बनाया और कृष्ण को प्राप्त किया।

मीरा ने दास्य, सख्य तथा दाम्पत्य भाव का आलम्बन लेकर सायुज्य तक की सिद्धि प्राप्त की है। मीरा की भक्ति विशेषतः वियोगात्मक थी। मीरा के लिए कृष्ण को रिझाने का परम मार्ग था नृत्य।

केवल कृष्ण के लिए नाचने की प्रबल इच्छा इस पद में दिखती है-

श्री गिरिधर आगे नाचूंगी-
नाची नाची पिव रसिक रिझाऊ, प्रेमी जन कूं जाचुंगी।
प्रेम रीति की बांध घुंघरू, सूरत की कछनी काछुंगी।।

मीरा ने अपनी भक्ति के कारण कई दुःख झेले हैं। मीरा ने इस मिथ्या जगत की तथा राज कुल की परवाह ना करते हुए कहा...

मेरो मन लाग्यो हरिजुं सुं, अब ना रहूंगी अटकी।
राज कुल की लाज गंवाई, साधां के संग भटकी,
नित उठ हरी के मंदिर जास्यां, नाचां दे दे चुटकी।

लोक लाज तज के कृष्ण के आगे नाचने का एक और उदाहरण है-

मैं तो सांवरे के रंग राची,
साजी सिंगार बांध पग घुंघरू,
लोक लाज तजि नाची।

कृष्ण के साथ होरी खेलते हुए मीरा ने कहा-

राचत ताल आधारे सुरवर, धीमी धीमी बाज मृदंग।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, चरणन रहू संग।।

दास भाव के पद में मीरा ने कहा है-

पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे।
मैं तो मेरे नारायण की, आप ही हो गई दासी रे।

मीरा के भक्ति पर राणा की पाबंदियां लगने पर भी मीरा ने कृष्ण के आगे नाचना गाना नहीं छोड़ा-

राणाजी म्हें तो गोविन्द का गुण गास्यां,
चरणामृत को नेम हमारे, नित उठ दरशण जास्यां।
हरि मंदिर में निरत करास्यां, घुघरियां घमकास्याँ...

मीरा के पदों में कृत्रिमता नहीं है। कवियों को किसी सुन्दर कल्पना को खिंच कर उसे शब्दों के माध्यम से मूर्त स्वरूप देना पड़ता है। किन्तु मीरा के पद सरल और सहज हैं तथा बिना किसी श्रम से लिखे गए हैं। इसीलिए ये साहित्यिक रूप से अधिक सुशोभित न होते हुए भी मन को भाते हैं।

जीवन की हर अच्छी बुरी परिस्थिति में मीरा ने नृत्य को अपने जीवन में एक विशेष स्थान दिया था जो उनके पदों में दृष्टिगोचर होता है। मीराबाई के व्रज तथा गुजराती पद तथा रास में भी नृत्य के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। किसी भी सजीव के लिए अपने भीतर के आनंद की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति नृत्य ही है और मीरा ने अपने जीवन का लक्ष्य कृष्ण भक्ति को ही बनाया था। नटवर के प्रति मधुरा भक्ति ने मीरा को स्वयं नटवरी बना दिया। कृष्ण भक्त इस कवियित्री को केवल संत न कहते हुए एक महान नर्तकी के रूप में भी देखा जाए तो अयोग्य नहीं है। मीरा ने राजस्थान से लेकर वृन्दावन, मथुरा तथा द्वारिका तक कृष्णा महिमा का गान किया।

ऐसी कृष्णप्रिया मीरा को शत शत वंदन।

सन्दर्भ ग्रन्थः

मीरा मंदाकिनी- स्वामी प्रो. नरोत्तम
मीरामाधुरी- दास ब्रजरतन
मीराबाई की पदावली- चतुर्वेदी सं. परशुराम
मीरा-जीवन और काल- शर्मा श्रीधर
मीरा की प्रेम साधना- 'माधव' भुवनेश्वर मिश्र

मानव जीवन के विकास में संगीत का योगदान

डॉ. राजेश शर्मा

ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ सरंचनाओं में से मानव एक है: और अगर इस मानव जाति को ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ उपहार देखा जाए तो वह संगीत है। सृष्टि की उत्पति से ही संगीत का मानव के लिए प्रार्दुभाव हुआ माना जाता है। आध्यात्मिक परिवेश में देखा जाये तो ओंकार ध्वनि से ही सृष्टि की उत्पति मानी जाती है। मानव के चारों पुरूषार्थ में संगीत एक सबल माध्यम सिद्ध होता है। मानव जीवन का विकास देशकाल व परिस्थितियों के अनुसार सदैव परिवर्तनशील रहा है और अगर इस विकास शीलता को देखें तो संगीत का सहयोगी भाव बहुत प्रबल दृष्टिमान होता है। वैदिक काल में सामवेद के मन्त्रों से संगीत प्रवाहित होकर आज समाज में विभिन्न रूपों में व्यक्त हो रहा है। संगीत मानवीय समस्त व्यवहारों पर्व त्योहारों एवं संस्कृति का अभिन्न अंग बन गया है। संगीत जीवन के लिये सूक्ष्म भोजन का कार्य करता है। जिससे मानवीय जीवन पोषित होकर शरीर एवं इन्द्रीय सुख से उठकर सतचित् आनन्द को प्राप्त करता है "भारतीय संगीत में हमें ऐसी आत्मिक शान्ति मिलती है कि वो मानव को जिन्दगी का पूर्ण आनन्द प्रदान करती हुई उसे इस दुनिया से बहुत दूर की दुनिया में ले जाती है। यहाँ से आत्म से विराट रूप के सुरमय दर्शन होते हैं।"[1]

भारतीय संगीत ने जीवन में उच्च आदर्शों को पल्लवित कर मानवता, प्रेम, आपसी सद्भावना को विकसित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मानव जीवन के आध्यात्मिक पक्ष के विकास के साथ साथ अन्य ऐसे पहलू भी है जिनके विकास में संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका है, जैसेः- भक्ति, मनोरंजन, साम्प्रदायक, सद्भावना, विद्या, व्यवसाय, शारीरिक चिकित्सा इत्यादि।

उपरोक्त पहलुओं के विकास में संगीत की स्वभावगत विशेषताओं का एक विशेष स्थान है। विभिन्न गायन विद्याओं द्वारा जीवन की विभिन्न धाराओं को प्रवाहित किया जाता है। जैसेः- भक्ति, रस की पूर्ति हेतु जातिगायन, ध्रुवपद, धमार विलम्बित ख्याल इत्यादि का प्रयोग प्रेम, श्रृंगारिक रसभाव के लिए उपशास्त्रीय शैलियां जैसेः- ठुमरी, दादरा आदि का प्रयोग अन्य रस एवं भावों की पूर्ति के लिए यथायोग्य गीत, गजल, कव्वाली, लोक गीतों का प्रयोग किया जाता है।

1. अध्यात्मिक पक्ष के विकास में संगीत का योगदानः-

अध्यात्मिक पक्ष को सुदृढ़ रूप देने में संगीत का महत्वपूर्ण योगदान है। हमारे देवी-देवताओं ने इन विद्याओं के पारस्परिक सम्बन्ध को संगीत के किसी न किसी रूप को ग्रहण, आत्मसात करके स्पष्ट किया है। शिव के हाथ में डमरू, सरस्वती के हाथ में वीणा, कृष्ण के हाथ में बंशी, संगीत के अध्यात्मिक परिवेश को व्यक्त करती है। मानव जीवन के अध्यात्मिक विकास में संगीत के योगदान की तरफ एतिहासिक विवेचना से इसके क्रमिक विकास को हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। वैदिक काल, आरण्य काल, रामायण काल, महाभारत काल आदि में संगीत द्वारा ही ईश्वर की अराधना व उपासना

संगीत विभाग, गुरूनानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर

की जाती रही है। विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों के उत्थान एवं विकासात्मक गतिशीलता में संगीत ने अपना अपूर्व योगदान दिया है चाहे जैनधर्म के सूत्र हों, बोध धर्म की धार्मिक शिक्षायें पुष्टि मार्गीय परम्परा के अष्ट छाप भक्त कवियों का भक्ति सिद्धान्त हो संगीत अपना पूर्ण सहयोग देते हुए मानवीय जीवन का विकास करता रहा।

गुरू नानक साहिब द्वारा इसी सांगीतिक महत्व पर आधारित 'शब्द कीर्तन' परम्परा द्वारा सिख धर्म का आवाहन इस प्रगति को दरसाता है। श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी की रचना जिस में आध्यात्मिक काव्य के साथ-साथ कई शास्त्रीय एवं लोक सांगीतिक शैलियों का समावेश एवं कुल 62 रागों का प्रयोग इस दिशा में एक महत्वपूर्ण सांगीतिक उपलब्धि का परिचायक है। इसके अतिरिक्त इसे इसलाम धर्म की सूफी संगीत परम्परा की कव्वाली, रंग, मरसिया, नात, आदि गायन विधायें मानव जीवन के अध्यात्मिक प्रगतिशीलता का बेहतरीन नमूना है। विभिन्न धर्म जाति के लोग प्रातः काल से रात्रि तक अपने मौलिक सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए संगीत के माध्यम से ईश्वर उपासना करके मोक्ष के मार्ग पर अग्रसर होते है। इन चेष्टाओं के द्वारा प्राणी मात्र में सदभावना, सहानुभूति, प्रेम भाव का संचार होता है जिस से मानवीय जीवन में सहजता एवं सरलता का बीज अंकुरित होता है। संगीत द्वारा ईश्वर में मन लगने के कारणों को वासुदेव शास्त्री जी इस प्रकार व्यक्त करते है।[2] "संगीत के बिना नामोउच्चारण मात्र करते समय मुंह सिर्फ नाम का रटन करता रहता है। मन तो दशो दिशाओं में फिरता रहता है पर संगीत के साथ साथ जप या गुणगान करते समय संगीत की मनोहर शक्ति दृढ़ रज्जू बन कर भगवान नाम रूप को मन के साथ बांध देती है। दूसरा कारण है कि ईश्वर संगीत से जितना प्रसन्न होता है उतना दूसरे उपचार से नहीं"।[2]

2. सांस्कृतिक पक्ष के विकास में संगीत का योगदानः-

प्रायः हम देखते हैं कि सांस्कृतिक कार्यक्रमों को शैक्षणिक, धार्मिक एवं सरकारी, गैरसरकारी संस्थानों द्वारा आयोजित किया जाता है। उसमें एक ही देश के विभिन्न प्रान्तो की संस्कृति विभिन्नताएँ हो सकती है अथवा अन्य देशों की।

संस्कृति से भाव, किसी स्थान, विशेष का खान पान, विशेष गुण, रीति रिवाज आदि से लिया जा सकता है। "संस्कृति किसी राष्ट्र विशेष के जीवनयापन, बौद्धिक स्तर, धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक अवस्था आदि से अवगत कराती है।"[3] सांस्कृति विकास में संगीत का बहुत योगदान है। विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा व्यक्ति विशेष किसी अन्य स्थान के लोक संगीत, लोक पहरावे, लोक खान पान को ग्रहण कर अपने जीवन का विकास कर सकता है। विश्वविद्यालयों द्वारा विभिन्न प्रतिर्स्पधाओं के द्वारा संगीत अपनी प्रान्तीय व देशीय सीमाओं को तोड़कर एक दूसरे के साथ आत्मसात कर अपने में कुछ नवीन गुणों का संचार करता है। मुगल शासन को देखने पर पता चलता है कि उसी समय में सांस्कृतिक आदान प्रदान के आधार पर भारत में वीणा के साथ सितार, पखावज के साथ तबला एवं धुपद शैली के साथ ख्याल शैली का सम्बन्ध स्थापित हुआ। यही नहीं गिटार वायलिन आदि पाश्चात्य वाद्य भारतीय संस्कृति का अंग बन गये है। इसके विपरीत भारतीय शास्त्रीय संगीत की राग विद्या एवं विशिष्ट शास्त्रीय वाद्यों ने भी पाश्चात्य संगीत में अपना विशेष स्थान बना लिया है। देश विदेश के कई म्यूजिकल बैन्डस एवं फयूजन म्यूजिक इसकी बेहतरीन उदाहरण है। टैकनालोजी के युग में पूरा विश्व एक बिन्दु के समान बनकर रहा गया है परन्तु मानव के वैश्विक विकास में संगीत के आधार पर सांस्कृतिक आदान प्रदान उसके जीवन की गति को चरम सीमा तक ले जाने में सहायक हुआ।

3. साम्प्रदायिक सदभावना के विकास में संगीत का योगदान

भारत में अनेक धर्म, जाति व सम्प्रदाय के लोग रहते हैं भले ही उनके निजी धर्म स्थल, रिवाज, खानपान हो परन्तु भारतीय संगीत अपनी नादात्मक सत्ता के कारण इन सब को एक सूत्र में बाँध देता है। श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी में यहाँ छः गुरूओं की रागात्मक

वाणी अंकित की है। वही अन्य जाति व धर्म के सन्तों, भटटों की वाणी को दिया गया स्थान एवं गुरू नानक साहिब द्वारा इलाही वाणी के कीर्तन में भाई मरदाना जो कि मुस्लिम धर्म से सम्बन्धित था को सहयोगी के रूप में अपने साथ रखना सम्प्रदायक सदभावना का बहुत बड़ा उदाहरण है। उमेश जोशी जी, फैयाज खाँ, साहिब की कृष्ण भक्ति सम्बन्धित रचनाओं के बारे लिखते है। ''आपको भगवान श्री कृष्ण लीला चरित्रों से बड़ा प्रेम था उनका वर्णन इन्होनें अपनी रचनाओं में भी किया जैसेः- राग सुघरई में ''नैनन सो देख एक झलक मोहन की''[4] इसी प्रकार अलाउदीन खाँ साहिब का नाम भी संगीत द्वारा साम्प्रदायिक सदभाव की वृद्धि में एक ऐतिहासिक उदाहरण है। केशव वर्मा जी इस सम्बन्ध में कहते है ''सूफीयाना रहन सहन और परम वैष्णवता का संगम जिस बिन्दु पर हो सकता है उसी था नाम इस शताब्दी में अलाउदीन खाँ साहिब के नाम से जाना जायेगा।''[5] खाँ साहिब जी ने ऊँच-नीच, जाति-पाति के भेद को परे रख सब धर्मो के लोगों को अपना शिष्य बनाया। इन्हें धर्म निरपेक्ष संत बताते हुए केशव जी बताते हैं ''कि जिसके सिरहाने 'कुरान शरीफ' है तो 'भागवत' भी, सामने भी दीवार पर 'अल्लाह हो अकबर' है तो माता 'शारदेश्वरी' का चित्र भी, राम कृष्ण परमहंस है तो ''बीथोवीन' अपने जीवन में सुर के माध्यम से इन सब के बीच में समन्वय केन्द्र बिन्दु शायद बाबा ने खोज लिया था''[6] ऐसा ही उदाहरण निसार हुसैन खाँ के बारे में मिलता है ''सुप्रसिद्ध गायक उस्ताद निसार हुसैन खा ने एक शास्त्री से संस्कृत भी सीखी थी गीता के श्लोक तथा ''मोरो पन्त'' की आर्या भी कंठस्थ की''[7] यही नहीं गत दिनों श्री श्री रविशकंर जी के द्वारा आयोजित ''विषय सांस्कृतिक सम्मेलन'' में 155 देशों के कलाकारों ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन एक ही मंच से करके सम्प्रदायिकता का एक आदर्श स्थापित किया। इसके अतिरिक्त गुरूवाणी कीर्त्तनकार का पदम श्री रागी निर्मल सिंह का पाकिस्तान स्थित मशहूर गजल गायक गुलाम अली साहिब को एवं एम.डी. विश्व विद्यालय (रोहतक) के प्रो. हुक्म चन्द जी का था पाकिस्तानी गजल गायक उस्ताद हुसैन बख्शजी को गुरु बनाना एवं उनसे संगीत सीखना, साम्प्रदायिक सद्भावना के विकास की एक अनूठी मिशाल है।

4. स्वास्थ्य पक्ष के विकास में संगीत का योगदानः-

शरीर को स्वस्थ रखने में यहाँ अच्छे आहार, व्यायाम की आवश्यकता है वहीं संगीत का भी एक विशेष स्थान है। हम प्राय देखते है कि आजकल योगाभ्यास केन्द्रों एवं हैल्थ कलबों में आसन एवं व्यायाम करते समय संगीत की रिकार्डिंग लगाई जाती है जिससे एक तो एकाग्रता और दूसरी ओर पर्याप्त उर्जा का संचार व्यक्ति विशेष में होता है। संगीत के वैज्ञानिक गुणों के आधार पर इसका प्रयोग मनोरजंन या मोक्ष के लिए नहीं अपितु ऐसी पद्धति के रुप में किया जा रहा है जिसके द्वारा विभिन्न मानसिक व शारीरिक रोगो का उपचार संभव है। जिसे हम संगीत चिकित्सा कहते है। इस पद्धति में ध्वनि तरंगो का तन्त्रिका तन्त्रों में आपसी सम्बन्ध को आधार बनाकर रोगोपचार किया जाता है।

''विपरीत विभिन्न विकृत परिस्थितियों में स्वरों के प्रभाव द्वारा उत्पन्न शारीरिक क्रियाओं का परिवर्तन ही सांगीतिक चिकित्सा प्रणाली अथवा म्यूजिक थैरेपी है।''[8] विभिन्न रागों और तालों के द्वारा शारीरिक व्याधियों पर नियन्त्रण इसी पद्धति का औपचारिक सूत्र है। इस पद्धति में उपचार दो श्रेणियों से सम्भव है। एक रोगी द्वारा स्वयं गा बजाकर सुनाकर, दूसरा रोगी को किसी माध्यम से संगीत सुनाकर। प्रथम श्रेणी को निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है। स्वंय गायन करने वाला व्यक्ति यदि पदम आसन में बैठ मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए 7 स्वरों का नियमित अभ्यास करे तो शरीर के सप्त चक्र स्पष्ट झंकृत होते प्रतीत होंगें और साथ ही साथ संगीत द्वारा इनका शोधन करने से कई व्याधियाँ दूर हो जाती है ''गाना गाने से कई ऐंटीबाडी सैल्ज के उत्पादन की प्रक्रिया तेज होती है और गीत गाने से रक्तसंचार में सकारात्मक प्रभाव पडता है।''[9] इसके अतिरिक्त

श्वास रोगियों के षड़ज अभ्यास द्वारा श्वसन प्रक्रिया में सुधार की बहुत उदाहरणें हमें देखनें को मिलती हैं। अब इस पद्धति के द्वारा दूसरी श्रेणी के रोगियों के उपचार की कुछ उदाहरणें प्रस्तुत की जा रही है। प्रसव पीड़ा के सम्बन्ध में-1890 ई: में पैट्री वैज्ञानिक ने मेडिकल पैपरी की खोज द्वारा यह सिद्ध किया कि संगीत द्वारा प्रजनन क्षमता में वृद्धि होती हैं एवं प्रसव पीड़ा को कम किया जा सकता है। यही नहीं आजकल दन्त चिकित्सक सर्जरी के समय संगीत को ऑडियो ऐनसथीसिया के रुप में प्रयोग कर रहे है। "लीथो ट्रिप्सी चिकित्सा में ध्वनि तंरगो द्वारा गुर्दे की पथरी का बिना आपरेशन के निदान हो सकता है।"[10] इसके अतिरिक्त मानसिक व्याधियों के उपचार हेतु इस पद्धति से सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए है। डॉ. संजय गुप्ता का कहना हैं कि "संगीत सुनने के दौरान मस्तिष्क से न्यूरो ट्रांसमीटर नामक तरल पदार्थ श्रवित होता है जिससे सुनने वाला शीघ्र ही तनाव रहित हो जाता है।"[11] इसके अलावा संगीत मनीषियों ने कुछ ऐसे रागों को विशेष रोगों के उपचार के लिए निरीक्षण द्वारा समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। जैसे:-

अनिद्रा के लिए:- राग मालकौंस, दरबारी काहन्ड़ा

उच्च रक्त चाप रोगियों के लिए:- तोड़ी, इत्यादि शांत रस के राग

"भैरव:- कफ बढ़ने से हुए रोगों को दूर करता है।

मल्हार, सोरठ, जय-जय वन्ती:- उर्जा को बढाते हैं एवं क्रोध शान्त करते है।

आसावरी:- रक्त वीर्य, कफ रोगों को दूर करता है।

सांरग:- पित्त एवं सिरदर्द के रोगो को ठीक करता है।"[12]

जहाँ संगीत चिकित्सा द्वारा अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त कर मनुष्य अपने जीवन का यापन करने में सक्षम हैं वहीं इस संगीत चिकित्सा पद्धति के सिद्धान्तों एवं तकनीक को सीख कर कुछ व्यक्ति अपनी प्रयोगशालाओं को खोल कर इसे क्रियात्मक रुप प्रदान कर रहें हैं। कुछ कलाकार विशेष रोगों के उपचार के लिए विशेष राग, वाद्य एवं तालों का प्रयोग कर कैसेट तैयार कर रहे है जैसे मुम्बई के नारायण अग्रवाल द्वारा निर्मित जीवन, तनाव, विश्राम, निद्रा चार कैसेटस हैं जिनमें पं. विश्व मोहन भद्ध, पंडित तरुण भद्धाचार्य, पंडित रोनू मजूमदार, पं. रमेश मिश्रा, पं. रघुनाथ सेठ, उस्ताद शबीर खाँ ने अपने वाद्यों का वादन किया है। जिनका प्रयोग संगीत चिकित्सा में प्रचुर मात्रा में किया जा रहा है। इस तरह यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संगीत व्यक्ति को अच्छा स्वास्थ्य देने में भी सहायक है। इसके अभाव में मानव जीवन उन्नति की तरफ अग्रसर होने की कल्पना ही नहीं कर सकता।

5. आर्थिक पक्ष के विकास में संगीत का योगदानः-

जहाँ संगीत के द्वारा अध्यात्मिक, सास्कृतिक, सम्प्रदायक विकास संभव है वहीं जीवन के आर्थिक पक्ष को मजबूत करने में भी संगीत का बड़ा योगदान है। संगीत को व्यवसाय के रुप में कई शाखाओं द्वारा अपना कर संगीतज्ञों, भजनीकों, शिक्षकों, संगीत निर्देशकों, स्टूडियों, आपरेटरों, टी.वी. चैनल, कम्पनियों ने अपने आर्थिक स्तर में बढ़ोतरी की है। "संगीत को जीविकोपार्जन के साधन में प्रयुक्त करने के चिह्न पुराकाल में दृष्टव्य होते हैं। वैदिक काल की दास कुमारियों द्वारा यज्ञावसर पर उद्कुम्भ शीर्ष कुमारियों द्वारा यज्ञावसर पर नृत्य वृत्ताकार में करने व गाथाओं को गाने का जो वर्णन प्राप्त होता है उसका लक्ष्य अर्थोपार्जन ही रहा है।"[13] कुल कलाकार चाहे वह शास्त्रीय संगीतज्ञ हो, धार्मिक अथवा सुगम अपने सफल मंच प्रदर्शन द्वारा यथायोग्य शुल्क लेकर अपने जीवन स्तर को उच्चता प्रदान कर रहे है। संगीत विषय के रुप में संस्थाओं में प्रवेश हो जाने के कारण अनेक शिक्षक इसके माध्यम से आजीविका प्राप्त कर जीवन को प्रगतिशील कर रहे है। "वर्तमान समय में विद्यालयों, शिक्षण संस्थाओं, विश्व विद्यालयों आदि में अनेक शिक्षक कार्यरत हैं और तन्मय होकर शिक्षण की सेवा में लीन होकर जीविकोपार्जन कर रहे है।"[14] कई अध्यापकों द्वारा

पुस्तकों का मुद्रण भी उनकी आर्थिक उन्नति का प्रतीक है। संगीत के कई प्रशिक्षण केन्द्रों को चलाकर कुछ कलाकार अपनी आजिविका प्राप्त कर रहे है। दूसरी ओर टी.वी चैनलज पर शास्त्रीय, सुगम संगीत के कार्यक्रमों का प्रवाह एंव विभिन्न प्रति स्पर्धाऐं मानव जीवन के विकास में एक विशेष योगदान दे रही हैं। यही नहीं संगीत की सी.डीज कम्पनियों के द्वारा भी बड़ी मात्रा में हो रहा व्यापार इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। जहाँ संगीत-उपासक इसके द्वारा अपने व्यक्तिगत अथवा सामांजिक विकास में अपना योगदान दे रहे है वहीं इन सांगीतिक वाद्यों के निर्माता एवं विक्रेता भी बड़ी मात्रा में धन कमा रहे हैं। होम रिकार्डिंग स्टूडियोज में आविर्भाव से नित्य नवीन गायकों, वादकों, वाग्गेयकारों, निर्देशकों आदि को अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने अथवा अपने आर्थिक स्तर में वृद्धि कर मानवीय जीवन को विकासता की तरफ गतिशील करने के सुअवसर प्राप्त हो रहे।

6. जीवन के विविध पक्षों के विकास में संगीत का योगदानः-

भारतीय जीवन को कुल सोलह संस्कारों में बाँटा गया है। प्रथम जन्म से लेकर अन्तिम मृत्यु सस्कार तक प्रत्येक भाग संगीत से जुड़ा हुआ है। जन्म से सम्बन्धित एक ब्रज के गीत का उदाहरण इस प्रकार है:-

''आओ री सखि आओ हुए हैं रघुरैया
सुन्दर से सुकुमार सलौने
लेवें सबहीं बलैया, हुए हैं रघुरैया।''[15]

ठीक इसी प्रकार विवाह एक ऐसा सस्कार है जो पूर्वरुपेन सांगीतिक परिवेश में लिपटा है। लड़की के घर में सुहाग, मेंहदी, विदाई, डोली के गीत गाये जाते हैं। जैसेः-'साड्डा चिड़ियां दा चम्बा वे, बाबुल असां उड़ जाणा' अथवा 'अज दी दिहाड़ी डोली रक्ख लै नी माए, रवां बाबुल दी बण के गोली नी माए। इसी प्रकार लड़के के घर में घोड़ियाँ, मेंहदी के गीत, एवं खारे के गीत गाये जाते हैं जैसेः- 'निक्की निक्की बूंदी वे निकया मींह वे वरे, मां वे सुहागन तेरे शगुन करे।'

इसके अलावा अंतेष्टि संस्कार में भी रुदालियों द्वारा करूण रस के गीत गाने की प्रथा है। गुरुमत संगीत परम्परा में ऐसे संस्कारों में 'अलाहुणी' गायन शैली गाने का विधान है।

मानव जीवन के विकास हेतु कई धार्मिक पर्व व सम्मेलन ऐसे हैं जिन्हे संगीतमयी रूप से मनाया जाता है जैसे पंजाब में लोहड़ी, वैसाखी, तीज का त्योहार ऐसे सामाजिक पर्व हैं जिन्हें ढोल बजाकर बोलियां डालते हुए भांगड़ें एवं गिद्दे द्वारा मनाया जाता है। इसके अतिरिक्त गुजरात में नवरात्रों का पर्व माता की भेटें गाकर एवं गरबा नृत्य करके मनाया जाता है। जीवन में हर्ष उल्लास एवं रोमांचकता को भरने के लिए कई सांगीतिक सम्मेलनों का आयोजन अलग अलग स्थानों पर किया जाता है। जैसे हरिवल्भव संगीत सम्मेलन, स्वामी हरिदास संगीत सम्मेलन, संवाई गन्धर्व उत्सव, श्री लक्ष्मी नारायण राग सभा आदि।

इसके अलावा संगीत के द्वारा ही राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय एकता सम्भव है। संगीत की कोई सीमा या जाति नहीं जहाँ संगीत की बात होती है वहाँ सम्पूर्ण विश्व एक ही पायदान पर खड़ा प्रतीत होता है। राष्ट्रीय एकता को व्यक्त करता हुआ ''मिले सुर मेरा तुम्हारा'' एक ऐसा गीत है जो पूरे भारत को एक सूत्र में पिरो देता है। इसके प्रमुख गायक पं. भीमसेन जोशी जी का इस सम्बन्ध में कहना है कि ''भिन्नता के इस वातावण में अभिन्नता का सुर भरने के लिए हमारी सरकार ने संगीत जैसी सर्वजनीन भाषा के माध्यम से इस गीत के प्रसारण का कार्यक्रम बनाया है क्योंकि संगीत ही अब एक ऐसा सशक्त और सार्वभौमिक साधन बचता है जो लोगों को एक सूत्र में पिरो सके''[16]

इसके अतिरिक्त महर्षि महेश योगी जी के द्वारा 1987 में आयोजित म्यूजिक फेस्टीवल 'फार वर्ल्ड पीस' एवमं श्री श्री रविशंकर जी द्वारा 2016 में आयोजित वर्ल्ड कल्चरल फेस्टीवल संगीत द्वारा अर्न्तराष्ट्रीय एकता का प्रतीक है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि संगीत मानव जीवन के प्रत्येक अंग के विकास में सहायक है। फिर चाहे मनोरंजन हो या अध्यातम, चाहे

मनुष्य में सद्भावना हो उचित स्वास्थ्य हो अथवा जीवन का आत्मिक पक्ष संगीत एक प्राण के रूप में मानव के प्रत्येक पल में विद्यमान है। जन्म से लेकर मृत्यु तक दिन की शुरूआत से लेकर रात तक, प्रत्येक रस्म, संस्कार एवं प्रत्येक क्रिया किसी न किसी रूप से संगीत रूपी भवन की परिक्रमा में लगी मानव जीवन का सर्वांगीण विकास कर रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जोशी उमेश, भारतीय संगीत का इतिहास पृ. :-443
2. शास्त्री के. वासुदेव संगीत शास्त्र, पृष्ठ-2
3. दत्ता डां पूनम, भारतीय संगीत शिक्षा और उदेश्य पृ. : 93
4. जोशी उमेश, भारतीय संगीत का इतिहास पृ. : 456
5. शर्मा केशव चन्द्र, ज्यादातर गलत पृ. : 82
6. वही पृ. 85
7. संगीत (मासिक) अगस्त 1973, पृ. 31
8. काव्या लावण्य कीर्ति सिंह, संगीत संजीवनी, पृ. 23
9. डॉ संध्या रानी, वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के रूप में, ट्रेन्डस इन म्यूजिक थैरेपी टू डे, पृ. 141
10. शर्मा डॉ. सरला, अब संगीत के द्वारा असाध्य रोगों का उपचार दैनिक आज 13 मार्च 1999, पृ.-6
11. गुप्ता डॉ. संजय, दैनिक समाचार पत्र अमर उजाला, 12 जून 2004
12. संगीत (मासिक) जून 1993 पृ. -4
13. दत्ता डॉ. पूनम, भारतीय संगीत शिक्षा और उद्देश्य पृ. -164
14. वही पृ. -175
15. वही पृ. -102
16. संगीत मासिक, अगस्त 1993 पृ. -36

उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में फ्यूजन के प्रयोग : जाज के विशेष संदर्भ में

श्रीमती विजल पटेल

विभिन्न कालखंड में हुए अनेको बदलावों के परिणाम स्वरूप भारतीय शास्त्रीय संगीत बदलता रहा है। विभिन्न सामाजिक परिस्थिति तथा ऐतिहासिक गतिविधियों के प्रभाव के अंतर्गत शास्त्रीय संगीत परंपरा निरंतर रूप से विकसित होती रही है। आधुनिक काल में विज्ञान और तकनीकि क्षेत्र में प्रगति तथा वैश्विकरण की प्रबलता के अंतर्गत, विभिन्न देशों के सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रभाव के तहे, संगीत में भी नित नए प्रयोगों की शुरुआत हुई। उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत जो आज वैश्विक स्तर पर भारतीय संस्कृति तथा परंपरा का द्योतक है, उसका पाश्चात्य संगीत की विभिन्न शैलियों के साथ फ्यूजन के प्रयोग होने लगे। ऐसे प्रयोगों को अधिकतम लोकप्रियता भी मिली है। इन पाश्चात्य शैलियों में जाज संगीत का नाम प्रमुख है। प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत और जाज संगीत में भारतीय तथा जाज संगीत के कलाकारों द्वारा किये गए फ्यूजन प्रयोगों की चर्चा की गई है।

भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता अत्यंत प्राचीन और भव्य है, जो निरंतर रूप से कालावधिनुसार विभिन्न संस्कृतियों के प्रभाव के अंतर्गत बदलती रही है। कालानुरूप सांस्कृतिक और सामाजिक रूप में हुए बदलावों के परिणाम स्वरूप संगीत में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। शास्त्रीय संगीत यह भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। सामाजिक तथा सांस्कृतिक बदलाव का सीधा परिणाम शास्त्रीय संगीत पर पड़ता रहा है, और कालानुरूप परिवर्तन के साथ शास्त्रीय संगीत आगे बढ़ता रहा है।

आधुनिक युग यह विज्ञान, तकनीकि तथा तंत्रकारी आविष्कारों का प्रतीक है। जिसका सीधा संबंध मानव के जीवन से जुड़ी गतिविधियों के साथ है। आधुनिक युग में हुए इन आविष्कारों के परिणाम स्वरूप आज विश्व के विभिन्न देश आपस में निकट आ गये है। विभिन्न देशों की आपसी निकटता के कारण सांस्कृतिक आदान-प्रदान बढ़ने लगा है। आधुनिक काल में हुए तकनीकि तथा विज्ञान के आविष्कारों के कारण एक-दूसरे की संस्कृति को जानना तथा कलाओं को समझना सरल हो गया है। जिसके परिणाम स्वरूप नित नए प्रयोगों का प्रचलन होने लगा है। भिन्न-भिन्न देशों और संस्कृतियों में निकटता आने के कारण नवीन प्रयोग के रूप में फ्यूजन संगीत जैसे प्रकार का प्रचार अधिकतम हो रहा है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में भी फ्यूजन संगीत के प्रयोग तथा विभिन्न प्रकार से इसका संयोजन और सांस्कृतिक संकर्षण वर्तमान में दिखाई पड़ता है। उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत का प्रयोग फ्यूजन संगीत में काफी मात्रा में हुआ है। जिसे विश्व स्तर पर अत्यंत लोकप्रियता भी मिली है। वर्तमान समय में कई शास्त्रीय कलाकार हैं, जो ऐसे प्रयोगों के लिए कार्यरत है। ऐसी स्थिति में फ्यूजन के इस वैश्विक दौर में उत्तर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में हो रहे फ्यूजन को समझना अत्यंत आवश्यक है।

यह संकल्पना आधुनिक है। प्रायोगिक रूप से यह संगीत का निर्माण प्रयोगलक्षी हेतु को सिद्ध करने के लिए किया गया है। फ्यूजन संगीत का प्रयोग हमें विश्व के लगभग सभी देशों में मिलता

शोधर्थी, संगीत विभाग, मुम्बई विश्वविद्यालय

है। 'फ्यूजन' का अर्थ है दो या दो से अधिक पदार्थों का आपस में सम्मिश्रण हो कर एक हो जाना। इसी अर्थ के अंतर्गत 'फ्यूजन संगीत' को हम इस प्रकार परिभाषित कर सकते है कि, दो या दो से अधिक सांगीतिक शैलियों का आपस में सम्मिश्रण होकर एक हो जाना। सांगीतिक शैलियों के साथ ही कई विभिन्न संस्कृतियों का भी विचार आवश्यक है। विश्व स्तर पर फ्यूजन संगीत कई नामों से प्रचलित है। जैसे- World music, Confluence music, Contemporary music, Crossover music इत्यादि। विभिन्न संस्कृतियों के कलाकारों के द्वारा परस्पर की संगीत शैलियों के विभिन्न तत्वों को ध्यान में रखते हुए एकाग्र चित्त से कलात्मकता तथा सौंदर्यात्मक दृष्टिकोण से अपने प्रस्तुतीकरण में समेकता लाने की कोशिश करना, यही फ्यूजन संगीत का प्रेरणात्मक बिन्दु है। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि, फ्यूजन संगीत का स्वरूप संपूर्ण रूप से कलाकार की प्रयोजनसिद्धी दिशा के अनुरूप ही आकार लेता है। जिस प्रकार से कलाकार का प्रयोजन होगा, कला का स्वरूप भी वैसा ही बनेगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि, फ्यूजन संगीत के अंतर्गत कलाकार को अपने संगीत में निपुणता तो आवश्यक है ही, परंतु अन्य सांगीतिक शैलियों के विभिन्न तत्वों को भी समझना आवश्यक है।

उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में फ्यूजन; ऐतिहासिक पार्श्वभूमि

भारतीय संगीत की ऐतिहासिक पार्श्वभूमि को देखने पर हमें यह ज्ञात होगा कि, उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में विभिन्न संस्कृतियों की सांगीतिक शैलियों का भारतीय संगीत के साथ सम्मिश्रण हुआ मिलता है। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में विभिन्न शैलियों का प्रभाव देखने को मिलता है। जिसमें मुख्य रूप से मध्ययुगीन काल का महत्व अधिकतम है। मध्ययुगीन काल वह कालखंड है जब अरब, फारसी और मध्य एशियाई संस्कृति का प्रभाव भारतीय संगीत पर पड़ा और संपूर्ण भारत में जहाँ एक ही संगीत परंपरा थी उसका विभाजन दो संगीत पद्धतियों में हो गया। उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत तथा कर्नाटकी संगीत या दक्षिण भारतीय संगीत। इन विदेशी संस्कृतियों का प्रभाव उत्तर भारत पर अधिक था। इन्हीं संस्कृतियों के प्रभाव तथा सांगीतिक सम्मिश्रण के कारण अत्यंत खूबसूरती से उत्तर भारतीय संगीत की कायापलट हो गई। इसी प्रक्रिया के अंतर्गत नये प्रकार और शैलियाँ जैसे ख्याल, ठुमरी, दादरा, गजल इत्यादि शैलियों का विकास हुआ। उसी के साथ तबला, सितार, सरोद जैसे वाद्यों का भी आविष्कार हुआ, जो आज भी लोकप्रिय है। दोनो संस्कृतियों के बीच विचारों तथा तरीकों के आदान-प्रदान और सम्मिश्रण की प्रक्रिया इतनी परिपूर्ण थी कि, भारतीय संगीत तत्व और विदेशी तत्वों को अलग करना असंभव हो गया। फारसी, अरब तथा मध्य एशियाई संस्कृति का प्रभाव और भारतीय परंपरा के संयोग के परिणाम स्वरूप उत्तर भारत में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति का विकास हुआ। इससे यह सिद्ध होता है कि, उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत यह विभिन्न देशों की सांगीतिक शैलियों का भारतीय संगीत के संयोग से विकसित संगीत है। जिसका समावेश फ्यूजन के अंतर्गत हो सकता है।

मध्ययुगीन काल के पश्चात आधुनिक काल में ब्रिटिशों के आगमन के साथ पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर पड़ना शुरू हुआ। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय संगीत के शास्त्र को समझने का प्रयत्न शुरू किया। जिसमें मुख्य रूप से विलिसम जोन्स, कॅप्टन एन.ए.विलार्ड, एलेक्जेंडर जे. एलिस जैसे विद्वानों का समावेश होता है। इन्होने भारतीय संगीत के शास्त्र पक्ष का अभ्यास करके अंग्रेजी भाषा में उसका लेखन किया। जिसके कारण भारतीय शास्त्रीय संगीत का परिचय पाश्चात्य लोगों को हुआ। परिणाम यह हुआ कि, पाश्चात्य कलाकार जो भारतीय शास्त्रीय संगीत की प्राचीन परंपरा तथा शास्त्रों से अंजान थे, वे उनको समझने लगे तथा प्रयोगों की ओर प्रेरित हुए।

दूसरी ओर 50 और 60 के दशकों में पाश्चात्य देशों में भारतीय कलाकारों का प्रवास बढ़ने लगा। जिसमें उ. अली अकबर खाँ, पं. रवि शंकर, जॉन मेयर जैसे भारतीय कलाकार मुख्य है। जिन्होने भारतीय शास्त्रीय संगीत को विदेशों में लोकप्रियता प्रदान की। उसी के साथ कई पाश्चात्य कलाकार जैसे जॉन कोलटरेन, जॉन मेक्लाविन, जोंज हेरिसन

इन्होने भारतीय शास्त्रीय संगीत का तथा उनके विभिन्न तत्वों का उपयोग अपने संगीत में किया। ऐसे प्रयोगों के कारण भारतीय शास्त्रीय संगीत विश्व स्तर पर लोकप्रिय होने लगा। भारत में भी कलकत्ता, मुंबई, गोवा जैसे शहर जहाँ पाश्चात्य संस्कृति तथा संगीत का प्रभाव अधिक था, वहाँ फ्यूजन जैसे प्रयोगों को अत्यंत प्रोत्साहन मिलने लगा।

उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में फ्यूजन के प्रयोग

उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में फ्यूजन के अधिकतम प्रयोग जाज संगीत के साथ पाये गये है। इस लिये यहाँ इन्हीं दो संगीत के बीच हुए फ्यूजन के प्रयोगों पर चर्चा करेंगे। उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत तथा जाज संगीत में फ्यूजन की शुरूआत मुख्य रूप से अमेरिका, जो जाज संगीत का जन्म स्थान है, 1960 के आसपास के काल में हुई। उस समय के प्रयोगों में जाज में सर्वप्रथम भारतीय संगीत के तत्वों को अपने संगीत में अपनाने की शुरूआत हुई। जाज संगीत यह मूल रूप से यूरोपियन संगीत तथा करेबियन; आफ्रिका, मेक्सिकन संगीत का मिश्रित संगीत है। जिसमें कई प्रकार जैसे ब्ल्यूस्, रेगेटाइम, फ्री जाज इत्यादी का समावेश होता है। इन्हीं प्रकारों में 'फ्यूजन नामक एक प्रकार मिलता है, जिसे 'जाज फ्यूजन' (Jazz fusion) कहा जाता है। जाज फ्यूजन के अंतर्गत पाश्चात्य संगीत की विभिन्न शैलियाँ जैसे रॉक, पॉप, लॅटिन इनका जाज संगीत के साथ फ्यूजन किया जाता है। पाश्चात्य संगीत में जाज फ्यूजन का सर्वप्रथम प्रयोग जाज तथा रॉक संगीत के सम्मिश्रण से हुआ है। पाश्चात्य फ्यूजन का सबसे लोकप्रिय उदाहरण है 'रॉक एन रॉल संगीत, जो ब्ल्यूस, गोस्पल तथा कन्टरी संगीत का सम्मिश्रण है। इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि, पाश्चात्य जाज संगीत में उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत का प्रयोग ऐसे ही प्रयोगों के अंतर्गत हुआ होगा।

उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत तथा जाज के फ्यूजन प्रयोगों के प्रारंभिक काल में जॉन मेक्लाविन, जॉन कोलटरेन, यहुदी मेनुहिन जैसे पाश्चात्य कलाकारों का समावेश होता है। इन कलाकारों नें भारतीय शास्त्रीय संगीत के तत्व जैसे उपज (Improvisation) और मेलॉडी (Melody) का प्रयोग अपने संगीत में किया। जॉन कोलटरेन यह जाज संगीत के प्रसिद्ध सेक्सोफॉन वादक थे। माईलस् डेविस जी के अल्बम Milestone के निर्माण के समय जॉन कोलटरेन भारतीय संगीत से प्रभावित हो कर Model Jazz के अंतर्गत उन्होने कुछ प्रयोग किये। इसी तरह से भारतीय संगीत का प्रभाव उनके अन्य अल्बमस् में भी देखने मिलता है। उन्ही के दौर में जॉन मेक्लाविन जो बहुत बड़े जाज गिटार वादक थे। उन्होनें शुरूआत में करीबन 1950 के दौरान Mahavishnu Orchestra यह जाज Band कि रचना कि, जिसमें उन्होनें भारतीय तत्वों का उपयोग जाज उपज (Improvisation) के लिए किया। तत्तपश्चात भारतीय कलाकार जैसे. जाकिर हुस्सैन, एल. शंकर, विक्कु विनायकरम के साथ मिलकर Shakti" नामक Band की रचना सन 1975 में कि, जिसे बहुत लोकप्रियता मिली। Shakti की विशेषता यह थी कि, उनके संगीत में हिन्दुस्तानी संगीत तथा जाज का संयोजन सही रूपसे मिलता है। दोनों ही संगीत के मुख्य तत्व जैसे. भारतीय मेलॉडी (राग) तथा जाज उपज (Improvisation) का सम्मिश्रण सुनियोजित रूप से किया हुआ मिलता है।

जाज तथा उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत के फ्यूजन में कलकत्ता के भारतीय कलाकार जॉन मेयर का नाम Indo-Jazz फ्यूजन में उल्लेखनीय है। 1960 के पूर्वार्ध में जॉन मेयर जो एक वायलिन वादक थे, उन्होनें सर्वप्रथम जाज संगीत के साथ उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत का प्रयोग किया। जॉन मेयर को उत्तर हिन्दुस्तानी तथा पाश्चात्य संगीत इन दोनो.ालियों का शिक्षण प्राप्त था। लंडन स्थायी होने के पश्चात पाश्चात्य संगीत के साथ भारतीय और खास करके उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत के संयोजन के बारे में उन्होनें सोचा। उन्होनें जाज कलाकार जॉ हॅरियट के साथ मिलकर Indo-Jazz Fusion इस नाम के अंतर्गत फ्यूजन संगीत का प्रयोग किया। जिसमें जाज संगीत के कलाकार के साथ 5 भारतीय कलाकारों का भी समावेश किया। उन्होनें Indo-Jazz तथा Double Quintet जैसे अल्बमस् का निर्माण किया। जिसे उस समय काफी लोकप्रियता मिली। जॉन मेयर द्वारा किये गये इन प्रयोगों में काफी मात्रा में जटिलता का अनुभव होता है। जैसे. भारतीय तालों

का प्रयोग और इसके साथ जाज संगीत के विभिन्न ...ों जैसे बास गिटार और ड्रम्सेट का उपयोग तथा ...कारों के जाज Improvisation का प्रयोग। उन्होंने ...त हिन्दुस्तानी संगीत के कुछ राग जैसे- पीलू, ...मानी, पूर्वी का प्रयोग Indo-Jazz Fusion में ...या है।

जाज और उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत के स्फूजन में ...विंकर जी का योगदान महत्वपूर्ण है। उन्होंने कई पाश्चात्य कलाकार जैसे- यहूदी मेनुहिन, बड जाक, रोनी स्कॉट जैसे कलाकारों के साथ मिलकर प्रयोग किये। उन्होंने उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत के साथ पाश्चात्य फिल्म संगीत का अनोखा सम्मिश्रण किया है। 'पाथेर पांचाली' यह फिल्म इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। उन्होंने कई पाश्चात्य तथा भारतीय कलाकारों को एकत्रित कर वाद्यवृंद की रचना की। जिसमें रागदारी संगीत के साथ सुसियोजित रूप से पाश्चात्य हार्मनी का प्रयोग किया और Concerto for Sitar & Orchestra, Jazzmine जैसे कई जाज्मन् की रचना की। उन्होंने वाद्यवृंद का प्रस्तुतिकरण विश्व के विभिन्न देशों में भी किया। पं. रवि शंकर जी के साथ आनंदो शंकर के नाम भी जाज तथा उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में सितार के स्फूजन में लेना जरूरी है। ऐसा कह सकते हैं कि, इन हिन्दुस्तानी संगीत के कलाकारों का संगीत सुनकर ही जॉन कोलट्रेन तथा उनके जैसे अन्य जाज संगीतकारों को भारतीय शास्त्रीय संगीत का सर्वेक्षण परिचय हुआ।

पं. रवि शंकर का जितना योगदान उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत का जाज के साथ स्फूजन में रहा है, उतना ही योगदान उ. अली अकबर खाँ साहब का भी रहा है। उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत का सर्वेक्षण अन्तर्राष्ट्रीय रेकॉर्डिन्ग अमेरिका में उनका ही हुआ है। कई पाश्चात्य कलाकारों को उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत के साथ परिचय उन्होंने करवाया। उन्होंने The Ali Akbar Khan school of Music यह संस्था की शुरुआत सर्वेक्षण कलकत्ता में और सानफ्रान्सिस्को कैलिफोर्निया में की। इस संस्था के माध्यम से कई विदेशी कलाकार उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत सिखने लगे। उन्होंने जाज संगीत के कलाकार जॉन हैन्डी के साथ मिलकर Karuna Supreme इस अल्बम का निर्माण किया। जिसमें मुख्य तत्व हिन्दुस्तानी रागदारी संगीत की धुन का आधार लेकर, उसी अनुरूप जाज Improvisation तथा राग विस्तार का प्रयोग किया।

वर्तमान समय में कई हिन्दुस्तानी कलाकार है जो स्फूजन के प्रयोगों के लिये कार्यरत है। जिसमें उ. जाकिर हुसैन, पं. शिवकुमार शर्मा, पं. हरिप्रसाद चौरसिया, पं. विश्व मोहन भट्ट, इत्यादि उल्लेखनीय है। इन सभी कलाकारों ने जाज तथा उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में स्फूजन के प्रयोगों में बड़ा योगदान दिया है। विश्व स्तर पर इनके द्वारा किये गये प्रयोगों को सराहना भी मिली है। कई भारतीय कलाकार जो पाश्चात्य देशों में स्थायी हुए हैं, वे भी इन प्रयोगों में शामिल है।

इन सारे प्रयोगों में हम देखेंगे कि, जाज संगीत तथा उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में काफी विसमानता होने के पश्चात भी उनमें सबसे अधिक स्फूजन मिलता है। विभिन्नता होने के पश्चात भी दोनों में एक मुख्य तत्व है, जो है उपज (Improvisation)। उपज यह ऐसा तत्व है जो हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में राग विस्तार ही है। कलाकार अपनी उत्स्फुकता तथा रचनात्मकता का आधार लेकर राग नियमानुसार राग विस्तार करता है। यही विस्तार या उपज को जाज संगीत में Improvisation कहते है। इसी तत्व का आधार लेकर, चाहे दोनों ही संगीत में कितना भी अंतर हो इसके बावजूद इनके बीच स्फूजन की शाक्यता अधिक मिलती है। जाज़ संगीत में जब उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत का मिश्रण होता है, तब उसमें मेलाडी तत्व का प्रभाव अधिक हो जाता है। जिससे उत्तर हिन्दुस्तानी रागदारी संगीत का प्राधान्य अधिक हो जाता है। लेकिन क्या यह प्रयोग उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत की कलात्मकता तथा परंपरा को नष्ट कर देगें? यह सवाल उठता है।

हमने देखा कि सामाजिक और सांस्कृतिक बदलावों के साथ प्रत्येक कला में बदलाव तथा विभिन्न प्रयोग निश्चित ही है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में भारतीय परंपरा में विभिन्न कालखंड में परिवर्तन आया है और इसी के तहे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत मध्य एशियाई संस्कृति के प्रभाव में विकसित हुआ है। ऐसे में उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत और पाश्चात्य

संगीत में हो रहे इन फ्यूजन के प्रयोगों को नजर अंदाज नहीं कर सकते। दोनों ही संगीत में इतनी विसमानता होने के पश्चात भी उसमें फ्यूजन की शक्यता इन प्रयोगों के द्वारा दिखाई पड़ती है। वैश्विकरण के इस काल में जहाँ हर जगह विज्ञान और तकनीकि आविष्कारों का प्राधान्य बढ़ रहा है, वहाँ अपने परंपरागत संगीत का क्या होगा? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। परंतु इसी के साथ बदलाव का स्वीकार करते हुए उससे कदम से कदम मिलाकर इन प्रयोगों को साथ में लेकर आगे बढ़ना यह भी जरूरी है। यदि ऐसे प्रयोगों का उद्देश्य सौंदर्यात्मकता तथा कलात्मकता को साकार करना है, तो इन फ्यूजन प्रयोगों से संगीत को हानि नहीं हो सकती। इसी उद्देश्य के आधार पर उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में फ्यूजन संगीत के प्रयोग होने चाहिए।

संदर्भ सूची

1. आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीकरण में भारतीय शास्त्रीय संगीत की भूमिका, महेन्द्रु नीलम बाला, कनिष्क पब्लिकेशन, दिल्ली, ISBN- 978-81-8457-280-3
2. विश्व संगीत का इतिहास, शर्मा अमल दास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. Indian Music and The West, Gerry Farrell, Clarendon Press, Oxford, ISBN- 0-19-816391-6
4. Ethnomusicology A Study of Intercultural Musicology, Dr. S.A.K. Durga, B.R. Rhythms Publications, ISBN-81-88827-01-0
5. Hindustani and Persio-Arabian Music An Indepth, Comparative Study, Dr Divya Mansingh Kaul, Kanishka Pubhications, ISBN-81-7391-923-2
6. Compact Oxford Dictionary & Word Power guide
7. https://en.wikipedia.org/wiki/Indo_jazz
8. http://www.jazzhouse.org/gone/lastpost2.php3?edit=1079642692
9. https://en.wikipedia.org/wiki/Ravi_Shankar
10. http://sessionville.com/articles/the-influence-of-indian-music-on-jazz

राजस्थानी लोकसंगीत रसात्मकता एवं लोक वाद्य

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

संगीत के इतिहास में धार्मिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवसरों आदि पर गायन के साथ वाद्य प्रयोग का विशेष महत्त्व सदैव रहा है, मानव द्वारा अपनी जिज्ञासा के कारण कुछ वाद्य स्वभाविक रूप से निर्मित हुए और कुछ वाद्य काल विशेष की आवश्यकता को ध्यान में रखकर बनायें गये या फिर इसे ही कुछ वाद्यों में मानव ने अपने बौद्धिक कौशल से परिवर्तन या परिवर्धन करके नवीन वाद्यों को जन्म दिया।[1] धीरे-धीरे यही वाद्य रचनात्मक दृष्टिकोण से विशेष प्रयोजनों एवं रसाभिव्यक्ति के दृष्टि से शहनाई की ध्वनि मंगल कार्यो की सूचक है। ईश्वरोपासना या धार्मिक कार्यों में घंटा घड़ियाल शंख आदि वाद्यों का प्रयोग युद्ध की सूचना के लिए नगाड़ा, दुन्दुभी तथा भेरी आदि का सांगीतिक इतिहास में विशेष महत्त्व दर्शाया गया है।

लोक कलाओं में रसात्मक दृष्टिकोण से यदि वाद्यों के महत्त्व की चर्चा की जाए तो अनेकानेक वाद्यों की संगति के पीछे मानव की वह भावनाएँ या संवेदनाएँ छिपी होती है जिनको उदीप्त करने में यह वाद्य विशेष भूमिका निभाते हैं। शंख की मधुर ध्वनि दूर से आते ही मन में पूजा-अर्चना की भावना उदीप्त कर देती है जबकि तंत्री वाद्यों की मधुर ध्वनि मन में कोमल भावनाओं को झंकृत कर देती है या फिर यही झंकार मन को प्रेम, वात्सल्य अथवा सम्बन्धों की मधुरता से मन को भर देता है और हृदय खिल उठता है। केवल इतना ही नही वीणा या सितार आदि वाद्यों का झंकार यहाँ मन में सुकोमल भावनाओं को जाग्रत करती है वही सारंगी जैसा गंभीर तंत्री वाद्य कोमल भावनाओं के साथ-साथ धीर-गम्भीर वेदना पूर्ण भावों को भी उदिप्त करने में विशेष भूमिका निभाती है। बांसुरी, मुरली या वंशी आदि पर बजाई गई अनेकानेक धुनें अथवा विशिष्ट स्वर समुदाय, वात्सलय, प्रेम, भक्ति तथा श्रृंगार आदि से सम्बन्धित अनेकाअनेक भावनाओं को उदीप्त करने में सक्षम होती है। लोक सांगीतिक परिप्रेक्ष्य में चाहे गीत हो या नृत्य हो या नाट्य में छुपे हुए भावों को अधिक सशक्त, अधिक मधुर और अधिक माधुर्य प्रदान कर देती है।[2]

ये वाद्य चाहे स्वतंत्र रूप से बजाये जाएं या गीत नृत्य, नाट्य के साथ विशिष्ट भावों की उत्पत्ति के लिए वाद्य ध्वनियों का विशेष महत्त्व होता है[3] प्रतीकात्मक रूप में यदि यह ध्वनियाँ अपने आप में किसी विशिष्ट पर्व, उत्सव या समारोह का प्रतीक बनकर उभरती है या फिर वेदना, पश्चाताप्, चिन्ता, भय, ममता, वात्सल्य, प्रणय आदि मिले-जुले भावों को दर्शाने में सहायक बनती है तो, दूसरी ओर यही ध्वनियाँ उन अभिव्यक्तियों की पूर्ति करती है, जिन्हें शारीरिक हाव-भाव से या गीतों में निहित शब्दावली के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, लोक प्रदर्शन के परिप्रेक्ष्य में फाग के गीत हो या बच्चे के जन्म पर गाये गये सोहर गीत या फिर विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले संस्कार गीत या इन्हीं अवसरों पर होने वाले लोक नृत्य आदि, ढोलक की धाप, घुंघरू की झंकार, मंजीरों की मधुर ध्वनि या फिर शंख निनाद अपनी-अपनी प्रतीकात्मकता को सिद्ध करते हुए यह वाद्य ध्वनियाँ विशिष्ट अवसरों पर हर्षोल्लास को रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से चर्मोत्कर्ष पर पहुँचा देती है। यह भी कहा

सहायक आचार्य, संगीत विभागाध्यक्ष, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

जा सकता है कि भावाभिव्यक्तिकरण तथा रसोत्पति के दृष्टि से लोक वाद्यों का विविध प्रयोग किया जा सकता है। एक विधि के अनुसार वाद्य भावों से सीधा सम्बन्ध स्थापित करते हैं और दूसरी विधि के अन्तर्गत वह नाट्य के पात्र द्वारा नर्तक द्वारा या फिर लोक गीत के शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति भावों को ग्रहण कर उदीप्त करते हैं। और उन्हें रस की चरम सीमा पर पहुँचाते हैं। भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में वाद्य विधान से यही प्रमाणित किया है कि नाट्य की सफलता में वाद्यों का विशेष महत्त्व रहता है। कला के दोनो पक्षों में चाहे भाव पक्ष या कला पक्ष, भाव पक्ष में वाद्यों के माध्यम से विषय वस्तु में निहित भावों को उदीप्त करने में और कला पक्ष के अन्तर्गत विषय वस्तु में वैचित्र्य एवं चमत्कार से परिपूरित सौन्दर्य को उभारने में वाद्य विशेष भूमिका निभाते हैं आल्हा तथा फाग में ढोलक नौटंकी में नकारा विवाह गीतों में ढोलकों या कहारों के गानों में हुडुका आदि वाद्यों के माध्यम से स्वर व लय जिस प्रकार वातावरण को तरंगित करते हैं उस समय गाने वाले तथा सुनने वालों के हर्षो स्वछन्द वातावरण के कृत्रिमता से दूर स्वर ताल व लय के प्रति मानव को जो विशेष रूचि होती है वह उसे हर्षोन्माद की अवस्था में व्यक्ति समुदाय प्रांत तथा देश आदि को सीमाओं से परे ले जाता है। तत वाद्य हो या घन वाद्य, अवनद्ध वाद्य हो या सुषिर वाद्य इन वाद्यों में इनकी प्रकृति के अनुरूप स्वर की प्रधानता लोक संगीत के सभी विद्याओं की रसात्मकता को चरम सीमा पर पहुँचा देती है। स्वरोत्पति के लिए तत् वाद्यों और सुषिर वाद्यों का प्रयोग और गति के लिए अवनद्ध तथा घन वाद्यों का प्रयोग संगीत की रसात्मकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण तो है ही लेकिन लोक संगीत में जिस प्रकार की हृदयग्राही उन्मुकता की आवश्यकता होती है। वह प्रकृति जन सामग्री से निर्मित इन वाद्यों की मधुर ध्वनि से निर्मित होकर मन को अतीव आनन्द प्रदान करती है। एक विशेष बात यह भी है कि लोक वाद्यों में तत् व सुषिर वाद्यों की अपेक्षा लय वाद्यों के रूप में तथा घन वाद्यों का बहुल्यता दिखाई पड़ती है।[4]

भारत के अनकोनेक प्रदेशों में यदि संथालों तथा भीलों के ताल वाद्यों में मादल, महाराष्ट्र में नाल, कहार जाति में हुडुका, अन्य क्षेत्रें में पखावज, तबला, नगाड़ा, तासा, डफ, मटका, चिमटा, झांझ, करताल आदि महत्त्वपूर्ण है तो राजस्थानी वाद्यों में ढोलक, डमरू, नगाड़ा, तासा, ढोल, चंग, छड़, टुकड़ो, घंटी, मंजीरा, झांझ, घुंघरू, घड़ियाल, थाली, करताल, जोड़ी झाल, डांडिया तथा कसन हटी नामक वाद्य राजस्थानी लोक संगीत कलाओं में निहित ताल वैचित्र को तथा ताल वैविध्य को दर्शाने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण तथा यहाँ के लोक गीतों में निहित माधुर्य के अनुरूप रस परिपोषित करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ताल वाद्यों के रूप में एकतारा, चिंकारा, रावणहत्था, सारंगी, जोगिया सारंगी, संघी सारंगी, सोरठा तुन्तुना आदि और सुषिर वाद्यों में अलगोजा, सतारा, नंढ, पुंगी, तुरही, सिंघी, मसक आदि वाद्य संगीत की विविधता का परिचय देते हैं वही राजस्थान प्रदेश में सुषिर वाद्यों के अन्तर्गत तुरही, शंख, नफीरी, अलगांजा, बीन आदि तथा तत् वाद्यों में एकतारा, मुखचंग जोगियासारंगी, बेन्जो आदि कुछ वाद्य राजस्थानी लोक गीतो द्वारा रस परिपोषित का एक उत्कृष्ट माध्यम है इन वाद्यो के माधुर्य तथा ओज गुण की प्रधानता इन वाद्यों की श्रेष्ठता को स्वतः सिद्ध करती है क्योंकि इन वाद्यों में लय तथा स्वर के स्वभाविकता एवं प्रकृतिक सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने की क्षमता विद्यमान है।[5]

राजस्थान प्रदेश के इन लोक कलाओं के परिप्रेक्ष्य में कलाकारों की व्यक्तिगत प्रदर्शन कृत्रिमता से मुक्त होता है लेकिन जब वृन्द वादन गीत, नाट्य, नृत्य और पार्श्व संगीत या चलचित्र संगीत आदि के रूप में लोक संगीत का प्रयोग किया जाता है तो उसमें भाव पक्ष की प्रधानता होती है। क्योंकि स्वतंत्र कार्यक्रम का सम्बन्ध किसी विशेष कथानक घटना से नहीं होता और अपने-अपने कला कौशल के योग्यता के आधार पर अपने वाद्य वादन से श्रोताओं को आनन्दित करता है, जबकि गीत नाट्य, नृत्य नाटिका या फिल्म में कथानक की पृष्ठभूमि को

ध्यान में रखकर ही लोक गीतों, लोक नाट्कों और लोक नृत्यों के साथ लोक वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि संगीत को रस परिपोषित में लोक वाद्यों की जो भूमिका है उसके कारण भारतीय संस्कृति आंशिक भाग के रूप में राजस्थानी लोक संगीत के माध्यम से की जाने वाली रसाभिव्यक्ति एवं रस परिपोषित में यहाँ के लोक वाद्यों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।[6]

राजस्थान लोक विधाओं में प्रयोग होने वाले हर वाद्य हर घर में किसी ना किसी रूप में मिल ही जाते हैं। गाँवों में इन वाद्यों की ध्वनि सुनते ही गली मुहल्ले, चौपाल तथा आसपास के क्षेत्र के लोग एकत्रित होकर लोक रस का आनन्द लेते हैं। इस क्षेत्र के विभिन्न प्रकार के वाद्य इस प्रकार हैं जो प्रायः लोक कला प्रस्तुति में अपना अहम स्थान प्राप्त करते हुए दिखाई देते हैं।

संदर्भ

1. संगीत वाद्य, पराजपे डॉ. शरदचन्द्र, पृ. 69
2. शोधदृष्टि पत्रिका, वाराणसी अंक-3 पृ 177
3. संगीत वाद्य, पराजपे डॉ. शरदचन्द्र, पृ. 1
4. लोक वाद्य, संस्कृति निदेशालय, सोनभद्र, उत्तर प्रदेश पृ. 28
5. संगीत वाद्य, पराजपे डॉ. शरदचन्द्र, पृ. 80
6. राजस्थान का लोक संगीत पुरुषोत्तमलाल मेनारिया पृ. 95

पाठ्यक्रम संशोधन की परिकल्पना

डा. अंजू कूमारी

दुनिया की प्राचीनतम् विधाओं में एक भारतीय संगीत की विशालतम समृद्ध व गौरशाली परंपरा आज भी नित नवीन शोधों व प्रयोगों से निरंतर समृद्धि की ओर बढ़ी जा रही है। आधुनिकता की होड़ में संगीत के बहुआयामी उपयोगिताओं को लेकर जितने शोध व प्रयोग हो रहे हैं और जिसके फलस्वरूप भारतीय संगीत की विविध चमत्कारिक शाक्तियाँ पुनर्उद्घाटित हो रही है वह संगीत को कला मात्र समझने वाली पीढ़ी के लिए अकल्पनीय है। शोधों व प्रयोगों का यह सिलसिला एक मैराथन प्रयास का परिणाम है। जिसकी बुनियाद 20वीं सदी के आरम्भ में संगीत की परंपरागत गुरू-शिष्य परंपरा आधरित शिक्षा से बिल्कुल अलग संगीत के स्कूली शिक्षा के रुप में पड़ी थी। प्रातः स्मरणीय पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर एवं पं. विष्णु नारायण भातखण्डे के द्वारा संगीत के पूर्ण सात्विक व अलौकिक स्वरूप को सभ्य समाज में पुनर्स्थापना जैसे महान उद्देश्य के लिए प्रारम्भ, संस्थागत संगीत शिक्षण प्रणाली आज अपने पूर्ण यौवन पर है। शिक्षा-परीक्षा-उपाधि के तहत फल-फूल रही इस शिक्षा प्रणाली में विभिन्न मानक शिक्षण संस्थानों राज्य स्तरीय शिक्षा समितियों, एवं विश्वविद्यालयों का महत्वपूर्ण योगदान है। एक निर्धारित पाठ्यक्रम के तहत शिक्षा, शिक्षणोपरान्त परीक्षा एवं तदुपरान्त उपाधि प्रदान करने के लिए सभी संस्थानों, समितियों, विश्वविद्यालयों के अपने-अपने पाठ्यक्रम निर्धारित है। निःसंदेह पाठ्यक्रम निर्माण समितियों ने पाठ्यक्रम को वैज्ञानिक व तर्कपूर्ण बनाने का प्रयास किया होगा। किन्तु संगीत के मानक शिक्षण संस्थानों, एवं कुछेक विश्वविद्यालय को छोड़ कर संगीत के शोध संस्थानों, समितियों, विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों का अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य विषयों के लिए तय मानकों के अनुरूप ही संगीत के लिए मानक तय कर पाठ्यक्रम निर्धारित कर लिये गये हैं। फलतः संगीत के व्यवहारिक तथ्यों की अनजाने में अनदेखी हो गयी।

संगीत एक समृद्ध व सबल शास्त्र पक्ष के बावजूद पूर्णतः व्यवहारिक प्रधान विषय है। दूसरे शब्दों में संगीत एक ऐसा व्यवहारिक प्रधान विषय है जिसका शास्त्र भी समृद्ध व सबल है। इसका शास्त्र जहाँ एक तरफ सरस साहित्य, इतिहास, अंक गणित, चित्रांकन, वैज्ञानिक सूक्ष्मता जैसी अनेक विशेषताएँ सहेजे है वहीं दूसरी तरफ संगीत का व्यवहारिक पक्ष आदिकाल से ही आत्मरंजन से लोक रंजन के द्वारा ईश्वर रंजन तथा मोक्ष प्राप्त करने का सरल माध्यम है, इसके साथ-साथ यह साधना, योग, ध्यान, एवं चिकित्सा विज्ञान का अनूठा संगम भी है। यह विडंबना नहीं तो और क्या है कि इस सबके बावजूद संगीत को आज भी महज एक मनोरंजन का साधन या ललित कला के रुप में ही जाना जाता है। जबकि संगीत के विभिन्न क्षेत्रों में दिनानुदिन नये-नये शोध हो रहे हैं, नित नवीन चमत्कारिक उपयोगितायें पुनर्उद्घाटित हो कर सामने आ रही हैं। किन्तु संगीत अधिकांश शिक्षा समितियों, विश्वविद्यालयों में एच्छिक विषय के रुप में स्वीकृत है किन्तु कुछेक मानक शिक्षण संस्थानो एवं विश्वविद्यालयो को छोड कर कहीं संगीत का स्वतंत्र पाठ्यक्रम नहीं है।

अध्यक्ष, संगीत विभाग, मदन अहिल्या महिला महाविद्यालय, नवगछिया

इस लिहाज से सबसे से राग निर्माण एवं स्वर
संयोजन के द्वारा राग एवं राग के अनुरूप भाव एवं
रस उत्पन्न करने में कौशल प्राप्त करना एक प्रत्यक्ष
लक्ष्य होता है। इसलिए एक राग का कुशलतापूर्वक
पूर्ण विस्तार का पूर्ण स्वाभिमान प्राप्त करने में महीनों
का समय लग जाते है। जबकि बाकई उपाधि प्राप्त
करने के लिए निर्धारित पाठ्यक्रमों में एक वर्ष की
अवधि में कई रागों में एकाधिक गायन शैलियों का
ज्ञान भी अपेक्षित होता है। फलतः परीक्षा और
डिग्री की होड़ में गायकी और ज्ञान से कोसों दूर
जाता हुआ संगीत सिर्फ कागजों व किताबों में
सिमट कर रहा प्रतीत होता है। इस रूप में तो
संगीत की संस्थागत शिक्षण प्रणाली अपने मूल उद्देश्य
से कोसों दूर जाती दिख रही है। ऐसी परिस्थिति में
संगीत के पाठ्यक्रमों का व्यवहारिकता की कसौटी
पर सूक्ष्म अध्ययन कर नये सिरे से एक थिर-नवीन
पाठ्यक्रम का निर्माण बेहद प्रासंगिक है।

पाठ्यक्रम निर्माण समितियों को संगीत के
पाठ्यक्रमों की संगीत के परिप्रेक्ष्य में व्यवहारिकता
की कसौटी पर सूक्ष्म अध्ययन कर, एक नये सिरे से
संगीत का पाठ्यक्रम बनाने के लिए एक नये मानक
का निर्धारण करना आवश्यक प्रतीत होता है। किन्तु
इसके लिए सर्वप्रथम पाठ्यक्रम निर्माण समितियों
को संगीत के प्रति पूर्व स्थापित पूर्वाग्रह से बाहर
आना आवश्यक होगा। संगीत को मनोरंजन का
साधन या सिर्फ सजित कला समझने की परंपरा से
हमें एक नयी मानसिकता बनानी होगी। जिसके
तहत संगीत को संगीत के नाम से संगीत के रूप में
ही जानने, समझने, एवं स्थापित करने की आवश्यकता
होगी। ठीक उसी तरह जैसे कि हम विज्ञान को
विज्ञान के नाम से विज्ञान के रूप में जानते है।

संगीत एक व्यवहारिक प्रधान एवं गुरूमुखी
विषय है इसका भी ध्यान रखना होगा। एक से
अधिक गुरू के सानिध्य में सीखने से छात्र के समक्ष
दुविधा की स्थिति उत्पन्न होती है। क्योंकि एक ही
परम्परा में शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद दो
अलग-अलग शिष्यों की गायन या वादन शैली
अलग-अलग होती है। तदनुसार दो अलग-अलग
शिक्षक/प्राध्यापक के ज्ञान एवं शिक्षण शैली में भिन्नता
स्वभाविक है। अतः अलग-अलग कक्षा एवं
अलग-अलग शिक्षक/प्राध्यापक द्वारा पढ़ाये जाने
की विश्वविद्यालयी व्यवस्था में, एक ही गीत,
अलग-अलग शिक्षक/प्राध्यापक के ज्ञान एवं शिक्षण
शैली में भिन्नता के कारण छात्रों के समक्ष असमंजस
की स्थिति खड़ी कर देते हैं। संगीत के परिप्रेक्ष्य में
इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये एक नये मानक पर
आधारित पाठ्यक्रम से ही संगीत की संस्थागत
शिक्षा प्रणाली अपने अपेक्षित उद्देश्य को प्राप्त कर
सकेगी।

इस क्रम में कुछ आवश्यक विचारणीय बिन्दु
इस प्रकार हैं-

(1) एक अलग स्वतंत्र पाठ्यक्रम :- संगीत
पढ़ने के इच्छुक छात्रों के लिए एक पूर्णतः अलग
एवं स्वतंत्र पाठ्यक्रम का निर्माण पहली आवश्यकता
है, जिसमें संगीत के छात्र को संगीत से इतर,
अनिवार्य विषयों को छोड़ कर, किसी अन्य समूह के
विषयों की ओर झांकने की आवश्यकता न पड़े।
जिस तरह विज्ञान के छात्रों को भौतिकी, रसायन
विज्ञान गणित एवं जीव विज्ञान ही विकल्प होते हैं
उसी तरह की व्यवस्था संगीत में भी किया जाना
चाहिए। यह सर्वथा मुमकिन भी है और इसका
समुचित आधार भी, सिर्फ किसी पूर्वाग्रह से उपर
उठ कर एक नये नजरिये से गौर करने की जरुरत
है। क्योंकि विज्ञान की तरह ही संगीत भी अपने
आप में कई विधाओं का समूह है।

संगीत को विधा के आधार पर मुख्य रूप से
चार भागों में बाँटा जाता है :-

(क) गायन (ख) वादन
(ग) नृत्य (घ) तबला।

**तबला को छोड़ कर प्रत्येक के तीन स्वतंत्र
स्वरूप हैं :-**

(क) ज्ञानतीय, (ख) उपशास्त्रीय (ग) भाव।

पुनः संगीत में तीन प्रमुख एवं सर्वथा भिन्न
शैलियाँ प्रचलित हैं :-

(क) ख्याल, (ख) ठुमरी,
(ग) ध्रुपद (घ) टप्पा।

अन्य कुछ गायन शैलियां भी हैं यथा :-
तराना, सिरगट, चतुरंग, टप्पा इत्यादि।

इतनी व्यापक विविधताओं के बावजूद संगीत को सिर्फ ललित कला समझा जा रहा है। यह दुर्भाग्यपूर्ण विडम्बना नहीं तो और क्या है।

(2) शिक्षक एवं छात्र का निर्धारण :- प्रत्येक वर्ष प्रत्येक कक्षा में प्रत्येक शिक्षक या प्राध्यापक केलिए छात्र या कहें प्रत्येक वर्ष प्रत्येक कक्षा में एक छात्र समूह केलिए शिक्षक निर्धारित हों। ताकि गुरू-शिष्य परंपरा मूर्त रूप ले सके और किसी एक शैली विशेष की पूर्ण गायकी का निर्माण हो सके।

(3) रागों की संख्या में व्यावहारिक कटौतीः- एक वर्ष की अल्पावधि में 10 से 45 रागों की तैयारी तो दूर स्वर विस्तार या आलाप में स्वर लगाने का तरीका भी पूरी तरह समझना नामुमकिन है। इसलिए प्रत्येक वर्ष के लिए रागों की संख्या का निर्धारण करने में रागों के व्यवहारिक पहलुओं को ध्यान में रख कर किया जाय तो यह भी विशिष्ट गायकी के निर्माण की दिशा में एक सार्थक पहल सिद्ध होगी।

(4) गायन शैली चयन में छात्रों की स्वतंत्रताः- वर्तमान में व्याप्त पाठ्यक्रम व्यवस्था में संगीत के छात्र को सभी गायन शैलियों की जानकारी आवश्यक है। छात्रों के समक्ष यह भी एक बेहद कठिन चुनौती होती है। क्योंकि ध्रुपद और ख्याल दोनो परस्पर अलग प्रकृति की गायन शैलियाँ हैं। दोनों के लिए गायकी निर्माण की विधियां भी पूरी तरह अलग है। नये प्रावधानो में प्रमुख गायन शैलियों में से छात्र को स्वेच्छा से दो समप्रकृति गायन शैलियों को चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। विशिष्ट गायकी के निर्माण की दिशा में अवश्य ही यह भी एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होगा।

इस प्रकार नये दृष्टिकोण से संगीत की आधारभूत मौलिक आवश्यकताओं को चिह्नित कर इस तरह के अन्य तमाम पहलुओं पर गहन अध्ययन एवं मनन-चिन्तन कर संगीत के लिए एक पूर्णतः अलग एवं स्वतंत्र पाठ्यक्रम निर्माण की रूपरेखा तैयार की जा सकती है। यदि ऐसा हुआ तो निश्चय ही संगीत की संस्थागत शिक्षा प्रणाली अपने अपेक्षित उद्देश्य को प्राप्त कर सकेगी।

गुरू-शिष्य परम्परा से उन्मुख संस्थागत संगीत शिक्षा

श्रीमती अणिमा श्रीवास्तव

विश्व के हृदय-पटल की आभा नियत भाव से प्रकट हो रही है। आकाश में सूर्य के स्वर्णिम किरणों और शीतल मन्द मलय में कुछ तो अद्‌भुत अवश्य है जो केवल वस्तु मात्र नहीं, नहीं घटना तक सीमित है, यह तो जीवन का विलक्षण उत्स है, रसमय संचार है, जो नित्य आप्लावित और आनंदित हो रहा है। इस रसमय क्षेत्र में हमारे अन्तर और बाध्य राग-अनुराग का सुन्दर सामन्जस्य दृष्टिगत हो रहा है, जो शाश्वत संगीत का प्रस्फुटन है और जो प्राचीन काल से अबतक अपने अस्तित्व को ढूढ़ंता और परखता हुआ हमें कुछ नया, सरल, सरस तथा सुग्राह्य स्वरों के प्रभाव को जन-जन तक पहुँचाने हेतु अभिप्रेरित कर रहा है। यूं तो संगीत में मुख्य सात स्वर निहित है किन्तु ये महज सात स्वर नहीं संगीत के विशालतम साम्राज्य का आधार है। इस विशाल साम्राज्य में प्रवेश कराने व मार्ग निर्देशित करने का महत्वपूर्ण कार्य गुरू का होता है। इन्हीं गुरू को मनुस्मृति में आचार्य और उपाध्याय भी कहा गया है, यथा-

उपनीय तु सः शिष्यं वेदमध्यायेद् द्विजः।
संकल्प सरहस्यं च तमाचार्य प्रचछते।।[1]

अर्थात् जो ब्राह्मण शिष्य का उपनयन करने के पश्चात् यज्ञ विद्या तथा उपनिषद् सहित वेद पढ़ाये वह आचार्य कहलाते है। शिक्षा समाज-सापेक्ष जीवन निर्माण की कला है। आदर्श गुरू की महत्ता को ईश्वरोपरि माना गया है, तभी कबीर जी ने कहा-

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काँके लागूँ पाय।
बलिहारि गुरू आपनो जिन गोविन्द दियो पठाय।।

शिक्षा व ज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, इसी व्यापक क्षेत्र में संगीत की शिक्षा भी निहित है। संगीत मानव जीवन की आन्दोलपलब्धि है जो क्रमशः सभ्यता व संस्कृति के साथ विकसित होती जाती है। जैसे प्रबंध गान से अब तक ख्याल व दूसरी ठप्पा गायन का विकास होता गया और नित्य यह विकास वांछित भी है। गुरू का अर्थ ज्ञान की गूढ़ता को शिष्य को इस प्रकार प्रदान करना कि शिष्य उसे आत्मसात् कर गुरू की कला ज्ञान व गुण का प्रतिरूप बन सके। प्राचीन काल में प्रतिष्ठित गुरू-शिष्य परम्परा उच्चकोटि के आदर्श को दर्शाता है। गुरू की छत्रछाया में रहकर शिष्य संगीत विद्या की किसी एक या एक से अधिक विद्या में निपुण हो जाते थे। इस परम्परा में गुरू के प्रति शिष्य की निष्ठा व समर्पण, आदर व सम्मान, कठोर साधना से पल्लवित-पुष्पित होते थे। जबतक गुरू शिष्य की योग्यता से संतुष्ट नहीं हो जाते थे तबतक उन्हें अपनी कला का प्रदर्शन करने का अधिकार नहीं था। गुरु-शिष्य परम्परा में शिक्षा व्यक्तिगत होती थी, जिसमें गुरू-शिष्य के दोषों को यथासंभव संशोधित करते थे तथा जिज्ञासु शिष्य की ज्ञान-पिपासा को शांत करते थे। डॉ. तृप्ता कपूर के शब्दों में-"एक विद्वान् गुरु के सान्निध्य में ज्ञान पिपासु शिष्य अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करता था। विशेष रूप से संगीतान्तर्गत शिक्षा की यह प्रणाली प्राचीन काल से आधुनिक काल तक चली आ रही है।"[2]

गुरू शिष्य परम्परा का मूल अनुशासन में निहित था। प्राचीन समय में गुरूओं या उस्तादों से संगीत सीखना बड़ा कष्टसाध्य था। संगीत शिक्षा कठोर

शोधछात्रा, मगध महिला महाविद्यालय, पटना

मेहनत और सच्चा समर्पण माँगती थी। उस्तादों से संगीत की बारीकियाँ सीखना लोहे के चने चबाने जितना कठिन था। श्री बाल कृष्ण गर्ग ने इसका समुचित वर्णन 'संगीत' पत्रिका के 'घराना अंक' में किया है—''तालीम'' शब्द को तीन विशेषणों से विभूषित कर रखा था। ''प्रथम सांप्रदायिक या वंशानुगत रहस्यों को खासुलखास (अतिविशिष्ट) तालीम कहा जाता था, जो केवल संतति के हिस्से की चीज थी। संबंधियों को दी जानेवाली तालीम को 'तालीम खास' कहा जाता था और 'तालीम आम' शिष्यों के लिए थी।''[3]

इस प्रकार संगीत का ज्ञान प्राप्त करना इतना सहज नहीं था। उस्ताद से सीखना हो तो उन्हें प्रसन्न करना होता था, उनका विश्वास जीतना होता था। इसका सीधा सम्बन्ध तत्कालीन सामाजिक परिस्थितिों से था। आधुनिक शास्त्रीय संगीत का विकास जिन सामंती परिस्थितियों में हुआ था, आज से एकदम भिन्न थी। उस समय शास्त्रीय संगीत के संरक्षक व गुणग्राहक राजा-महाराजा हुआ करते थे। बड़े-बड़े राजदरबार अच्छे उस्तादों को अपनी शोभा बनाने के लिए उत्सुक रहते थे। आजकल के भाँति कलाकारों का भविष्य उतना अनिश्चित नहीं था। राजाश्रय मिलते ही उस्तादों, गुणियों का जीवन सुरक्षित हो जाता था और संभवतः उस्तादों में स्वेच्छाचारिता का जन्म होता था। जिज्ञासु व होनहार शिष्यों को कठिन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना होता था। कहते है कि उस समय केवल स्वर ज्ञान में वर्षों लग जाया करते थे। एक-एक हजार दानों की माला के साथ स्वर का रियाज हुआ करता था। स्वरों के अभ्यास में इतना समय और शक्ति लगानी पड़ती थी कि आज उसकी कल्पना भी असंभव है। जबतक उनके अभ्यास और स्वर लगाव से गुरू संतुष्ट नहीं हो जाते थे तब तक राग और बन्दिश की बारी नहीं आती थी। इस जमाने में धारण थी कि **एक साधे सब सधे, सब साधे सब जाये।'** गुरू शिष्य परम्परा में शिष्यों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए कितने पापड़ बेलने पड़ते थे उसका एक बड़ा अच्छा उदाहरण बालकृष्ण गर्ग जी के शब्दों में निम्नांकित हैः-''ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध गायक उस्ताद बन्ने खाँ के साथ भी एक विचित्र वाकया गुजरा। हद्दू-हल्लू खाँ उन्हें किसी कीमत पर संगीत की तालीम देने को राजी नहीं थे किन्तु उन्होंने उनका पीछा नहीं छोड़ा। ग्वालियर की बात है। भयानक गर्मी पड़ रही थी। बैलगाड़ी में बैठकर हद्दू खाँ और हस्सू खाँ साहब तानसेन के समाधि उत्सव में भाग लेने जा रहे थे रास्ते में गर्मी से घबराकर एक बैल का प्रणांत हो गया। उस निर्जन स्थान पर दूसरे बैल का प्रबंध होना असंभव हीं था। अब गाड़ी कैसे चले। उस्ताद लोग चिंता में डूब गए। तब बने खाँ ने स्वयं गाड़ी में लगकर उस बैल की पूर्त्ति की और गाड़ी खींचकर गन्तव्य स्थान तक उस्तादों को पहुँचा दिया। इस घटना से हद्दू-हस्सू खाँ विशेष प्रसन्न हुए और उन्होंने बन्ने खाँ को अपने घराने की खास तालीम देकर उत्कृष्ट् गायक बना दिया।''[4]

इस प्रसंग में हमें शिष्य के सीखने की उत्कट् इच्छा, पूर्ण समर्पण व कठोर अनुशासन की जीता-जागता रूप देखने को मिलता है। आज के परिवेश में ऐसी अपेक्षा कहाँ तक संभव है ? प्राचीन काल से चली आ रही इस गुरू शिष्य परम्परा ने मध्यकाल में घराने का रूप ले लिया। 'घराना' गायन-वादन व नृत्य की विशिष्ट शैली को कम से कम तीन पीढ़ियों तक लेकर बढ़ने की गुरु-शिष्य परम्परा है। इसमें विशेषता के साथ कुछ त्रुटियाँ भी दिखाई पड़ती है मसलन प्रत्येक घराने का स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मानना और अपने शिष्य को दूसरे घराने की छाया से भी बचाने की प्रवृति। उदाहरण स्वरूप जयपुर घराने के प्रसिद्ध कलाकार उस्ताद भुर्जी खाँ से उनके पिता व गुरू उ. अल्लादियाँ खाँ इसलिए नाराज थे क्योंकि उनकी गायकी में ग्वालियर घराने का प्रभाव ज्यादा था और जयपुर घराने की गायकी का प्रभाव कम। साथ ही इस काल में संगीतज्ञों का लगभग अनपढ़ होना भी संगीत के शास्त्र पक्ष को गौण करता रहा। संगीत शिक्षा व्यक्तिगत होने से गुरू के दोषों का भी प्रतिरूप शिष्य हो जाते थे। गुरू के अतिरिक्त किसी अन्य गुणियों से सीखने की मनाही संगीत का व्यापक विस्तार करने में भी बाधक थी। जब कोई विद्या बहुत जटिल हो जाए और सीखना भी अति कष्ट साध्य हो तो वह धीरे-धीरे जड़ हो जाती है और यही जड़ता परिवर्तन की माँग करती है। इसी माँग को क्रमशः मौला बख्श, भातखण्डे

की पहचान की ने समझा और यहीं से गुरु-शिष्य परम्परा संस्थागत शिक्षा की ओर उन्मुख हुआ। इसके पश्चात् तो जैसे संगीत संस्थाओं के निर्माण की परिपाटी चल पड़ी। लाहौर में गांधर्व महाविद्यालय (1901) इलाहाबाद का माधव संगीत महाविद्यालय (1918) लखनऊ का भैरिस कॉलेज ऑफ म्यूजिक (1926) पुणे का 'भारत गायन समाज', इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय (खैरागढ़), बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में संगीत संकाय तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय आदि ने अपनी संगीतात्मक नींव रखी।

संस्थागत संगीत शिक्षण द्वारा संगीत जगत में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये है। कतिपय संगीत जिज्ञासु और प्रेमी भारत के कोने-कोने में स्थित अनगिनत संस्थाओं के माध्यम से संगीत का ज्ञान प्राप्त कर रहे है। भारत के बाहर भी लंदन में "सरस्वती इन्स्टीच्यूट ऑफ ओरिएन्टल म्यूजिक" की स्थापना मेनचेस्टर के कुछ कला केन्द्रों में भारत के शास्त्रीय वृत्तों का प्रशिक्षण तथा अमेरिका मिनी सोटा विश्वविद्यालय में तथा अनेक विदेशी स्थलों पर भारतीय संगीत के प्रशिक्षण ने भारतीय संगीत को अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर सम्मान दिया है। वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में संस्थागत शिक्षा के अन्तर्गत संगीत के व्यवहारिक पक्ष के साथ-साथ सैद्धान्तिक पक्ष पर भी बल दिया जाने लगा है और संगीत ने सैद्धान्तिक और क्रियात्मक अध्ययनों की दृष्टि को नयी दिशाएँ प्रदान की है। पहले गुरु शिष्य परम्परा में न तो निश्चित पाठ्यक्रम था न सीखने की निश्चित अवधि और ना ही सैद्धान्तिक ज्ञान और तो और संगीत को योग्य गुरु से सीखना भी एक टेढ़ी खीर थी। किन्तु आज संस्थागत शिक्षा ने यह सब प्रदान किया है निश्चित पाठ्यक्रम, निश्चित अवधि, निश्चित रीति और शास्त्र व क्रियात्मक पक्ष का ज्ञान। संस्थागत शिक्षण प्रणाली के सराहनीय परिणाम हमारे सामने आ रहे है किन्तु आज भी कुछ बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है। आज संस्थाओं से निकले विद्यार्थी घराने के गुरु-शिष्य परम्परा के शिष्यों की गायकी या प्रस्तुति के सामने टिक नहीं पाते, तो क्या यह शिक्षण प्रणाली की उपलब्धि है ? यह एक जटिल समस्या है। डॉ. मधुबाला सक्सेना के शब्दों में- "सैद्धान्तिक प्रगति के प्रभावशीलता के कारण यह विषय अन्य पाठ्य विषयों के बीच उपेक्षित ही रहा।"[6]

संगीत एक रंगमंचीय कला है, जो बिना कुशल प्रशिक्षण व परिपक्वता के संभव नहीं। इसके लिए सबसे महत्वपूर्ण है संगीत का शैक्षिक स्वरूप। क्या आज संस्थाओं में दी जाने वाली संगीत शिक्षा को संतोषजनक कहा जा सकता है? संगीत को अन्य विषयों की तुलना में खड़ा कर उतना ही सीमित समय देना कहाँ तक उचित है? यह विषय नहीं महाविषय है। अतः इसे उसी दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए। ITC कोलकाता का उदाहरण लिया जा सकता है। पारदर्शी पाठ्यक्रम, जिसमें सात साल में 21 राग सिखाने की परम्परा है। योग्य गुरूओं के संरक्षण में योग्य शिष्यों की सहभागिता दीखती है। हमारे संगीत शिक्षण का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है कि प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर इसे ज्यादा महत्व नहीं दिया जाय। जहाँ विषय रूप में है भी तो वहाँ अध्ययन-अध्यापन में भी शिथिलता है। संगीत की आत्मा रियाज है और आज संगीत में वह धैर्य, संयम और समर्पण की भी दिन-ब-दिन कमी दिखाई पड़ रही है। आज शनैः शनैः संगीत बंधन मुक्त होता जा रहा है, जबकि कुछ बंधन परम आवश्यक है। बंधन मुक्त प्रवृत्ति ने ही कलाकारों के निर्माण में बाधा उत्पन्न कर दिया है और इस सत्य की अनदेखी नहीं की जा सकती। प्राचीन काल के पर्दा-प्रथा को हटा कर हमने गर्व का कार्य किया किन्तु क्या आज भी इतने पर्दे की आवश्यकता नहीं जिससे स्त्री की स्मिता की रक्षा हो सके। हमें अपने अतीत के विरासत में झांकना होगा अपने धरोहर अपनी थाती को खंगालना होगा। संगीत उत्तम भविष्य के लिए उत्तम विचारों का मंथन अनवरत जारी रखना होगा।

आधुनिक युग आर्थिक युग है। इस युग में वैसी कोई भी विद्या या शिक्षा उपयोगी नहीं मानी जा सकती जो अर्थोपार्जन में सहायक न हो। अतः संगीत को भी इस दृष्टिकोण से सँवारना होगा जिससे उसके प्रति समर्पित लोगों को दर-दर की ठोकर ना खानी पड़े। जब शिक्षार्थी स्वावलंबी हो सकेगा तभी वो संगीत के उचित सम्मान हेतु प्रयासरत् हो सकेगा। इस विषय के अच्छे से अच्छे कलाकार इस कारण निराशापूर्ण जीवन जीने के लिए बाध्य है,

क्योंकि उन्हें उनकी कला का उचित सम्मान नहीं प्राप्त हो रहा है। दूसरी ओर समाज में आज भी इसे उचित सम्मान प्राप्त नहीं है। इस विषय से बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ लेकर भी छात्र उचित स्थान नहीं पा रहे है। अतः रोजगार परक पाठ्यक्रम की नितांत आवश्यकता है और सरकार का इस ओर ध्यान आकृष्ट करना भी आवश्यक है। नहीं तो हमारी संस्कृति की इस अनमोल धरोहर का अधोपतन रोकना असंभव हो जायेगा। छात्रों को योग्यता अनुसार संस्थाओं द्वारा पथ निर्देशन मिलें। संगीत के क्षेत्र में कई दिशाएँ है। जैसे-संगीत निर्देशन, संगीत अरेंजर, गीतकार, पार्श्व गायक, सहायक कलाकार, संगतकार, साउण्ड रिकॉर्डर, म्यूजिक थेरेपिस्ट, शिक्षक आदि। इस निर्देशन से निराशाजनक जीवन में आशा का रसमय संचार हो सके। हमलोग ग्लोबलाइजेशन के दौर से गुजर रहे हैं। अतः परिवर्तन वांछनीय है। परिवर्तन का रूकना विकास का रूकना होगा। दिशाहीनता कहीं इस अद्‌भुत, अतुलनीय कला को चौराहे पर लाकर ना खड़ा कर दे उसके पहले हमें जागना होगा और विवेकानन्द जी के कहे इस बात पर अमल करना होगा।

"जागो, उठो, चलो तब तक जब तक मंजिल न मिलें।"

संदर्भ पुस्तकें :

1. मनुस्मृति, 2.97
2. उत्तरी भारत में संगीत शिक्षा, कपूर तृप्ता, पृ.-31
3. संगीत घराना अंक, गर्ग बालकृष्ण, पृ.-8
4. संगीत घराना अंक, गर्ग बालकृष्ण, पृ.-8
5. भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, डॉ. मधु, पृ.-84

आधुनिक समय में गौड़ीया सम्प्रदाय के संकीर्तन का स्वरूप

राधा कमल

गौडीया सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदायों की एक प्रमुख शाखा है। जिसमें भगवान श्री कृष्ण को ही सर्वोपरि परम ब्रहम मानकर उनकी उपासना की जाती है। इस संदर्भ में 'ब्रह्म संहिता' में उल्लेख मिलता है कि ब्रह्म सम्प्रदाय भगवान ब्रह्मा से प्रारम्भ हुई, उसके अनुसार भगवान विष्णु ही सर्वोत्तम देव है। इस सम्प्रदाय में आगे चलकर नारद जी और उनके शिष्य श्री व्यास जी हुए। यहाँ वर्णन योग्य है कि श्री व्यास जी ने ही 'महाभारत' और श्रीमद्भागवत' महापुराण की रचना की, जो कि वैष्णव सम्प्रदाय के सबसे प्रमुख ग्रन्थ है। इस सम्प्रदाय में आगे चलकर श्री माधव मुनि जी आये जिन्होंने इस सम्प्रदाय के विकास मे बहुमूल्य योगदान दिया। इसीलिए इसे माधव सम्प्रदाय भी कहा जाने लगा। माधव मुनि के बाद इस सम्प्रदाय में श्री माधविंदर और ईश्वर पुरी जी हुए। परन्तु इस सम्प्रदाय को सबसे अधिक प्रभावित मध्यकाल में हुए आचार्य चैतन्य महाप्रभु ने किया। गौड़ीया सम्प्रदाय का प्रारम्भ भी वैदिक काल से ही माना जाता है। परंतु इसकी प्रतिष्ठित विकसित रूपरेखा मध्य युगीन भक्ति आंदोलन के समय प्राप्त हुई।

इसलिए गौड़ीया सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक चैतन्य महाप्रभु माने जाते हैं। और इस सम्प्रदाय को 'चैतन्य संप्रदाय' भी कहा जाता है। चैतन्य मत का जन्म एवं प्रचार यद्यपि गौड़ देश में हुआ तथापि इसका शास्त्रीय रूप वृदांवन में निवास करने वाले गौड़ीय गोस्वामियों द्वारा निर्मित हुआ था। अन्य समकालीन प्रचलित सम्प्रदाओं में अपनी विशिष्ट शैली तथा विलक्षण रूप रेखा के कारण यह संप्रदाय राध कृष्ण की (भक्ति का एक सांकेतिक संप्रदाय बन गया। इस संप्रदाय में भक्ति के विभिन्न रूप एवं साधन बताए गए है। परंतु इन सब में उत्तम साधन कीर्तन ही माना गया। यद्यपि समय के साथ इस संप्रदाय की कुछ शाखाएं विकसित हुई परंतु उन सबकी पद्धतियाँ एवं सिद्धान्तों मूल राध कृष्ण की भक्ति एवं उनकी प्राप्ति की यत्नशीलता है।

गौड़ीया सम्प्रदाय का भक्ति साहित्य – गौड़ीया सम्प्रदाय का साहित्य के क्षेत्र में भी अमूल्य योगदान है। इसके भक्त कवियों एवं आचार्यों ने कृष्ण भक्ति को मूल मानकर कई ग्रंथों एवं पदों की रचना की है। इस संप्रदाय के साहित्य में छः गोस्वामियों की रचनाओं का मुख्य प्रचलन होने के कारण इनका नाम भक्त कवियों की श्रेणी में उल्लेखित है। जो इस प्रकार है -

सनातन गोस्वामी - सनातन गोस्वामी का जन्म सन् 1546 में बंग देश में हुआ। इनके पिता का नाम कुमार देव था। सनातन गोस्वामी मुसलमान शासक हुसैन शाह के राज कर्मचारी थे। तथा वाद में चैतन्य महाप्रभु की धारणाओं से प्रभावित होकर वृंदावन में निवास करने लगे। वे परम भक्त एवं महान विद्वान थे उन्होंने संस्कृत भाषा में कई महत्वपूर्ण रचनाएं की जो कि गौड़ीया भक्ति साहित्य की अमूल्य निधियां हैं। उनकी मुख्य रचनाएं हरि भक्ति विलास, ब्रह्म भागवतामृत, वैष्णव तोषिणी एवं श्री कृष्ण लीलास्तव। उनके द्वारा रचित पदों में लय व संगीत की झलक स्पष्ट देखने को मिलती है जिसका कथात्मक कीर्तन आज भी गौड़ीय मठों में किया जाता हैं।

संगीत विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

रूप गोस्वामी -ये सनातन गोस्वामी के छोटे भाई थे जिनका जन्म 1546 के लगभग हुआ था। रूप गोस्वामी जी परम भक्त एवं विद्वान थे जिन्होंने कृष्ण उपासना की रस रीति को भावुक भक्तों के लिए सुलभ कर दिया। वे भक्ति तत्व एवं रस शास्त्र के महान पंडित थे। चैतन्य महाप्रभु की भक्ति सें प्रभावित होकर उन्होंने वैष्णव भक्ति की कल्पनाओं को रस विवेचन से प्रयुक्त किया है। उनकी मुख्य रचनाएं विदग्ध माधव नाटक, ललित माधव नाटक, भक्ति रसामृत सिंधु, उज्ज्वल नीलमणि, लघु भावनामृत नाटक चंद्रिका।

गोपाल भट्ट गोस्वामी -इनका जन्म दक्षिण की कावेरी नदी के तटवर्ती श्रीरंगम् के निकट बेलमंडी ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम वैडट भटट था गोपाल भट्ट के पास द्वादश शालिग्राम शिलाएं थी जो उन्हें यात्रा के दौरान मिली थी तथा इन्हीं शिलाओं में भगवान श्री कृष्ण की मूर्ति प्रकट हुई जिसे राधा रमण लाल जी कहा जाता है। जिनका मंदिर श्री वृंदावन धाम में है। तथा गोपाल भटट जी के अनुयायों से ही गौड़ीय सम्प्रदाय की राधा रमणीय शाखा का जन्म हुआ।

गोपाल भटट जी वैष्णव ग्रंथों के ज्ञाता, परम विद्वान तथा विरक्त भक्त थे। उनकी प्रमुख रचना हरि भक्ति विलास है। यह वैष्णव स्मृति ग्रंथ सनातन गोस्वामी द्वारा रचित है परन्तु इसका विस्तार गोपाल भट्ट ने किया था। संस्कृत रचनाओं के अतिरिक्त उन्होंने संभवत ब्रज भाषा में भी कुछ पद्य रचे थे। उनके नाम से ब्रज भाषा के तीन पद 'पद कल्पद्रुम' में मिलते हैं।

रघुनाथ दास गोस्वामी -गौड़ीया भक्तों में वे 'दास गोस्वामी' के नाम से प्रसिद्ध है। वे सप्तग्राम तालुका के धनी जमींदार के एक मात्र पुत्र थे तथा वैराग्य, विरह तथा संयम के मूर्ति मान स्वरूप थे। उनके द्वारा रचित तीन ग्रंथ रत्नावली, मुक्ताचरित एवं दान केलि चिंतामणि है।

रघुनाथ भटट गोस्वामी -वे चैतन्य महाप्रभु के प्रसिद्ध भक्त तपन मिश्र के पुत्र थे। ये उच्च कोटि के विद्वान एवं संगीत गायन कला में निपुण थे। कृष्ण दास कविराज ने चैतन्य चरितामृत में रघुनाथ भट्ट जी की कथा शैली के संबंध में लिखा है कि वे कोकिल जैसे कंठ से विभिन्न रागों में भागवत के श्लोकों का गायन करते थे। वे तीन चार रागों में फेर बदल कर एक एक श्लोक का पाठ किया करते थे।

जीव गोस्वामी -ये सनातन रूप के छोटे भाई अनुपम उपनाम के एक मात्र पुत्र थे। जीव गोस्वामी चैतन्य मत के महान विद्वान तथा विख्यात संत हुए है। उनके ग्रंथों में उनकी स्वतंत्र रचनाओं के अतिरिक्त रूप सनातन के ग्रंथों की विद्वतापूर्ण टीकाएं भी है। उनकी रचनाएं षट् संदर्भ, सर्व संवादिनी, क्रम संदर्भ दुर्गम संगमनी, लोचन रोचनी माधव महोत्सव एवं गोपाल चंपू है।

गौड़ीया संप्रदाय के संकीर्तन में संगीत -गौड़ीया संप्रदाय की भक्ति का मूल संकीर्तन है। इसलिए गौड़ीया संकीर्तन की सभी शैलियों एवं उत्सवों में संगीतात्मक कीर्तन मूल रूप से प्रयुक्त होता है। संगीत का स्वरूप संप्रदाय के पद्यों, कविताओं एवं विभिन्न सेवाओं में लयवद्ध रूप में प्रदर्शित होता है। गौड़ीया संप्रदाय में श्री राध कृष्ण को रस स्वरूप भी कहा जाता है तथा भक्ति संगीत में रस का समावेश निम्न कीर्तन शैलियों एवं अष्टयाम लीलाओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

पदावली कीर्तन-''गौड़ीया संप्रदाय में चैतन्य से पूर्व पदावली रचयिताओं में जयदेव तथा विद्यापति आदि के नाम महत्वपूर्ण हैं। विद्यापति चंडीदास तथा जयदेव के गीत गोबिंद को चैतन्य महाप्रभु ने शास्त्र की मर्यादा प्रदान की थी।इसी गीत गोविंद की पद्यावली को गायन करने से पदावली कीर्तन का जन्म हुआ। पदावली के लगभग सभी पद विभिन्न रागों तथा तालों में बद्ध है। चैतन्य के पश्चात श्री नरोत्तम ठाकुर, श्री निवास तथा श्री श्यामानंद ने संप्रदाय का नेतृत्व किया तथा बंगाल में कीर्तन की तीन धाराएं प्रवाहित की जिन्हें गौडानहारी, श्री मनोहर शाही तथा रानी हाटी के नाम से जाना जाता है। वैष्णव पदावली के मुख्य तीन विषय कृष्ण लीला, प्रार्थना तथा चैतन्य लीला होते है। पदावली कीर्तन कभी भी एकल नहीं होते। साधरणतय इसमें तीन गायक होते हैं।

अष्टयाम कीर्तन - अष्टयाम कीर्तन के अंतर्गत श्री राध कृष्ण की आठ पहर की लीला को स्मरण करते हुए उनकी सेवा एवं कीर्तन किया जाता है। इसे नित्य लीला भी कहा जाता है। नित्य लीला में दिन भर के क्रियाकलापों के प्रतीक के रूप में आठ झांकियां रखी गई है। जिनमें दैनिक क्रियाओं में गायन के लिए समय के अनुसार रागों का चयन किया जाता है। जो

1. प्रातः कालीन मंगला में ललित तथा विभास
2. श्रृंगार में राम कली व विलावल
3. ग्वाल में; बिलाबल व आसावरी
4. राज भोग के समय; आसावरी व सारंग
5. उत्थान में; धनाश्री व भीम पलासी
6. संध्या भोग में; गौरी
7. संध्या; आरती में पूर्वी व श्री
8. शयन के समय; यमन, विहाग, मालव तथा केदार इत्यादि रागों को गायन कर इष्ट को रिझाया जाता है।

वार्षिक उत्सव कीर्तन -कृष्ण भक्ति को ब्रजोपासना भी कहा जाता है। ब्रज में उत्सवों का प्रमुख स्थान है। ब्रज में हर उत्सव को उत्साह के साथ मनाया जाता है तथा हर उत्सव में समाज गायन होता है। जिसमें उत्सव संबंधी पद्यों एवं गीतों को विभिन्न रागों से भिन्न वाद्यों द्वारा गाया जाता है। गौड़ीया संप्रदाय में विभिन्न उत्सवों, पर विभिन्न लीला, रूप एवं प्रेम गाण होता है। गौड़ीया संप्रदाय की विभिन्न शाखाओं में यहां मठ तथा ईस्कान में लीला एवं पद्यात्मक कीर्तन ही किया जाता है। वहीं राधा रमणीय गौड़ीया मंदिरों में विभिन्न तालों एवं वाद्यों द्वारा हवेली संगीत का भी आश्रय लिया जाता है। जैसे होली समाज में ब्रज लोक गीतों को डफ बजाकर संगीतात्मक ढंग से गाया जाता है। वही झूलन उत्सवों पर भी ढोलक, मंजीरों एवं मृंदग के साथ आधुनिक वाद्यों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। इस गौड़ीया संप्रदाय में होने वाले वार्षिक उत्सव एवं उसमें प्रयोगरत राग निम्नलिखित है।

1. रथ यात्रा ;आषाढ़-शुक्लपक्ष-सभी झांकियों में राग मलहार प्रस्तुत किया जाता है।
2. श्रवण कृष्ण एकम में हिंडोला प्रारंभ होता है। जिसमें मलहार गाया जाता है।
3. श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर ललित को छोड़कर सभी राग गाए जाते हैं।
4. बंसत पंचमी एवं फाल्गुण अमावस तक सभी झांकियों में बसंत राग गाया जाता है।
5. अक्षय तृतीया से राज भोग में सारंग व संध्या आरती में हमीर राग विशेष रूप से प्रयुक्त होता है।

आधुनिक समय में गौड़ीया संप्रदाय-आधुनिक समय में भी गौड़ीया संप्रदाय अपनी पौराणिक धारणाओं के अनुरुप शुद्ध सात्विक कृष्ण भक्ति की धारा में अविरल वह रहा है। सम्प्रदाय का परम्परागत संकीर्तन पीढ़ी दर पीढ़ी प्रचलित एवं प्रसारिता होता हुआ अपने उद्देश्य के प्रति यत्नशील है तथा सम्प्रदाय के भक्तों को भक्तिमयी नाम कीर्तन द्वारा प्रभु की अभिव्यक्ति करवाने में सक्षम है।

आधुनिक समय में चैतन्य गौड़ीया संप्रदाय की चार अन्य उपशाखाएँ भी प्रचलित है। जिनका ध्येय एवं मूल एक ही है इनसे सम्बन्धित संक्षिप्त चर्चा निम्नलिखित है।

1. चैतन्य गौड़ीया मठ
2. ईस्कान
3. केशवगौड़ीया मठ
4. राधा रमणीय

आधुनिक समय में अपनी विलक्षण सात्विक विचारधारा एवं संतों के कारण गौड़ीया संप्रदाय कृष्ण भक्ति की सबसे उत्तम संप्रदाय है। इसी संप्रदाय की एक शाखा इस्कान ने कृष्ण भक्ति को भारत तक सीमित ना रख कर अमेरिका, रूस एवं अन्य देशों में भी प्रचारित किया, इस अंतर्राष्ट्रीय संस्था ने विश्व के हर कोने में इस्कान मंदिरों का निर्माण कर कृष्ण भक्ति का एक किर्तिमान स्थापित किया है।

गौड़ीया संप्रदाय के प्रसिद्ध मठों में वर्तमान आचार्यों से साक्षात्कार से यह स्पष्ट होता है कि गौड़ीया संप्रदाय ने अपने मूल पूर्ण रूप से सुरक्षित रखा है। यद्यपि नई विचारधारा एवं प्रणालियों से यह संप्रदाय भी अछूता नहीं, परंतु अपने वास्तविक रूप को कायम रखते हुए इस संप्रदाय ने नवीन धारणाओं को खुद में समाहित कर अपने परम्परागत सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए प्रचार-प्रसार जारी रखा है।

"**वैष्णवचार्य गोस्वामी पुष्पांग** ने गौड़ीया संप्रदाय भक्ति में संगीत के साथ-साथ विभिन्न वाद्यों एवं नृत्य को भी भक्ति का अंग बताया। उनके कथनानुसार प्रत्येक उत्सव पर विश्व प्रसिद्ध संगीतकारों, गायकों तथा नर्तकों को राधा रमण परिसर में आमंत्रित किया जाता है। क्योंकि नंदनंदन भगवान श्री कृष्ण को संगीत के साथ-साथ नृत्य भी बहुत अधिक प्रिय है। हवेली संगीत की छाप होने के कारण प्रत्येक राग एवं वाद्य से कीर्तन किया जाता है। मुख्यतया होली पर डफ बजाकर होली के रसिया गाए जाते हैं, तथा संगीत के महान रत्न अपनी कला का प्रदर्शन करने मंदिर में आते हैं। जिनमें गोविंद भार्गव, अनूप जलोटा, शंकर महादेवन, सूफी गायक मधुकर, कथा नर्तक आदि।

गौड़ीया संप्रदाय के अंतर्गत कलकता मठ के आचार्य "**श्री मुनि महाराज** के साक्षात्कार से उन्होंने बताया कि बंगाल में आज भी गौड़ीया आचार्यों द्वारा निर्मित राग; गौडानहारी, मनोहर शाही तथा राणी हारी घराने प्रचलित है। जोकि इन रागों के विकास पर कार्य कर रहे हैं। वर्तमान समय के मठों में संगीत के बारे में उनका कथन है। "मठ मंदिर में श्री हरिनाम संकीर्तन मृदंग मंजीरे तथा मजार बजाकर किया जाता है। गायन में महामंत्र, चैतन्य चरितामृत की पदावली तथा आरती की जाती है।" इसके अलावा विभिन्न उत्सवों पर ढोलक, नगाड़ा, शंख, सारंगी तथा वीणा आदि का प्रयोग भी किया जाता है।

इस्कॉन (ISKCON) मंदिर के **आचार्य** ने गौड़ीया संप्रदाय की शाखा इस्कान में संगीत के बारे में बताते हुए कहा कि "इस्कान एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था है। जिसमें विभिन्न देशों के तथा विभिन्न संस्कृतियों के लोग है। यद्यपि इस्कान में भी नित्यप्रति घंटों महामंत्र को ही गाया जाता है। परंतु विभिन्न देशों के लोगों द्वारा विभिन्न देशों के वाद्यों का प्रयोग कर महामंत्र को विभिन्न रागों में गाया जाता है। इस्कॉन के कीर्तन में पश्चिमी वाद्यों जैसे कि कैसियो तथा गिटार का भी प्रयोग किया जाता है। तथा शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ पश्चिमी संगीतात्मक धुनों से भी कीर्तन किया जा रहा है।

काशी के संगीत को वैश्विक स्तर पर लोकप्रिय बनाने में पं. रविशंकर का योगदान

ज्योति सिंह

बनारस संभवतः अकेला ऐसा शहर है जहाँ संगीत के तीनों पक्षों (गायन, वादन तथा नृत्य) के साथ सभी सांगीतिक विधाओं को समान रूप से ख्याति प्राप्त है। यही कारण है कि यूनेस्को (संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन) ने दुनिया के क्रिएटिव सिटीज़ ऑफ म्यूज़िक में वाराणसी सम्मिलित किया है, साथ ही वाराणसी विश्व के उन शहरों में से एक है जिनका अपना लोगों (प्रतीक चिन्ह) है। बनारस संगीत साधकों का एक ऐसा केन्द्र है जहाँ बहुत से संगीतज्ञ दूसरे शहरों से आकर बस गए और बहुत से संगीतज्ञ बनारस से बाहर दूसरे शहरों में या विदेशों में जाकर भारतीय संगीत का विस्तार करने के साथ ही भारतीय संगीत को वैश्विक स्तर पर लोकप्रिय बनाया, उन्हीं संगीत साधकों में से महान सितार वादक पं. रविशंकर थे जिन्होंने सम्पूर्ण भारत को ही नहीं अपितु पूरे विश्व में अपने सितार वादन से बनारस का नाम रौशन किया।

पं. रविशंकर का जन्म काशी में 7 अप्रैल सन् 1920 को हुआ था, उनका आरंभिक जीवन काशी के पुनीत घाटों पर ही बीता। रविशंकर जी का पूरा नाम पं. रविशंकर चौधरी था। रविशंकर जी का बचपन बहुत ही सुखद रहा, उनके पिता प्रतिष्ठित बैरिस्टर थे और राजघराने में उच्च पद पर कार्यरत थे। रविशंकर जब दस वर्ष के थे तभी संगीत के प्रति उनका लगाव शुरू हुआ उन्होंने एक नर्तक के रूप में कला जगत में प्रवेश किया और अपने बड़े भाई उदय शंकर के साथ कई नृत्य कार्यक्रम किए, उन दिनों को याद करके वो कहा करते थे- **"मैं बनारस में रहता था, संगीत से मेरा कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था, लेकिन मेरे दूसरे भाइयों की इसमें पूरी रूचि थी। कोई बांसुरी बजाता था तो कोई सितार, बड़े भाई उदय शंकर जी नृत्य करते थे, वह मुझे अपने साथ पेरिस ले गए, उनके दल में अच्छे संगीतज्ञ और कलाकार थे, वहीं से मुझे संगीत का शौक हुआ। नृत्य को मैं अधिक दिनों तक न रह सका वजह यह थी कि मेरा रूझान स्वर वाद्य की ओर बढ़ा।"** (पं. रविशंकर)

इनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई, उन्होंने प्रसिद्ध संगीतकार और गुरू उस्ताद अलाउद्दीन खाँ को अपना गुरू बनाया, यहीं से रविशंकर जी की विधिवत सांगीतिक यात्रा आरम्भ हुई। बाबा अलाउद्दीन खाँ जैसे अनुभवी गुरू ने उनके भीतर छिपे संगीत प्रेम को पहचान लिया था। इसीलिए रविशंकर जी को अपना पट्ट शिष्य बनाया। वे लम्बे समय तक तबला वाचक उस्ताद अल्ला रक्खा खाँ, पं. किशन महाराज और सरोदवादक उस्ताद अली अकबर खाँ के साथ जुड़े रहे। रविशंकर जी संगीत की परम्परागत शैली के अनुयायी थे, उनकी उँगलियाँ जब सितार पर गतिशील होती थी तब सारा वातावरण झंकृत हो उठता था। उन्होंने कई नयी-पुरानी संगीत रचनाओं को भी अपना विशिष्ट शैली से जीवंत कर दिया। पं. रविशंकर जितने

शोध छात्रा, संगीत एवं प्रदर्शनकला संकाय, काशी हिन्दू वि0वि0 वाराणसी

महान सितार वादक थे उतने ही श्रेष्ट सर्जक भी थे, सृजनात्मकता का बीज उनमें बचपन से ही था। इसका परिचय उन्होंने 1945 में इण्डियन पीपुल्स थिएटर एसोसिएशन (इप्टा) में शामिल होकर विभिन्न संगीत संयोजनों के माध्यम से दिया। इप्टा में रहते हुए ही उन्होंने "धरती के लाल" (ख्वाजा अहमद अब्बास) और "नीचा नगर" (चेतन आनन्द) फिल्मों का संगीत तैयार किया था। सन् 1955 में अल्लामा इकबाल के गीत - **सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा** का संगीत तैयार कर उसे जन-जन में लोकप्रिय बना दिया। इसके अलावा पं. जवाहर लाल नेहरू कृत **भारत एक खोज** के नाट्य रूपान्तर के लिए भी संगीत तैयार किया था। रविशंकर जी के मानस में सृजनात्मकता का बीज जब और भी विकसित हुआ तो राग तिलक, श्याम, नट भैरव, वैरागी भैरव, परमेश्वरी, कामेश्वरी, रंगेश्वरी, गंगेश्वरी, जनसम्मोहिनी और मोहनकौंस जैसे राग अस्तित्व में आए। इतना ही नहीं उस्ताद अमान अली खाँ और उस्ताद अब्दुल करीम खाँ की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए कई दक्षिण भारतीय रागों यथा हेमावती, चारूकेशी वाचस्पति, हंसध्वनि और कीरवानी जैसे कई रागों को उत्तर भारतीय संगीत शैली में प्रस्तुत करके लोकप्रिय बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

सन् 1952 में पश्चिम के महान वॉयलिन वादक सर लार्ड यहूदी मन्युहीन से रविशंकर जी की मुलाकात हुई। रविशंकर जी यहूदी मन्युहीन से काफी प्रभावित हुए। इसी काल खण्ड में रविशंकर जी ने पेरिस में हुए अन्तर्राष्ट्रीय संगीत समारोह में भाग लिया, यहाँ रविशंकर जी की प्रतिभा से पाश्चात्य देश के संगीतज्ञ मंत्रमुग्ध हो गए। पूरब और पश्चिम के बीच की दूरियाँ घटने लगी। उन्हीं दिनों एक ऐसा संगीत तैयार होने लगा जो दोनों देशों, सभ्यताओं और संस्कृतियों के बीच सेतु का काम करने लगा जिसे आज फ्यूजन के नाम पर काफी लोकप्रियता मिल रही है। लार्ड यहूदी मेन्युहीन, जॉन कॉल्ट्रेन, डेविड आइस्ट्रैक, हॉजेन यमाटो, आद्रे प्रेवे, जुबीन मेहता और फ्लिप ग्लास आदि के साथ उनकी जानदार और सफल जुगलबन्दियों ने शास्त्रीय संगीत के इस दिग्गज को लोकप्रिय बना दिया। इसका एक कारण यह भी था कि उन्होंने अपनी शास्त्रीयता को कभी भंग नहीं किया उसकी शुद्धता को बनाए रखा।

पं. रविशंकर को विभिन्न विश्वविद्यालयों से डॉक्टरेट की 14 मानद उपाधियाँ मिल चुकी है। रेमन मैग्सेसे, पद्मभूषण, पद्मविभूषण तथा भारत का सर्वोच्च सम्मान **भारतरत्न** से भी सम्मानित किया गया। रविशंकर जी को तीन बार ग्रैमी पुरस्कार से नवाज़ा गया, 1968 में यहूदी मन्युहीन के साथ उनकी एल्बम 'ईस्ट मीटस वेस्ट' को पहला ग्रैमी पुरस्कार, 1972 में जॉर्ज हैरिसन के साथ उनके "ब्यदबमतज वित ठंदहसंकमी" को ग्रैमी दिया गया और तीसरा ग्रैमी पुरस्कार उनके मरणोपरान्त ग्रैमी सम्मान समिति ने 'लाईफ टाइम अचीवमेन्ट" ग्रैमी पुरस्कार 10 फरवरी 2013 को लॉस एंजिल्स में उनक उत्तराधिकारियों को सौंपा। पं. रविशंकर जी इस सम्मान को प्राप्त करने वाले प्रथम भारतीय संगीतज्ञ थे। 12 दिसम्बर 2012 को जब उनका निधन हुआ तो उस दिन सिर्फ एक सितार वादन का निधन नहीं हुआ बल्कि संगीत साधक, कुशल रचनाकार, संगीत चिंतक और विचारक, संगीत गुरू, संगीत लेखक और एक संगीत आयोजक का निधन एक साथ हुआ था। जीवन भर नए कीर्तिमान स्थापित करने वाले पं. रविशंकर मृत्यु के पश्चात् भी नया कीर्तिमान स्थापित कर गए। आज भी पाश्चात्य देशों में भारत को बनारस के संगीत और पं. रविशंकर जी के सितार के नाम पर ही जाना जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. भारतीय संगीत : वैज्ञानिक विश्लेषण - डॉ. स्वतंत्र, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली
2. आजकल पत्रिका - अंक फरवरी 2013
3. हमारे संगीत रत्न - श्रीवास्तव हरिश्चन्द्र, संगीत कार्यालय हाथरस

ख्याल गायन की संगति में हारमोनियम का प्रयोग

श्यामा कुमार भारती

भारतीय संगीत में हारमोनियम संगति का विशेष महत्व है। शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम संगीत, फिल्मी संगीत, एवं लोकसंगीत आदि सभी विधाओं में इसका प्रयोग सर्वाधिक रूप में देखने को मिलता है। हारमोनियम वाद्य इतना प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय हो गया है कि इसके अभाव में किसी भी संगीत महोत्सव अथवा कार्यक्रम की कल्पना नहीं की जा सकती।

हारमोनियम वाद्य का अविष्कार सन् 1842 ई. में 'एलेक्जेंडर डिबेंन' द्वारा पेरिस (फ्रांस) में किया गया, जो एक पाँव भाथी वाला हारमोनियम था। जबकि पाँव भाथी हारमोनियम भारत में बैठकी संगीत के लिए उपयुक्त नहीं था। इसलिए इसकी संरचना में कुछ परिवर्तन करके यहाँ के संगीत के लिए उपयुक्त हारमोनियम के निर्माण का विचार सामने आया। इसमें हाथ भाथी जोड़ने का कार्य कोलकाता के 'स्व. द्वारकानाथ घोष जी' ने किया। आज जो हारमोनियम प्रचलित है, वह हाथ भाथी या हाथ पेटी हारमोनियम ही है, जिसमें धौंकनी का संचालन हाथ द्वारा किया जाता है।

हारमोनियम में प्रत्येक स्वर के लिए अलग-अलग रीड लगे होने के कारण इसे स्वतन्त्र रीड युक्त वाद्य कहते हैं। यह सुषिर वाद्य की श्रेणी में आता है। इसे पेटी अथवा संवादिनी के नाम से भी जाना जाता है। एक रीड आर्गन, भाथीयुक्त, जिसमें हवा का प्रवाह रीड से होकर होता है, उसे 'हारमोनियम' कह सकते हैं।

हारमोनियम मूलतः एक विदेशी वाद्य है, लेकिन भारत में इसका प्रचार-प्रसार एवं उपयोग इतना बढ़ गया है कि यह भारत का अपना वाद्य बन चुका है। इसे शास्त्रीय संगीत में प्रवेश दिलाने के पीछे हारमोनियम वादकों तथा निर्माणकर्ताओंकी कड़ी मेहनत, साधना तथा नित्य नवीन विचार हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत (रागदारी संगीत) स्वर प्रधान व श्रुति प्रधान संगीत है, जिसमें मींड, गमक एवं सूत जैसे महत्वपूर्ण तत्व विद्यवान हैं। हारमोनियम में मींड एवं गमक निकालना मुश्किल है। इसमें केवल इसका आभास कराया जा सकता है। इसी कमी के कारण आकाशवाणी के कार्यक्रमों में मार्च 1940 ई. से अक्टूबर 1970 ई. यानि 30 वर्षों तक इसका प्रयोग बन्द कर दिया गया था। हारमोनियम के इस विषय पर एक सेमिनार का आयोजन हुआ था जिसमें कुछ विद्वानों एवं संगीतज्ञों द्वारा इसे बहुत ही उपयोगी सिद्ध किया गया था। इस प्रकार आकाशवाणी द्वारा इस पर लगाया गया प्रतिबन्ध आंशिक रूप से अक्टूबर 1970 ई. में हटा दिया गया और इसका प्रयोग प्रारम्भ हो गया।

ख्याल गायन शैली के साथ हारमोनियम का प्रयोग विगत कई वर्षों से किया जा रहा है। वर्तमान समय में इसके और अधिक प्रयोग होने का कारण इसकी संरचना, ट्यूनिंग में परिवर्तन तथा वादन शैली का विकास है। यह एक इक्वली टेम्पर्ड स्केल पर आधारित वाद्य है, जिसके स्वर शास्त्रीय संगीत के अनुकूल नहीं होते। इस समस्या का भी समाधान हमारे हारमोनियम वादकों ने निकाला। जिसका परिणाम 'गांधार ट्यूनिंग' अथवा 'स्पेशल ट्यूनिंग एवं श्रुति हारमोनियम के रूप में सामने आया। आज के समय में लगभग सभी प्रसिद्ध हारमोनियम वादकों के पास गांधार ट्यूनिंग का हारमोनियम

शोध छात्र, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

होता है। गांधार ट्यूनिंग को विशेष (स्पेशल) ट्यूनिंग कहा जाए तो उचित होगा क्योंकि इस ट्यूनिंग में केवल गांधार को ट्यून नहीं किया जाता बल्कि सप्तक के सभी स्वरों को संवाद के आधार पर ट्यून किया जाता है। इसलिए इसे विशेष ट्यूनिंग कहा जाए तो ठीक है। यह एक ऐसा ट्यूनिंग है जिसके माध्यम से हारमोनियम के स्वर शास्त्रीय संगीत के स्वर के नजदीक पहुँच जाते हैं तथा तानपूरे से संवाद करते हुए बजते हैं। यहाँ ट्यूनिंग के बारे में अधिक चर्चा न करके संक्षेप में बताना चाहूँगा क्योंकि ट्यूनिंग का क्षेत्र बहुत ही बृहद है। इसके ट्यूनिंग के लिए किसी एक स्वर को सा मानकर सप्तक के सभी चढ़े-उतरे हुए स्वरों को उस षड्ज से मिलाया जाता है जिसके सभी स्वर षड्ज से संवाद करने लगते हैं। ऐसे ट्यूनिंग वाले हारमोनियम के उसी षड्ज को सा मानकर बजाया जा सकता है किसी और स्वर को सा मानकर बजाने से बेसुरा बजेगा। इसलिए हारमोनियम वादकों को प्रत्येक स्केल का अलग-अलग हारमोनियम बनवाना पड़ता है। अगर कोई गायक काली दो से गाने वाला है तो उसके साथ वाली दो का हारमोनियम ले जाना पड़ता है। जिस स्वर का हारमोनियम होता है उसके मध्यम से भी बजाने पर सुर में बजता है।

पुरूष गायकों के साथ संगत के लिए प्रायः षड्ज - नर तथा महिला गायिकाओं के साथ नर-नर रीड वाले हारमोनियम प्रयोग किए जाते हैं। शास्त्रीय संगीत में प्रयोग होने वाले हारमोनियम के रीड-बोर्ड खड़े होने चाहिए, जिसमें स्वर की गोलाई एवं सुरीलापन ज्यादा रहता है। रीड एवं कीज की बनावट ऐसी होनी चाहिए कि प्रत्येक सुर का जवनबीपदह तमेचवदेम अच्छा हो। हारमोनियम का रीड यदि जर्मन अथवा पेरिस का हो तो और अधिक सुरीलापन रहता है तथा उसका ट्यूनिंग काफी दिनों तक टिकता है।

ख्याल गायन शैली में हारमोनियम का प्रयोग कब शुरू हुआ, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता लेकिन हारमोनियम के वरिष्ठ कलाकारों का मानना है कि उद्र अब्दुल करीम खॉ साहब के साथ शुरू हुआ। उन्होंने हारमोनियम को काफी बढ़ावा भी दिया। उद्र फैयाज़ खॉ साहब, उद्र अमीर खॉ साहब, पं॰ सवाई गंधर्व, पं॰ कुमार गंधर्व, विदुषी गंगूबाई हंगल एवं पं॰ भीमसेन जोशी जैसे अनेक प्रसिद्ध गायक-गायिकाओं ने हारमोनियम का संगत वाद्य के रूप में प्रयोग किया। आज भी पं॰ उल्हास कशालकर, विदुशी किशोरी अमोनकर पं॰ जसराज, उद्र राशिद खॉ एवं विदुशी अश्विनी भिंडे देशपाण्डे जी जैसे महान् कलाकार हारमोनियम संगति को प्रोत्साहन दे रहे हैं। वैसे देखा जाए तो लगभग सभी गायक कलाकार हारमोनियम ही संगत के लिए रखते हैं।

संगत करना अत्यन्त ही कठिन कार्य है। हारमोनियम संगत कलाकार राग, ताल, स्वर तथा लय का पक्का ज्ञान रखते हैं। जो सफल संगतकार हैं उन्हें प्रत्येक घराने की विशेताएं, स्वर लगाव, ताल तथा अन्य बारीकियाँ भी मालूम होती हैं। इन सभी चीजों का ज्ञान सभी संगत कलाकारों को होनी चाहिए। हारमोनियम संगतकार में दूरदर्शिता का गुण होना चाहिए। गायक कलाकार का भाव तथा उसे कैसी संगति पसंद है, ये भी जानने की क्षमता होनी चाहिए। इसके लिए बहुत अनुभव, चिन्तन एवं निरंतर अभ्यास की जरूरत होती है। संगत के लिए कुछ विद्वान हारमोनियम वादकों का कहना है कि जिस प्रकार एक व्यक्ति की छाया उसके साथ-साथ चलती है, संगत का भी वही गुण होना चाहिए। गायक के साथ-साथ चलने आना चाहिए।

इस प्रकार हारमोनियम एक ऐसा वाद्य है जो गायक/गायिका कलाकारों के लिए हर तरह से उनके गायन में सहायक होता है। हारमोनियम के क्षेत्र में इतने अनुभवी एवं अच्छे हारमोनियम वादक हैं जो पूरी सूझ-बूझ के साथ संगत करते हैं और कार्यक्रम को सफल बनाने में सहयोग प्रदान करते हैं। हारमोनियम का भविष्य और भी उज्ज्वल है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. The History of Musical Instruments, Curt Sachs, 1940
2. संवादिनी (हारमोनियम), जयंत भालोदकर, कनिष्ठ पब्लिशिंग -2006
3. हारमोनियम-विविध आयाम, डॉ. विनय कुमार मिश्रा, आकांक्षा पब्लिशिंग हाउस-2015
4. Sangeet Vimrash, Dr.Arawind D. Thattle, SwanandiPrakashan-2010

Sitarist Ustad Halim Jaffer Khan and his rare ramophone Records

Dr. Pankaj Lahora

Abstract:

Late Ustad Halim Jaffer Khan is a extremely renowned, extraordinary sitarist, singer and beenkar. He belongs to famous Bande Ali Khan Gharana of Indore. He was born at Jawra in the year 1927 AD, Madhya Pradesh. His father Janab Jafer Ali Khan was a good musician. From his childhood he was deeply interested in music. He had a very sweet voice. He started singing Ghazals at the very early age. He got a very rare opportunity to sing in All India radio at a small age of 9. He got his initial training of sitar and vocal from his father. He also got training of sitar from Ustad Babu Khan Beenkar of Indore. After the death of Babu Khan, Ustad Halim Jaffer Khan become the disciple of Late Mehboob Khan of the Indore gharana. Due to this reason only he is termed as a staultwart of the Indore gharana tradition.[1]

Research Paper:-

Today, Ustad Halim Jaffer Khan is a top notcher amongst our sitar players, a brilliant improviser, equally at ease with the well known and less known ragas. The 'Jaffar Khani Baaj' which distinguishes his playing, is only one among his many innovations. Ustad Abdul Halim Jaffer Khan is extremely endowed with a scholarly bent of mind and has given many lecture demonstrations in India and abroad brought out some unique Gramophone Records of sitar player Ustad Halim Jaffer Khan. Some well known Gramophone Records are as under –

1. Sitar Through Ages – Ustad Abdul Halim Jaffer Khan - EMI

This unique Gramophone Record of sitar master Ustad Halim Jaffer Khan was released in the year 1976 AD. It is a long 33 1/3 RPM Record.

This record was specially released during the seventh centenary celebrations of Hazrat Amir Khusro. This disc is unique in its character as it really touches some basic features of the history of sitar. Ustad Abdul Halim Jaffer Khan presents, apart from a full fledged performance of rare ragas innovated by Hazrat Amir Khusro on one side, three various pieces giving glimpses of the gradual development of this prince charming of Indian instruments. Sitar – structural as well as its playing. We can as well call this record – Sitar Through Ages.

On Side one, Sitar playing in Soffiyana Rang is there. The explanation of this topic is – "Sitar in the hands of its

PH.D. Sitar, University of Delhi, Delhi-110007

innovator Amir Khsuro, used to serve as the accompanying instrument while performing "Soofiyana Rang" to his spiritual mentor Hazrat Nizamuddin Auliya. History does not give an account of that particular form of music. The heading "Soofiyana Rang" depicts the time and the sentiments attached to it."

Now second item of Side One is – sitar – The Solo Instrument – Gat Bhim Palasi. It's decription is as follows, "In the hands of the descendants of Mian Tansen, specially Imrat Senji, who realized the potential of this instrument, Sitar became a solo instrument. His playing was just an introduction, a way to express to his followers the many – splendoured capacity of this instrument. His style of play is known as, "Senia Baaj". But then, the real exploitation came through Maseet Khan and Raza Khan, who gave characteristically two complete forms or Baaj of Sitar playing – Maseet Khan Baaj and Raza Khani Baaj respectively. The first one in the slow tempo (Vilambit Laya) and the second one is very fast tempo (Drut Laya) or Poorab Baaj.[2]

Third item is – Raag Zila Kafi – Trital. The third pieces takes the sitar to its peak. Embodying the most modern techniques in Jaffer Khan Baaj, an innovation of the artist himself. Abdul Halim Jaffer Khan presents Ameer Khusro 'Zila Kafi'. As with all inventions and innovations, the passage of time added new tones to the basic sound of sitar.

On side two, Raga Farghana is given Synthesis has always been a clever via media for adding to he treasury of art. Amir Khusro had moulded his personality under the finest influence of Indo-Persian intellectualism.

2. Enchanting Sitar – Ustad Abdul Halim Jaffer Khan – Raag. Aarabi, Raag Multani Side One – Raag Aarabi – This is a less known melody rendered during the second quarter of the day. It takes 'Panchama' at its 'Vadi' and 'Shadja' as its Samvadi Swara and depicts a devotional mood. The raag is played here first in Alap, followed by 'gat' in Tritaal. (16 Matras).

Side two has Raag Multani. This is an evening raga of perennial beauty, unfolding a yearthing mood, Panchama and Shadja are its 'Vadi' and 'Samvadi swaras' respectively.[3] This is a long 33 1/3 R.P.M. Gramophone Record released by the Gramophone Company, Dumdum, Culcutta in 1978 AD.

3. Sitar Ecstasy – Ustad Abdul Halim Jaffer Khan, Tabla – Sadashiva Pawar.

It's side one has Raga Jaishri. The combination of two ancient Ragas, Jait and Shri, becomes more charming when played as alap on the sitar. The artiste, after elaborate alap renders a vilambat got in Ada Chautala – 14 matras.

Side 2 has Raga Hemvati. The conception of this beautiful raga is credited to the learned composer of the 16th century, Venkatamurthy Hemvati. This is a Sampoorna raga and takes it nishad and gandhar in their Komal variations with teevra madhyam. After a break taking alap, the gat is rendered in vilambit tripaal – 16 matras.

The second seletion on this side is a unique piece of light music i.e. Dhun-Soofina Samaa. The skillfull meend work really brings out the mood of Sufism ecstasy.

So, we have seen that, there are really some very unique Gramophone Records on the sitar player Ustad Halim Jaffer Khan and specially he has tried to show us the rare ragas of Amir Khusro.[4]

References

1. Gramophone Record – Title – Sitar Through Ages – Ustad Abdul Halim Jaffer Khan, Gramophone Company of India, Calcutta, 1976 AD, Record No. ECSD-2753, Regular.
2. Gramophone Record – Enchanting Sitar – Ustad Abdul Halim Jaffer Khan – Raag Aarabi and Raag Multani, Gramophone Company of India, Calcutta, 1978 AD. Record No. ECSD-2808, Regular.
3. Gramophone Record – Sitar Ecstasy – Ustad Abdul Halim Jaffer Khan – Rag Jaitshri, Raga Hemvati, Dhun – Soofiyana, Gramphone Company of India, Calcutta, 1983. Record No. – ECSD-2920, Stereo.

(Footnotes)

[1] Pratisthit Sitar Avam Sarod Vaadakon Ki Sadhana Aur Sangharsh with Shantunu Sharma, Kanishka Publisher, Delhi, 2005 AD, Page 68-76.

[2] Pratisthit Sitar Avam Sarad Vaadakan Ki Sadhama Aur Sangharsh with Shantunu Sharma, Kanishka Publisher, Delhi, 2005 AD, Page 68-76.

[3] Pratisthit Sitar Avam Sarad Vaadakan Ki Sadhana Aur Sangharsh with Shantunu Sharma, Kanishka Publisher, Delhi, 2005 AD, Page 68-76.

[4] Pratisthit Sitar Avam Sarad Vaadakan Ki Sadhana Aur Sangharsh with Shantunu Sharma, Kanishka Publisher, Delhi, 2005 AD, Page 68-76.

The Power of Music : Its Impact on the Brain, Personality Development, Creativity and Also on Physical Body

Ms. Aarti Bhatt

Music is the purest forms of art... therefore true poets, they who are seers, seek to express the universe in terms of music... The singer has everything within him. The notes come out from his very life. They are not materials gathered from outside. **~Rabindranath Tagore**

Music is truly one of the most expressive art forms, which has a universal appeal. As long as one can feel the rhythm and the harmony of the beats, one can comprehend and enjoy any type of music around the world. Society without music has never been discovered. Anthropologists have also found the marks of musical instruments far back in 18,000 BCE, and some theorists believe that music is that much closely related to our humanness, that, like language, it developed in every culture. Music is so closely related to our cultural identity, that societies throughout history have had some basic form of music education to pass on musical culture to the future ones. It beholds us, to a general extent to understand our roots and answer to questions like; where we came from; what our struggles and concerns have been; why we believe what we do.

Throughout history, philosophers, educators, politicians, and activists have recognized the power of schooling and ideas to enlighten and transform society according to the changing needs. Plato and Aristotle debated the merits and contents of education, and recognized the power of musical study to shape social values.

Music education has an important impact on students' academic and personal growth. "Music education opens doors that help children pass from school into the world around them a world of work, culture, intellectual activity, and human involvement. The future of our nation depends on providing our children with a complete education that includes music", said Gerald Ford, former President, United States of America. Similarly U.S. Secretary of Education Richard W. Riley, July 1999 remarked that "Studying music and the arts elevates children's education, expands students' horizons, and teaches them to appreciate the wonder of life".

The power of music has been known to all major civilizations going back to antiquity, where music was considered to

Research Scholar, Panjab University, Chandigarh

be the most important of the sciences, the most important path to religious enlightment, the very basis of harmonious development and the character of the man. Plato wrote, "I would teach children music, physics, and philosophy; but most importantly music for in the patterns of music and all the arts are the keys to learning".

1. MUSIC AND PHYSICAL BODY

Science has found that most functions of the body are affected by music. Music is a very powerful transformational tool for the human body and soul. Research suggests that music can benefit heart disease patients by reducing their blood pressure, heart rate and anxiety. Music is thought to link all of the emotional, spiritual, and physical elements of the universe. It has the ability to change a person's mood and also to strengthen or weaken emotions of an individual.

Responses to music are easy to be detected in the human body. In a research in Classical music from the baroque period shows that the heart beat and pulse rate relaxes to the beat of the music. As the body becomes relaxed and alert, the mind is able to concentrate more easily. Furthermore, baroque music decreases blood pressure and enhances the ability to learn. Music also affects breathing rate and electrical resistance of the skin. It has been observed to cause the pupils to dilate, increase blood pressure, and increase the heart rate.

2. MUSIC CAN CHANGE THE SHAPE OF THE BRAIN

Regular participation in musical activities stimulates the development of the brain and improves mental functions. Scientists have long known that when music and other sounds enter the ear, they're converted to electrical signals. The signals travel up the auditory nerve to the brain's auditory cortex, which processes sound. From there, the brain's responses to music become much more complex.

Music activates many regions of the brain, including auditory, motor and limbic (associated with emotions). Such widespread activation of brain explains many beneficial emotional and cognitive music effects. The power of music to affect memory is quite intriguing. Mozart's music and baroque music, with a 60 beats per minute beat pattern, activate the left and right brain. The simultaneous left and right brain action maximizes learning and retention of information. The information being studied activates the left brain while the music activates the right brain. Also, activities which engage both sides of the brain at the same time, such as playing an instrument or singing, causes the brain to be more capable of processing information.

Over the past decade, new brain imaging techniques have shown that the conduit of information between the two brain hemispheres, the corpus callosum, grows larger as a result of being musically stimulated, and the pathways of communication between areas of the brain are more comprehensively connected together. that music activates many unexpected brain regions. It can turn on areas involved in emotion and memory. It can also activate the brain's motor regions, which prepare for and coordinate physical movement.

3. MUSICAL PERFORMANCE ENCHANCES INTELLIGENCE AND DEVELOP MENTSL FUNCTIONS

The idea that music makes one smarter received considerable attention from scientists and the media. Listening to music or playing an instrument can actually make one learn better. And research confirms this. Music has the power to enhance some kinds of higher brain function:

- Reading and literacy skills
- Spatial-temporal reasoning
- Mathematical abilities - Even children with attention deficit/ hyperactivity disorder benefit in mathematics tests from listening to music beforehand.
- Emotional intelligence
- Recall of autobiographical and episodic information

4. MUSIC PROMOTES LITERARY SKILLS

Scientifically based research supports the use of music and musical instruction to build literacy skills of an individual. Researchers and practitioners recognize that musical activities reinforce many aspects of language development. Chanting and rhythmic speaking, singing, and listening are all experiences that support language development. activities involving chanting and rhythmic speaking are helpful in the practice of elements of speech that parallel musical elements and in the exploration of oral reading skills. The singing and chanting activities provide practice in rhythm, form, dynamics, and mood, which are concepts and skills common to language and music. The impact of music and musical instruction on early language and literacy development for young children is examined in the following areas:

- Reading Comprehension and Verbal Memory
- Listening Skills
- Vocabulary, including for English Language Learners
- Phonological and Phonemic Awareness
- Writing and Print Awareness
- Impact on Children with Disabilities
- Family Involvement

5. MUSIC PROMOTES ARTISTIC SELF-EXPRESSION AND CREATIVITY

Music can help contribute to the development of a more creative mind. Einstein considered being one of the most creative geniuses of the past century, often turned to music to help with his creative process. Einstein told creativity scholar Max Wertheimer that he never came up with new ideas or scientific breakthroughs by thinking in logical symbols or mathematical equations, but in images, feelings and even musical architectures. Parag Chordia, Director of the Music Intelligence Lab at Georgia Tech, confers that music is a significant, if not essential contributor, to the development and cultivation of creativity. Playing music — especially improvisation, and creating music — musical composition, are highly engaging processes that activate multiple areas of the brain and help us to develop greater creative capacity. Simply listening to music can help relax us, and relaxation is key to creativity.

Conclusion:

There is no downside to bringing children and music together. An attempt was made

in this study to prove that music is a very powerful and awesome tool that has positive effects on the brain, personality development, creativity and also on physical body. From the pure pleasure of listening to soothing sounds and rhythmic harmonies, to gaining new language and social skills, whatever the setting - a quiet room at home with mom and dad, a large grassy field filled with people, or a busy classroom - music can enliven and enrich the lives of children and the people who care for them.

References :

Alluri V, Toiviainen P, Jääskeläinen IP, Glerean E, Sams M, Brattico E. *Large-scale brain networks emerge from dynamic processing of musical timbre, key and rhythm.* NeuroImage. 2012.

Besson M, Schon D, Moreno S, Santos A, Magne C. ***Influence of musical expertise and musical training on pitch processing in music and language.*** **Restorative Neurology and Neuroscience. 2007.**

Campbell, D, and Doman, A. (2011) *Healing at the Speed of Sound: How What We Hear Transforms Our Brains and Our Lives.* New York

Chubra,S.(2012). *Does Learning Music affect the study Habit of the Learner.* Scholarly Research Journal. Maharashtra.

Donnell, L. *Music and the Brain.* http://www.cerebromente.org.br/n15/mente/musica.html

Jäncke L. *Music, memory and emotion.* Journal of Biological Chemistry. 2008

Kindermusik. The Impact of Music on Language and Early Literacy

Lehrer, J.(2012). *Imagine: How Creativity Works.*

Mark, M., and Gary, C. (1999). *The history of American music education.* Reston, VA: The National Association for Music Education.

National Institutes of Health .Department of Health and Human Services.(2010) www.newsinhealth.nih.gov

Schellenberg EG, Hallam S. *Music listening and cognitive abilities in 10- and 11-year-olds: the blur effect.* Annals New York Academy of Science.2005

Schmithorst VJ, Holland SK.. *The effect of musical training on the neural correlates of math processing: a functional magnetic resonance imaging study in humans.* Neuroscience Letters 2004

Spatial-Temporal Task Performance Jausovec N, Jausovec K, Gerlic I. *The influence of Mozart's music on brain activity in the process of learning.* Clinical Neurophysiology. 2006

Stolba, K. M. (1998). *The development of Western music: A history.* Boston: McGraw Hill.

Wertheimer, M.(1959) *Productive Thinking.* New York.

Inter-relationship of Society and Music

Gaveesh

Introduction

Music and society have always been closely related. From music, social conditions are reflected and created which may include facilitation or obstruction of social change. Music is a very powerful medium or source and its use is controlled by some societies to an extent. At social group level it can facilitate communication which goes beyond words and allows meanings to be shared. It may promote the development and maintenance of individuals, group, cultural and national identities at this level. At individual level, it can encourage multiple responses such as physiological, movement, mood, emotional, cognitive and behavioral. In past, the power of music to act therapeutically has already been recognized. This therapy could be listening to music or actively making it or it may involve both aspects. Music has an advantage of performing intervention in promoting relaxation, lessening anxiety and pain in medicine and dentistry. It can be effective in combination with other interventions in promoting well-being through the production of particular endorphins. Therapeutically it has been utilized for improving brain damage and persistent pain in elderly patients. It may promote development of appropriate behavior in vulnerable groups and enhance the quality of life of people w ho cannot be helped medically [1, 2]

Indian music has history which spans millennia. Music can be treated as spiritual inspiration, cultural phrase and pure entertainment or activity. Indian music has no reliable history although it has continuous tradition from the oldest times. For finest ear, it was always chamber music which existed having octave divided into twenty-two notes. Like western compositions or music, Indian music has no accent and neither harmony nor counterpoint however it attained delicate melody and rhythm having well-defined modes. Types of music which exist in India are many, some of them being folk (rural, ethnic, regional music), popular (Bollywood and regional cinema music) and classical music having two branches, carnatic which has characteristic of southern India and Hindustani which depicts the feature of Northern and Central India [2]

There found a difference in relationships of people from differing social groups with music. Women are now less restricted to their musical roles than they were earlier; folk and classical music

Assistant Professor, Department of Music, Guru Nanak Dev niversity, Amritsar

are no longer exclusively associated with certain social classes; and no particular music now belongs to specific or particular ethnic group. Social groups can be social class, ethnicity, race, gender, age, religion, nationality, the family and sub-culture. Society can be made up of these groups but these social groups are bound to overlap each other [3] Music has influenced the society since there is increased flow of peoples across the countries which resulted in bringing number of varying musical styles and cultures into close proximity. Expansion in music industries and availability of efficient, effective and cheap equipment for sound-recording and reproduction have brought in effect a huge variety of global musical styles to large numbers of listeners of any age. Accessibility of electronic musical instruments and computers has changed the ways in which music is performed, composed or stored. We know that music can play critical role in promoting social and economic goals. This may include local regeneration, promoting tourism, delivering essential services, developments in talent and innovation, and improving health and wellbeing of a person. These benefits could be 'instrumental' because art can be a means to achieve value of the art itself and for achieving extremes beyond the immediate intrinsic experience. Intrinsic effects may help in enriching the individual lives, but they also have a disadvantage component at public level since it may cultivate the kinds of citizens desired in a pluralistic society. Here the discussion is focusing on social bonds created among individuals when they share their arts or music experiences through suggestions and discussion. They also share the expression of common values and commune identity through music and cultures celebrating events significant to a people's experience.

Politics and citizenship

It has been proved in past that children and young people's involvement in the music has a significant impact on their wider social participation. CASE programme [4] and Cultural Learning Alliance [5] has carried out systematic reviews that high-school students who get involved in the music at school level are twice as likely to volunteer than those who don't engage in the arts or specifically music education and they are 20 % more likely to vote as young adults. The youth cultural capital composite measured by researchers' showed the largest and most significant positive effect on youth volunteering, which suggested that youths having high cultural capital are also more likely to volunteer in their community or for other causes. Cultural capital resources such as attending or participating in arts and culture among children and young people had strong effects of being associated with more frequent youth volunteering and showed insignificant effect of social class differences in youth civic engagement. A review by Lee et al. [6] on barriers and facilitators to pro-social behaviour among young people stated that many young people are motivated to participate or volunteer in group activities because they believe these activities helps in developing skills and confidence and assist in career building. This thinking is relatively more important for young people than for older age groups. Perhaps

the strongest way in which music contributes towards social inclusion is by reinforcing the social capital and social relations and inducing interactions between people that can have a range of positive effects and advantages. Some benefits of participating in music or art activity could be community unity, reduce social prohibition and isolation, and making communities feel safer and stronger.

Development of humanism throughout the civilizations

Importance of music has been discussed by most renowned composers, poets, writers, scholars and scientists. The poetry by Shakespeare discusses the power of music by saying "There is not a single human being in the world, whose feelings and heart have not been touched and tendered by the warm sounds and accords" [7] By this Shakespeare meant to say that music possesses magical beauty without which spiritual life would be become dull, disgraceful and hard. In modern societies, for the development of personality music and music education has become an integral part and the fact cannot be neglect that music would contributes to the development of spiritual, emotional and productive skills. Depending on the character, music develops aesthetic and expressive skills, stimulate and relax the person.

Music has been shown to have great influence on the nervous system of the person.

Multicultural sense

Movement of music from one region to another have played the biggest role in the generation of culture, from place to place and from country to country. First condition which has contained different popular music works, preferred by people could be treated as first appearance of a multi-cultural music movement [8] Later, many different kinds of music were appeared such as classic, jazz and popular and the creative skills existing in person have made them capable to make difference between different degrees of music. Music movement as multi-cultural was come in effect due to the acknowledgement of a person's music making abilities, participation in different kinds of music and in building the educational system.

Conclusion:

Music helps to rise above labels and injustice and assist in opening the wide prospects for multi-cultural and inter-cultural constructions in current modernized society. For connecting varied cultures, traditions and ethos, music education as well as music, has become a bridge from long period of time which have given an opportunity for showing respect and understanding to each other. Music serves as a unique language typically which can be used by all nations. Music in multicultural education has secured an important place in building individuals' personality in modernized life style of existing society characterized with great variety.

References:

1. Kosambi, D. D. (1994). The culture and civilisation of ancient India in historical outline. Vikas Publishing House Pvt Ltd.
2. Tame, D. (1984). The secret power of music (p. 43). Rochester, VT: Destiny Books.
3. Alden, A. (1998) 'What does it all mean? The National Curriculum for Music in a

multicultural society', unpublished MA dissertation, London University Institute of Education.

4. Newman, M., Bird, K., Tripney, J., Kalra, N., Kwan, I., Bangpan, M., & Vigurs, C. (2010). Understanding the impact of engagement in culture and sport: a systematic review of the learning impacts for young people.
5. Cultural Learning Alliance (2011). Key research findings: The case for cultural learning, Cultural Learning Alliance.
6. Lee, L., Morrell, G., Marini, A., & Smith, S. (2010). Barriers and facilitators to prosocial behaviour among young people: A review of existing evidence. A research report by the Department of Education commissioned before the new UK Government.
7. England, A. C. (2013). Great art and culture for everyone. Retrieved February, 5, 2015.
8. McCarthy, K. F., Ondaatje, E. H., Zakaras, L., & Brooks, A. (2001). Gifts of the muse: Reframing the debate about the benefits of the arts. Rand Corporation.

Existence of Inverse Raga Scales of Hindustani Systems of Indian Music :

P.K.Mittal

'Raaga' the unique feature of Indian music and its appeal to emotion has captured the minds and hearts of art pilgrims all over the world. However, the fundamental concepts of consonance and dissonance, which are employed to build a raaga, are the same which are universally applicable to all the music systems of the world. The raaga system is the most unique and glorious feature of Indian music. It may not be hyperbolic to say that is makes the very backbone of our musical system as no form of our music, whether classical or light, can have their existence without it.

The raaga system is no doubt the most complicated and scientifically evolved feature of our music. Though, originally the talented artists took their inspirations from the simple folk songs but their creative genius, their constant search for finding something marvel and beautiful and their powerful desire for self expression has given rise to the thousands of artistic patterns and hundreds of scales of music. Simultaneously, the scientists also had kept themselves busy in discovering some law and order i.e. the basic principles governing the structure of raagas and prepared its grammar and tried to bring the art under the flow of scientific order and had given the art of music, a science and discipline of raaga. But, it was not in the artist's nature to remain bound within the rigid discipline of the science. He, therefore, deviated very often from these rigid rules and gave birth to new and original combinations of swaras/notes to create various melodies. Scientists, in their turn found out new scientific basis for such deviations and also kept on making the scientific theories more & more general which had/could have had wider applicability.

With this background in mind, the researcher had attended many live concerts of the legendry performers as mentioned earlier wherein it had been observed that only the selected few raaga scales had been performed by the different artists, whether they were vocalists or instrumentalists. Artists of Carnatic music also were found repeating the selected few raagas in their performances. However, while analyzing these raaga scales in the light of scientific rules, which govern the laws of sound, the

Ph.D Student in FPA,M.S. University of Baroda, Vadodara., 373, Rly Stadium Colony, Gorakhpur, U.P.

researcher had felt & experienced that many popular raagas are very closely related with one another. For example if the sequence of music intervals of swaras used in raaga Bhupali (Sa, Re, Ga, Pa, Dha, Sa) are reversed keeping the tonics 'Sa' as the base , we get swaras of one other very popular raaga i.e. raaga Malkaus (Sa, komal Ga, Ma, komal Dha, komal Ni, Sa) which itself is one of the established raagas and is as melodic in nature as raaga Bhupali.(the process & logic of reversal of order has been explained in detail later in the document).

It was seen that the resemblance in these two raagas is of similar nature as that of one object & its visual mirror image. We all know that the mirror image of an object has the same ratios of its length & breath as that of the object itself, the change only takes place in its orientation as the left side/lower side of the object becomes the right side/upper side of the mirror image & vice versa, keeping all other proportions/ratios among various other parts of the picture, the same. Also, that the mirror image keeps the basic visual appeal of the original object. In raagas and melodies too, while reversing the order of swaras/ notes, the music intervals of both the original & the mirror image remain the same, and it is only the order of the swaras i.e. their sequence that changes from aarohi/avrohi (ascending/ descending) to avrohi/aarohi (descending/ ascending) , keeping the intervals between them intact and thereby keeping the tonal ratios/proportions between them also intact.

Similar observations had also been made while rewersing the sequence of musical intervals of swaras used in raaga Durga (Sa, Re, Ma, Pa, Dha, Sa). In doing so the Swaras of raaga Dhani (Sa, komal Ga, Ma, Pa, komal Ni, Sa), which also is an established Raaga were found. Such observations had also been made in few of the raagas used in Carnatic music, such as raaga Hindolam & Mohana where, the sequence of musical intervals of swaras used in both raagas are the mirror images of one another.

It was seen that such pair of raagas are related with one another in the same way as that of the visual mirror images of any object, as explained above and therefore they could, on the similar analogy, be termed as the audio mirror images of one another. Such raaga pairs though would be having the same musical intervals between their various swaras but will have a totally different audio appeal. This phenomenon will be in the same way as the mirror images of a tree or a bus; though their mirror images have the same proportions of length & breadth as the original object but, they have a totally different visual appeal than their originals.

Though the theory, that the two swaras having one particular harmonic relationship will have the same degree of consonance or dissonance, even when the harmonic relationship between them is reversed, has been propounded by the earliest mathematicians of 3rd century B.C, the great Greek mathematician, Pythagoras was the first scholar to suggest the following cyclic musical scale based on the above principle.

F±C±G±B±A±E±B

i.e. Ma ± Sa± Pa ± Re ± Dha ± Ga ± Ni

In this scale, the positive ascending order (ascending 5th) is of swaras\

F+ C+ G+ D+ A+ E+ B

i.e. Ma + SA+ Pa+ Re+ Dha+ Ga+ Ni

& the negative descending order of fifth (i.e. descending 5th) is

F- C- G- D- A- E- B i.e. Ma- Sa- Pa- Re- Dha- Ga- Ni.

By following the same principle we get the Inverse order of the Raaga which have their unique aesthetic appeal.

This concept has been discussed by many scholars of musicology at many forums which include a seminar of Psychology of Music held at Pune in 1975 and thereafter a seminar on Musicology in 1980 held at IIT Madras.

मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा
(बिहार)